DIPLOMA IN YOGA AND NATUROPATHY

कोड संख्याः **DYN-02**

हठ योग विज्ञान का परिचय

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा
(राजस्थान)

सौजन्य : पं. सुन्दर लाल शर्मा (मुक्त)
विश्वविद्यालय छतीसगढ़, विलासपुर

पाठ्यक्रम अभिकल्प समिति

प्रो. विनय कुमार पाठक
कुलपति
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

प्रो. एलआर गुर्जर
अध्यक्ष
वमखुवि, कोटा

डॉ. अनुराधा दुबे
उप निदेशक, विज्ञान एवं तकनीकी
वमखुवि, कोटा

संयोजक एवं सदस्य

संयोजक
डॉ. नित्यानंद शर्मा
योग एवं स्वास्थ्य शिक्षा विभाग
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,
कोटा

सदस्य
1. डॉ. डी. एन. शर्मा, उत्तराखंड
2. प्रो. भरतद्वाज, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार
3. डॉ. ओ. एन. तिवारी, छत्तीसगढ़
4. डॉ. भानु जोशी, हल्द्वानी
5. डॉ. बी. पी. गौड़, जोधपुर
6. डॉ. क्षमता चौधरी, वीएमओयू, कोटा
7. डॉ. जयसिंह यादव , जोधपुर
8. वैद्या श्रीमती अंजना शर्मा , कोटा

पाठ लेखन एवं संपादन

पाठ लेखक
डॉ. ओम नारायण तिवारी
कार्यक्रम समन्वयक एवं अधिष्ठाता, छात्र कल्याण
भारतीय दर्शन, ज्योतिष एवं योग विज्ञान विभाग
पं. सुन्दरलाल शर्मा (मुक्त) विवि, बिलासपुर, छत्तीसगढ़ ,

पाठ एवं भाषा संपादक
डॉ. नित्यानन्द शर्मा, सहायक आचार्य,
योग एवं स्वास्थ्य शिक्षा विभाग, वमखुवि

अकादमिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था

प्रो. विनय कुमार पाठक
कुलपति
वमखुवि, कोटा

प्रो. एलआर गुर्जर
निदेशक अकादमिक
वमखुवि, कोटा

प्रो. करन सिंह
निदेशक, एमपीडी
वमखुवि, कोटा

डॉ. सुबोध कुमार
अतिरिक्त निदेशक, एमपीडी
वमखुवि, कोटा

उत्पादन – मुद्रण जनवरी 2015

इस सामग्री के किसी भी अंश की वमखुवि, कोटा की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में मिमियोग्राफी (चक्रमुद्रण) द्वारा या अन्यकत्र पुन: प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

वमखुवि, कोटा के लिए कुलसचिव वमखुवि, कोटा (राज.) द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित।

पाठ्यक्रम परिचय

पाठ्यक्रम योग विज्ञान के अर्न्तगत द्वितीय प्रश्न पत्र में 5 खण्ड एवं 19 इकाईयों (इकाई 17 से ईकाई 35 तक) का अध्ययन करेंगे।

इस प्रश्न पत्र के अध्ययन से आप विभिन्न हठयोगियों जैसे स्वात्माराम, महर्षि घेरण्ड, स्वामी चरणदास के हठयोग सम्बन्धी विचारों एवं उपदेशों को भलीभाँति जान सकेगें। इनका विवरण निम्नानुसार है। **पृष्ठ क्र.**

खण्ड 6 : हठयोग का स्वरूप एवं साधना ———————————————— 4–36

इकाई 17 : हठयोग का स्वरूप

इकाई 18 : हठयोग साधना की अवधारणा एवं स्त्रोत

इकाई 19 : हठयोग साधना की परम्परा और ऐतिहासिक विकास

खण्ड 7 : हठयोग प्रदीपिका का परिचय ———————————————— 37–124

इकाई 20 : स्वात्माराम एवं ग्रंथ

इकाई 21 : हठयोग प्रदीपिका में योग साधना की आवश्यकताएँ एवं पूर्व तैयारियाँ।

इकाई 22 : हठयोग प्रदीपिका में वायु एवं नाड़ी शुद्धि

इकाई 23 : हठयोग प्रदीपिका में प्राणायाम बन्ध, मुद्रा, ग्रंथियाँ एवं कुण्डलिनी

इकाई 24 : हठयोग प्रदीपिका में नाद बिन्दु कला, समाधि एवं नादानुसंधान

इकाई 25 : यौगिक चिकित्सा

खण्ड 8 : घेरण्ड संहिता परिचय ———————————————— 125–170

इकाई 26 : घेरण्ड एवं ग्रंथ परिचय

इकाई 27 : घेरण्ड संहिता में क्रिया एवं आसनों का स्वरूप

इकाई 28 : घेरण्ड संहिता में मुद्रा कुण्डलिनी, प्रत्याहार, प्राणायाम नाड़ी शुद्धि ध्यान एवं समाधि।

खण्ड 9 : अष्टांग योग ग्रंथ का परिचय ———————————————— 171–212

इकाई 29 : चरणदास एवं ग्रंथ परिचय

इकाई 30 : अष्टांग योग में संयम, यम, नियम एवं आसन

इकाई 31 : अष्टांग योग में प्रत्याहार धारणा, ध्यान एवं समाधि

खण्ड 10 : अष्टांग योग एवं उच्च यौगिक क्रियायें ———————————— 213–248

इकाई 32 : अष्टांग योग में प्राण, नाड़िया, प्राणायाम एवं चक्र भेदन

इकाई 33 : अष्टांग योग में मुद्रा एवं बंध

इकाई 34 : अष्टांग योग में अष्ट सिद्धियाँ।

इकाई 35 : अष्टांग योग के अनुसार शुद्धि क्रियायें

इस पाठ्यक्रम के अध्ययन से आप इस योग्य हो सकेंगे कि आप हठयोग का अर्थ एवं हठयोग साधना क्रम के मूल विषयों का विस्तार पूर्वक प्रायोगिक ज्ञान प्राप्त कर सकेगें। ये विषय हैं– (1) आसन (2) षट्कर्म (3) युक्ताहार विहार (4) प्राणायाम (5) बन्ध (6) मुद्रायें (7) चक्रभेदन (8) कुण्डलिनी एवं (9) नादानुसंधान।

इस पाठ्यक्रम के पाँच खण्डों में आप (1) स्वात्माराम के ग्रंथ हठ प्रदीपिका (2) महर्षि घेरण्ड के ग्रंथ घेरण्ड संहिता एवं (3) योगी चरणदास के ग्रंथ अष्टांग योग का विस्तार पूर्वक अध्ययन करेगें । इन खण्डों के अध्ययन से आपमें यह समझ उत्पन्न होगीं की।

(1) **शरीर** और **मन** दोनों एक दूसरे को प्रभावित करते है।

(2) **प्राण** और **मन** ये दोनों परस्पराश्रित हैं ।

(3) मनोनिग्रह के लिये प्राणों पर नियंत्रण आवश्यक है, तथा प्राणों के नियंत्रण के लिए **हठयोग एक विज्ञान है।**

खण्ड–6

हठयोग का स्वरूप एवं साधना

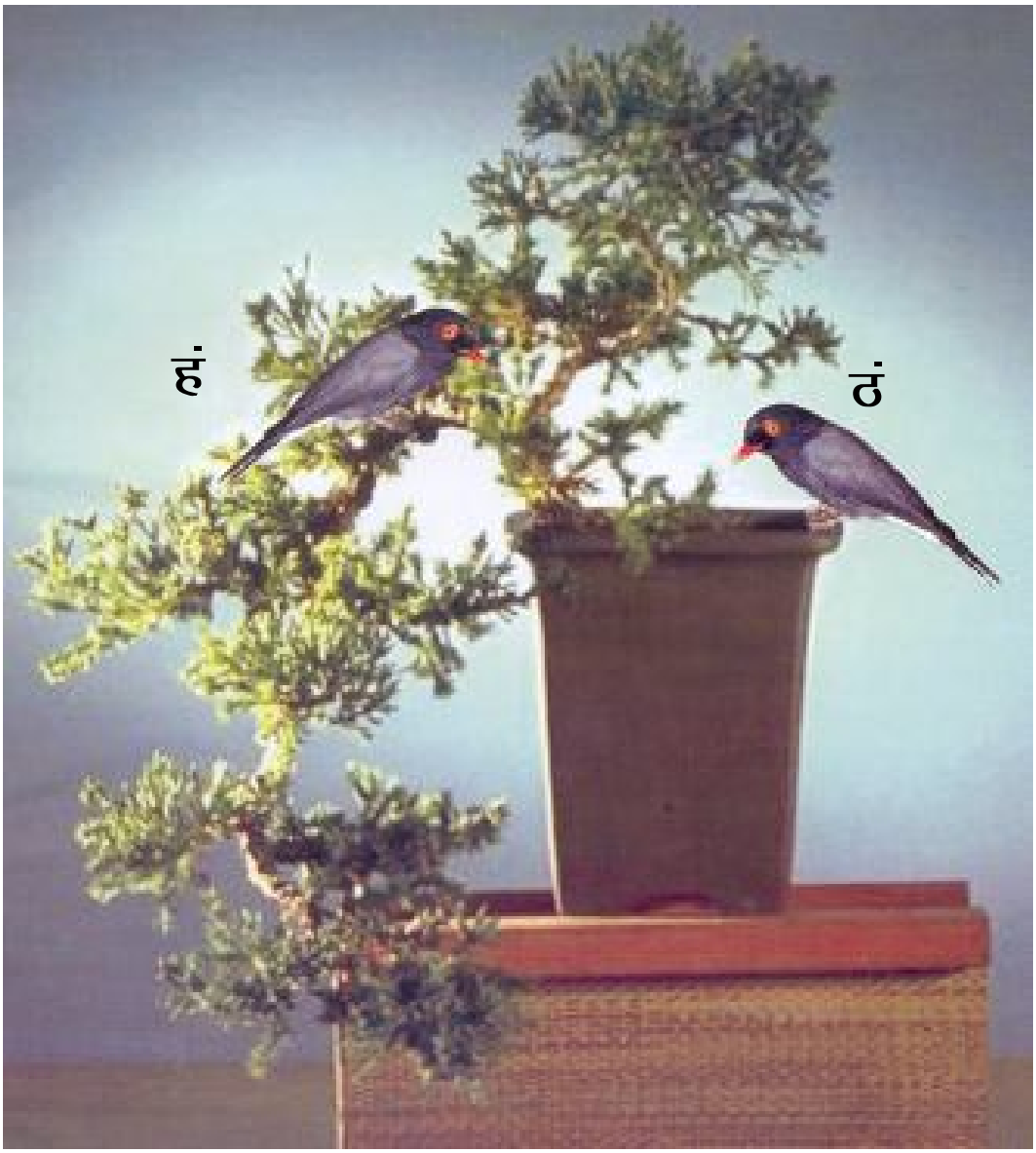

खण्ड 6 : हठयोग का स्वरूप एवं साधना

खण्ड परिचयः— योग विज्ञान में प्रामण पत्र कार्यक्रम के इस द्वितीय प्रश्न पत्र **हठयोग विज्ञान** के षष्टम् खण्ड का आप अध्ययन करने जा रहे है। इस खण्ड के अर्न्तगत आप इकाई क्रमांक 17, 18, एवं 19 का अध्ययन निम्नलिखित खण्ड संरचना के अनुसार करेगें। इस अध्याय में आप हठयोग का स्वरूप, हठयोग की अवधारणा एवं अंग, हठयोग साधना की परम्परा और ऐतिहासिक विकास के बारे में जानकारी हासिल करेगें।

खण्ड संरचना

पृष्ठ क्र.

6.0 प्रस्तावना 5

6.1 उदेश्य 5

6.2 विषय प्रवेश 5

6.3 ईकाई 17 हठयोग का स्वरूप ..... 6—9

6.3.1 हठयोग का अर्थ

6.3.2 हठयोग का सिद्धांत

6.4 इकाई 18 हठयोग साधना की अवधारणा एवं अंग 9—26

6.4.1 हठयोग साधना की अवधारणा

6.4.2 हठयोग साधना के अंग

6.5 इकाई 19 हठयोग साधना की परम्परा और ऐतिहासिक विकास – 27—31

6.5.1 हठयोग साधना की परम्परा

6.5.2 हठयोग साधना का ऐतिहासिक विकास

6.6 सारांश..... 32

6.7 बोध प्रश्नों के उत्तर .....

33—35

6.8 पारिभाषिक शब्दावली 35

6.9 उपयोगी संदर्भ ग्रंथ 36

6.0 प्रस्तावना

द्वितीय प्रश्न पत्र हठयोग विज्ञान खण्ड 6 के अन्तर्गत इकाई– 17, इकाई–18 एवं इकाई–19 का अध्ययन इस छठवें खण्ड में आप करने जा रहें हैं । इसके पूर्व आपने योग विज्ञान प्रमाण पत्र कार्यक्रम के प्रथम प्रश्न का अध्ययन कर लिया है । प्रथम प्रश्न पत्र के अध्ययन करने से आपको योग का परिचय प्राप्त हो चुका है। आप प्रथम प्रश्न पत्र के अध्ययन के अन्तर्गत हठयोग की भी आधारभूत जानकारी प्राप्त कर चुके हैं । इस खण्ड में आप **हठयोग का स्वरूप एवं साधना** के संबंध में जानकारी प्राप्त करेंगे । **इकाई 17** को पढ़ने के बाद आप हठयोग के स्वरूप से परिचित हो सकेगें कि हठयोग से वास्तव में तात्पर्य क्या है ? हठयोग साधना से हमें क्या प्राप्त होता है। इस साधना पद्धति की प्रक्रिया क्या है ? जीवन के श्रेष्ठतम लक्ष्य को प्राप्त करने की शुरूआत कहाँ से की जाती है।

इंद्रियों पर नियंत्रण कर सकने की क्षमता मनुष्य को अन्य प्राणियों से श्रेष्ठ एवं पृथक अस्तित्ववान् बनाती है। इंद्रियों पर नियंत्रण मन के नियंत्रण द्वारा संभव है और मन है कि सतत् गतिशील और चंचल। इस चंचल मन को पकड़ने का साधन हमारी **श्वास** है। श्वास ग्रहण करने की तकनीक का विज्ञान **हठयोग विज्ञान** है। इस श्वास ग्रहण करने के हठयौगिक तरीकों के द्वारा हम प्राणशक्ति का आयाम एवं उसका नियंत्रण कर सकते है। इसी कारण हठयोग विज्ञान को **प्राण विज्ञान** भी कहते है। प्राणों की साधना की व्यवहारिक पद्धति समस्त जगत् को भारत द्वारा दी गई अमूल्य देन है। सभी योगों के प्रकारों में हठयोग के किसी न किसी अंग का प्रयोग अवश्य हो ही जाता है। साथ ही हठयोग साधना केवल बौद्धिक या आध्यात्मिक स्तर पर न होकर व्यक्ति के स्थूल शरीर पर भी प्रभाव करती है। एवं शरीर को प्रकृतिक रूप में स्वस्थ बने रहने में सहायता करती है।

6.1 उद्देश्य

खण्ड 6 के अर्न्तगत इकाई 17, 18 एवं 19 के अध्ययन का उद्देश्य हठयोग के स्वरूप एवं साधना के सैद्धांतिक पक्ष का निम्नलिखित रूप में विस्तार पूर्वक ज्ञान करवाना है जिससे आप जान सकेगें किः–

- हठयोग का अर्थ क्या है ?
- हठयोग की प्रतिनिधि नियामक प्रक्रियायें क्या है ? उनकी पारस्परिक अर्न्तनिर्भरता कैसे चरितार्थ होती है? तथा व्यक्ति पर उसका क्या प्रभाव पड़ता है ?
- प्राणों पर नियत्रंण कैसे प्राप्त किया जा सकता है ?
- हठयोग की साधना राजयोग के लिये साधक को कैसे तैयार करती है ?
- हठयोग के किन अंगों का अभ्यास किस प्रयोजन से किया जाना चाहिये ?
- हठयोग साधना का क्रम किस प्रकार निर्धारित है ?
- हठयोग साधना की परम्परा कब किस रूप में प्रवाहित होती चली आ रही है ?

6.2 विषय प्रवेश

दत्तात्रेय योग शास्त्र नामक ग्रंथ में योग के प्रकारों का वर्णन मिलता है । इस ग्रंथ के निम्नलिखित सूत्र में योग के प्रमुख प्रकारों का वर्णन इस प्रकार है–

मन्त्रोयोगो लयश्चैव हठयोगस्तथैवच।
राजयोगश्चतुर्थः स्याद्योगानामुत्तमस्तुसः।।

(दता. योग. 18. 19)

इसी प्रकार **योगराज्** नामक उपनिषद् में मन्त्रयोग, लययोग, हठयोग तथा राजयोग के रूप में चार

प्रकार माने गये हैं । योगतत्वोपनिषद् नामक उपनिषद में इन चार प्रकार के ऊपर वर्णित योगों का उल्लेख करते हुये उनके लक्षण दिये गये हैं इनमें **हठयोग का लक्षण** बतलाया गया है कि विभिन्न मुद्राओं एवं बन्ध आदि जिस योग में किये जाते हैं वह हठयोग है ।

योगशिखोपनिषद् में स्पष्ट कहा गया है कि ये योग साधना में एक क्रम से उत्तरोत्तर सिद्ध होते हैं । इनका क्रम निम्नांकित प्रकार से है –

(1) मन्त्र योग
(2) लययोग
(3) हठयोग
(4) राजयोग

इस उपनिषद में हठ के हकार द्वारा **सूर्य** का ग्रहण तथा **ठकार** के द्वारा **चन्द्रमा** का ग्रहण किया गया है। सूर्य तथा चन्द्रमा के ऐक्य को ही यहाँ पर हठयोग माना गया है।

योग सम्बन्धी अन्य ग्रन्थों में सूर्य तथा चन्द्रमा के द्वारा इड़ा तथा पिंगला नाड़ियों का ग्रहण भी किया जाता है। इनमें चलने वाले श्वांस की एकता ही संभवतः इस उपनिषदकार को मान्य रही है इसी कारण **हठयोग का लाभ** बतलाते हुऐ यहॉ पर सभी प्रकार की **जड़ता दूर करने** के उपाय रूप में हठयोग को साधन माना गया है।

6.3 ईकाई 17 हठयोग का स्वरूप

6.3.1 हठयोग का अर्थ

हठयोग के बारे में लोगों की धारणा है कि हठ शब्द के हठ् + अच् प्रत्यय के साथ प्रचण्डता या बल अर्थ में प्रयुक्त होता है । हठेन या हठात् क्रिया विशेषण के रूप में प्रयुक्त करने पर इसका अर्थ बलपूर्वक या प्रचंडता पूर्वक अचानक या दुराग्रहपूर्वक अर्थ में लिया जाता है । हठ विद्या स्त्रीलिंग अर्थ में बलपूर्वक मनन करने के विज्ञान के अर्थ में ग्रहण किया जाता है । इस प्रकार सामान्यतः लोग हठयोग को एक ऐसे योग के रूप में जानते हैं जिसमें हठ पूर्वक कुछ शारीरिक एवं मानसिक क्रियाओं को किया जाता है । इसी कारण सामान्य शरीर शोधन की प्रक्रियाओं से हटकर की जाने वाली शरीर शोधन की **षट् क्रियाओं** (नेती, धौती, कुंजल वस्ति, नौली, त्राटक, कपालभाति) को हठयोग मान लिया जाता है । जबकि ऐसा नहीं है । षटकर्म तो केवल शरीर शोधन के साधन है वास्तव में हठयोग तो शरीर एवं मन के संतुलन द्वारा राजयोग प्राप्त करने का पूर्व सोपान के रूप में विस्तृत योग विज्ञान की चार शाखाओं में से एक शाखा है ।

साधना के क्षेत्र में हठयोग शब्द का यह अर्थ बीज वर्ण **''ह''** और **''ठ''** को मिलाकर बनाया हुआ शब्द के अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है । जिसमें ह या हं तथा ठ या ठं (ज्ञ) के अनेको अर्थ किये जाते हैं उदाहराणार्थ ह से पिंगला नाड़ी दहिनी नासिका (सूर्य स्वर) तथा ठ से इड़ा नाडी बॉयी नासिका (चन्द्रस्वर) इड़ा ऋणात्मक (–) उर्जा शक्ति एवं पिगंला धनात्मक (+) उर्जा शक्ति का संतुलन एवं इत्यादि इत्यादि । इन दोनों नासिकाओं के योग या समानता से चलने वाले स्वर या मध्यस्वर या सुषुम्ना नाड़ी में चल रहे प्राण के अर्थ में लिया जाता है । इस प्रकार ह और ठ का योग प्राणों के आयाम से अर्थ रखता है । इस प्रकार की प्राणायाम प्रक्रिया ही **ह** और **ठ** का योग अर्थात **हठयोग** है, जो कि सम्पूर्ण शरीर की **जड़ता** को सप्रयास दूर करता है प्राण की अधिकता नाड़ी चक्रों को सबल एवं चैतन्य युक्त बनाती है ओर व्यक्ति विभिन्न शारीरिक, बौद्धिक एवं आत्मिक शक्तियों का विकास करता है । स्थूल रूप से हठ योग अथवा प्राणायाम क्रिया तीन भागों में पूरी की जाती है –

(1) रेचक – अर्थात श्वास को सप्रयास बाहर छोड़ना ।
(2) पूरक – अर्थात श्वास को सप्रयास अन्दर खींचना ।
(3) कुम्भक – अर्थात श्वास को सप्रयास रोके रखना कुम्भक दो प्रकार से संभव है –
(1) बर्हिःकुम्भक – अर्थात श्वास को बाहर निकालकर बाहर ही रोके रखना ।

(2) अन्तःकुम्भक – अर्थात श्वास को अन्दर खींचकर श्वास को अन्दर ही रोके रखना।

इस प्रकार सप्रयास प्राणों को अपने नियंत्रण से गति देना **हठयोग** है। यह हठयोग राजयोग की सिद्धि के लिए आधारभूमि बनाता है। अतः यहॉ स्पष्ट तौर पर समझ लेना चाहिए कि बिना हठयोग की साधना के राजयोग (समाधि) की प्राप्ति बड़ा कठिन कार्य है। अतः हठयोग की साधना सिद्ध होने पर राजयोग की ओर आगे बढ़ने में सहजता होती है।

6.3.2. हठयोग का सिद्धांत

आप प्रथम प्रश्नपत्र में योग के विभिन्न प्रकारों की अच्छी तरह जानकारी हासिल कर चुके है। हठयोग के स्वरूप में आपने हठयोग के सिद्धांत का परिचय प्राप्त किया था, यहाँ हठयोग के सिद्धांत को विस्तार से अध्ययन करेंगे। आपको ज्ञात हो चुका है है कि उपनिषद चार प्रकार के योगों का वर्णन चार प्रकार के साधना सम्प्रदायों के अनुरूप करते है, ये है **(1) राजयोग, (2) लययोग, (3) हठयोग, एवं (4) मंत्र योग**। आपने देखा कि महर्षि पतंजलि का योग दर्शन राजयोग के अर्न्तगत आता है। इस मत में **चित्त वृत्ति के निरोध** को ही योग माना गया है। उपासना –मार्ग भी राजयोग का ही रूपान्तर है, जिसे ईश्वर प्रणिधाना द्वा सूत्र में **ईश्वर प्रणिधान** पद से बताया गया है। वर्तमान समय में प्रचलित शाक, शैव, वैष्णव आदि सम्प्रदाय **ईश्वर प्रणिधान** नाम के योग से गृहीत होते है। इसी पातंजल योग सूत्र के भाष्य कर्ता श्रीवेदव्यास जी ने इसे निम्नलिखित प्रकार से स्पष्ट करने की कोशिश की है **''प्रणिधानाद् भक्ति विशेषाद आवर्जित ईश्वरस्तमनु गृण्हाति, अभिध्यान मात्रेण तद् अभिध्यानादपि योगिन आसन समाधि लाभः फलंच भवति।''** (यो.सू.2/23) **भोज ने** भोज वृत्ति में इसकी व्याख्या निम्नलिखित प्रकार से की है–

'' प्रणिधानं भक्ति विशेषः विशिष्ट मुपासनम्''

अर्थात कलेशादि (अविद्या, अस्मिता, राग द्वैष, अभिनिवेश)से रहित **ईश्वर तत्व** को अनेक नामों से शास्त्रों में कहा गया हैं इसलिए उसको कोई एक संज्ञा नहीं दी जा सकती। इसलिए व्यास भाष्य में कहा गया हैः–

तस्य संज्ञादि विशेषत्तति पत्तिरागमतः पर्यन्वेष्या (यो.सू.व्या.भा.2/25) इसलिए शिव, विष्णु, महाशक्ति आदि नाम तथा इनके नामों से पुराणादि ग्रथों की रचना करके **तत्तद्भावना भावति–भक्ति योग** की प्रवृत्ति महर्षि व्यास द्वारा की गई हैं। जीव ईश्वर का ही अंश है तथा अंश में कलेशादि के रहने पर योग की स्थिति नहीं बन सकती है इस हेतु क्लेशादि को हटाना आवश्यक हो जाता है । कर्मो के अनुरूप व्यक्ति शरीर ग्रहण कर **भावना भाषित** होता है । ये भावनाएॅ सात्विक, राजसिक एवं तामसिक प्रकार की होती है । इन अलग–अलग स्वरूपों की भावनाओं के सांमजस्य हेतु योगों के प्रकार भी पृथक–पृथक हो जाते हैं ।

मानसिक भावना ही क्रियाओं के कर्म, अकर्म तथा विकर्म बनाने में मूल हेतु है । कर्म का स्वरूप एक दिखाई देने पर भी मानसिक भावना में अन्तर होने के कारण उनके स्वरूप तथा परिणामों में भी अन्तर आ जाता है । मैत्रायष्युपनिषद (4/11) में इस तथ्य को निम्नांकित प्रकार से कहा गया है –

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः।
बन्धाय विषयासत्कं मुकत्यै र्निविषयं स्मृतम्।।

अर्थात मनुष्य का मन ही बंधन एवं मोक्ष दोनो का ही कारण बनता है । विषयों में आसक्त होने से **बंधन** हो जाता है तथा विषयों में आसक्त न होने पर **मोक्ष** हो जाता है। श्रीमद्भागवत् गीता में भी पांचवे अध्याय के ग्यारहवें तथा अठारहवें अध्याय के पन्द्रहवें सूत्र में उक्त तथ्य को निम्नलिखित प्रकार से स्पष्ट किया गया है–

कायेन मनसा बुद्धया केवलैरिन्द्रियैरपि।
योगिनः कर्म कुर्वन्ति सगं त्यक्त्वात्मशुद्धये।।

अर्थात कर्मयोगी (ममत्वबुद्धि रहित) केवल इन्द्रिय, मन, बुद्धि और शरीर द्वारा भी **आसक्ति को त्यागकर अन्तःकरण की शुद्धि** के लिये कर्म करते हैं।

शरीरपाड़ मनोभिर्यत्कर्म प्रारभते नरः ।
न्याय्यं वा विपरीतं वा पच्चैते तस्य हेतवः ।।

मनुष्य मन, वाणी और शरीर से शास्त्रानुकूल अथवा विपरीत जो कुछ भी कर्म करता है उनके ये पांचों कारण (अधिष्ठान, कर्त्ता, करण, विविध चेष्टाएँ एवं दैव) हैं। इस प्रकार कर्मो का उत्पन्न करना एवं संचालक **मन** के नियंत्रण की साधना **प्राण** है और प्राणों को नियंत्रित कर मन पर नियंत्रण प्राप्त करके का जो कौशल है वह **हठयोग** है । हठयोग **''शारीरिक और मानसिक शुद्धि तथा संतुलन प्राप्त करने का साधन है''** योग विज्ञान से सन्दर्भित आगम, निगम, उपनिषदों एवं अन्य ग्रंथों के अनुसार हठ शब्द दो मन्त्रों हं और ठं के संयोग से बना है । इसका आशय मनुष्य शरीर में स्थित प्राणवाही नाड़ियॉ इड़ा एवं पिंगला के सम्बन्ध से लिया जाता है । इड़ा एवं पिंगला के प्रवाह में मन बर्हिगति वाला ही रहता है। अतः मन को अन्तःमुखी (स्वानियत्रण) करने हेतु प्राण को सम अर्थात न तो इड़ा और न ही पिंगला में प्रवाहित होने देनाा है, बल्कि इन दोनों के मध्य स्थित नाड़ी जिसे **सुषुम्ना** कहते हैं प्राणों का प्रवाह होने पर मन **शांत** एवं **स्वानियंत्रण** में हो जाता है ।

उपरोक्त सन्दर्भ में हठयोग का तात्पर्य ऐसे योग से है जिसके द्वारा इन दो शक्तियों (इड़ा + पिंगला) के बीच सन्तुलन की स्थापना हो सके । **इड़ा** नाडी हमारे शरीर की एक प्रमुख प्राणिक वाहिका है । यह प्राण के निष्क्रिय पहलू का प्रतीक है जो मनःशक्ति या चित्तशक्ति के रूप में अभिव्यक्त और अनुभूत होती है । **पिंगला** का सम्बन्ध और शक्ति, तेजस्वी शक्ति या सक्रियता से है। जो शारीरिक, आयाम में प्राणशक्ति के रूप में अभिव्यक्त और अनुभूत होती है । इस प्रकार **हठयोग का सम्बन्ध** शरीर के प्राणिक प्रवाह से है । प्राणों को नियंत्रण की साधना पद्धति से है । इस कारण हठयोग को **प्राणयोग** भी वेदों में कहा गया है।

————0————

बोध प्रश्नः

टिप्पणी

क : अपने उत्तर नीचे दिये गये स्थान में लिखें।

ख : इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर लिखने के बाद मिलाइए।

प्रश्न 1 हठयोग शब्द से आप क्या समझते है स्पष्ट कीजिये ?

प्रश्न 2 हठयोग के सिद्धांत से आप क्या समझते है स्पष्ट कीजिये ?

6.4 – इकाई 18 हठयोग साधना की अवधारणा एवं अंग

6.4.1. हठयोग साधना की अवधारणा

हठयोग साधना प्राणो के नियंत्रित आयाम को साधना है इस योग को प्राणयोग भी कहते हैं । प्राण शब्द सामान्यतः दो रूपो में प्रयुक्त होता है।

(1) जन सामान्य में एक सामान्य धारणा है कि प्राण अर्थात श्वांस का लेना छोड़ना और जब हमारा श्वांस का लेना और छोड़ना बंद हो जाता है तो मान लेते हैं की व्यक्ति की मृत्यु हो गई।

(2) योग विज्ञान के अनुसार प्राण एक अन्तर्निहित तेजस्वी शक्ति है। यह जगत् के तत्वों के स्तर पर आकाश से लेकर पृथ्वी तक पदार्थ जगत के समस्त भावों में व्याप्त है। जगत् का हर एक तत्व विविध रूपों में प्राणिक शक्ति के संयोजन और संघटन का ही परिणाम है। पदार्थ प्राणिक शक्ति का सर्वाधिक सघन रूप ह ै इसमें संपीडित प्राणिक उर्जा ठोस वस्तु के स्वरूप में होती है। यही संपीड़ित प्राणिक उर्जा जैविक रूप में जीवित शरीर के रूप में होती है तो भौतिक रूप में पदार्थो का एक टुकड़ा जगत के समस्त अस्तित्ववान् (व्यक्त) रूपों में जो संपीड़ित या धनीभूत शक्ति है वह प्राणिक शक्ति की ही अभिव्यक्ति है। यह जीवनी शक्ति ही व्यक्त रूप में सतत् रूप से विकास परिपक्कवता और क्षय में क्रियाशील रहती है।

इस प्राण का सम्बन्ध मन, मस्तिष्क या शारीरिक सक्रियता से नहीं है। योग विज्ञान प्राण की चेतना से भिन्न एक अलग पहचान, एक अलग अस्तित्व के रूप में लिया गया है। प्राण के अतिन्द्रिय–अलौकिक –अव्यक्त पहलू को **महाप्राण** कहाँ गया है। इस अन्तर्निहित शक्ति के अभिव्यक्त रूपों को **उपप्राण** कहा जाता है । महाप्राण जब अव्यक्त स्वरूप में होता है तो उसका संबंध शक्ति या प्रकृति के साथ होता है। शक्ति के साथ महाप्राण के विलय के कारण प्राण एक अन्य स्वरूप में प्रस्फुटित होता है जिसे व्यक्त जीवनी शक्ति कहते हैं। यह व्यक्त प्राण या व्यक्त जीवनी शक्ति ही सृष्टि के तात्विक कारण और सूक्ष्म स्वरों के संचालन तथा नियमन के लिए मुख्य रूप से जिम्मेवार होते हैं। व्यक्त प्राण ही हठयोग साधना के मूल आधार है। यह व्यक्त प्राण निम्नलिखित हैः–

(अ) इड़ा (ब) पिंगला।

(अ) इड़ा – इड़ा चन्द्रशक्ति का प्रतीक है। यह जगत् में व्यक्त सूक्ष्म आयाम का संचालन करती है। **व्यक्त सूक्ष्म आयाम** या इड़ा समष्टि मन के अनुभवों का प्रतीक है।

(ब) पिंगला – पिंगला सूर्यशक्ति का धोतक है और व्यक्त स्थूल आयाम का निर्देशन करती है । स्थूल आयाम या पिंगला भौतिक या पदार्थ जगत की अभिव्यक्ति का प्रतीक है। पिंगला से पाँच उपप्राण निकलते हैं जो सृष्टि के भौतिक आयामों को संचालित करते हैं ये उपप्राण निम्नलिखित है :–

(i) प्राण
(ii) अपान
(iii) समान
(iv) उदान
(v) व्यान

उपरोक्त प्राणों की शरीर में स्थिति चित्र क्र. 1 एवं 2 के अनुसार निम्नलिखित है।

चित्र क्र. 1

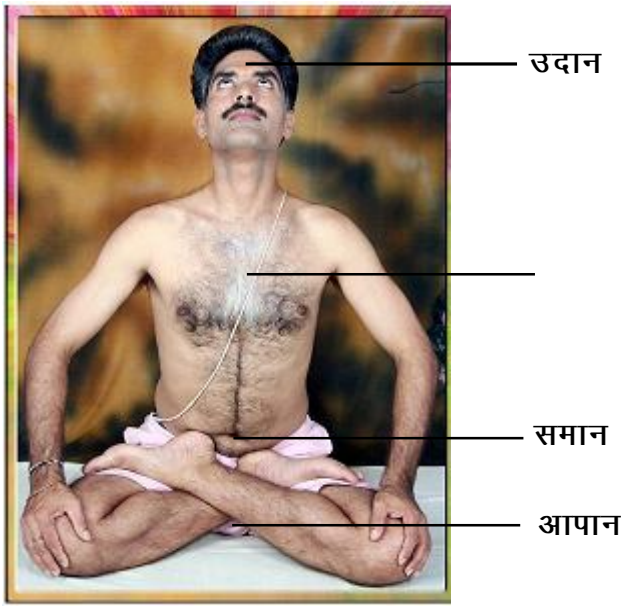

चित्र क्र. 2

6.4.1.1. प्राणों के कार्य

प्रधान प्राण अपने को दस (10) उप विभागों में विभक्त कर शरीर की विभिन्न क्रियाओं तथा इन्द्रियों और मन बुद्धि को सक्रिय बनाये रखता है। प्राण, अपान, समान, व्यान और उदान ये मुख्य प्राण है। नाग कूर्म, कृकल, देवदत्त और धनंजय सूक्ष्म प्राण कहलाते हैं। इनके कार्य निम्नलिखित है :–

(1) **प्राण** – यह मानव जीवन का आधार है इसका मुख्य स्थान हृदय है। श्वास को लेना और बाहर निकालना, खांसना, खाये अन्न का पाचन करना, रसादि धातुओं का निर्माण करना **प्राण** के कार्य हैं। नाभि से ऊपर के सभी कार्य और इन्द्रियॉ प्राण द्वारा ही संचालित होती है।

(2) **अपान** – नाभिप्रदेश के नीचे गुदा, उपस्थ, जंघा, घुटने और कटि प्रदेश में अपान स्थित है । मल, मूत्र, शुक्र और गर्भ को नीचे की ओर ले जाना और बाहर निकालना इसका कार्य है ।

(3) **समान** – नाभि प्रदेश में स्थित समान प्राण पचे हुये रस आदि को शरीर के सब अंगो और नाड़ियों में बाटना इसका कार्य है।

(4) **व्यान** – सारी स्थूल और सूक्ष्म नाड़ियों में गति करता हुआ शरीर के सब अगों में रूधिर (रक्त) का संचार होता है।

(5) **उदान** – कण्ठ में स्थित है । शरीर को उठाये रखना इसका कार्य है । मृत्यु के समय उदान ही सूक्ष्म शरीर को बाहर निकाल कर ले जाता है।

इन पाँच प्राणों के अलावा (6) **नाग** का कार्य उद्गार, वमन, छींकना आदि है । (7) **कूर्म** का कार्य आंखों का झपकाना, निमेष, उन्मेष आदि है। (8) कृंकल का कार्य भूख व्यास की अनुभूति कराना। (9) देवदत्त का कार्य तन्द्रा, जम्भाई और निद्रा के कार्य को सम्पन्न करना है। (10) धनंजय प्राण का कार्य श्लेष्मादि का उत्सर्जन करना है यह प्राण मृत्यु के पश्चात् भी शरीर में रहता है।

6.4.1.2. प्राण शक्ति की विशेषताएँ– प्राण शक्ति की निम्नलिखित प्रमुख विशेषताएँ है–

(1) प्राण की अनेक विशेषता है जिससे सर्वाधिक महत्वपूर्ण विशेषताएँ प्राण का विश्वव्यापी जीवन

पोषक तत्व है। यह गति बल और शक्ति का वाहक है। इसी शक्ति के बल पर जीवात्मा तत्क्षण अनन्य लोगों में गमन कर सकता है। इसी के द्वारा भाव और विचारों के परमाणुओं तथा प्रकम्पनों का वहन तथा विकिरण होता है। यह जल, थल, और नभ में सर्वत्र व्याप्त है। यह अग्नि और वायु में भी ओत–प्रोत है। यह अति सूक्ष्म अनोखा तेजस (गैसीय) तत्व है। दूसरे के मन की बात जान लेना। मीलों दूर संदेश प्रेषित कर देना। सम्मोहित करना आदि क्रियाएं इसी सर्वव्यापकता और विकिरणशीलता को ही प्रमाणित करती है। नक्षत्रों की आकर्षण शक्ति, विद्युत शक्ति और ग्रह–उपग्रहों की चाल में प्राण शक्ति ही अभिव्यक्त हो रही है।

(2) प्राण सर्वत्र संचरणशील है । अतः मनुष्य वायु के अतिरिक्त जल, सूर्य का प्रकाश, भोजन, ध्यान आदि से भी उसे ग्रहण कर सकता है । त्रुटि पूर्ण आहार–विहार के द्वारा इसका क्षय भी किया जा सकता है। उमंग उत्साह, शांन्ति, समझ–बूझ, सूझ, स्फूर्ति, सुमति सद्भावना, आरोग्य आदि के लक्षण इस बात के घोतक हैं कि मस्तिष्क और नाड़ी केन्द्रों में प्राण विपुल मात्रा में संचित है । इसके विपरीत निराशा अशान्ति, दुर्बुद्धि और दुर्भावना, रोग और दौर्बल्य प्राणी की क्षीणता के सूचक है । जिस प्रकार बिजली के तारों में विद्युत प्रवाहित होती है, उसी प्रकार हमारी शारीरिक और मानसिक क्रियाओं में प्राण निहित रहता है । जैसे विद्युत का वोल्टेज कम हो तो उच्च शक्ति का बल्व भी कम प्रकाश देने लगता है, उसी प्रकार शारीरिक दृष्टि से हट्टा–कट्टा व्यक्ति भी प्राणों की मात्रा कम होने से अपने को दीन–हीन–मलीन सा अनुभव करता है।

(3) प्राणों की गति के प्रकार– प्राण निम्नलिखित दो प्रकार से गति करते है–

(अ) अर्न्तमुखी।

(ब) बर्हिमुखी।

बाह्य प्राण का प्राणमय शरीर द्वारा आकर्षण और फिर उसका कर्मेन्द्रियों के मार्ग से बाहर चला जाना ही प्राण की अर्न्तमुखी और बर्हिमुखी गति अथवा प्रवाह कहलाता है । ज्ञानेन्द्रिय के द्वारा प्राण का अन्तर्मुखी प्रवाह और कर्मेन्द्रियों के द्वारा बर्हिमुखी प्रवाह सम्पादित होता है। अर्न्तमुखी प्रवाह पहले सुषुम्ना में जाता है वहीं से वह नाड़ी केन्द्रों में संचरित होता है और क्रियावाही नाड़ियों द्वारा खर्च किया जाता है । उदाहरणार्थ–खाये हुऐ अन्न का सार अंश (पुष्टि कर–भाग) शरीर में रक्षित रह जाता है । उसी प्रकार श्वासादि के द्वारा ग्रहण किये गये प्राण का सार भाग प्राणमय शरीर में संचित हुआ करता है और शेष भाग निःश्वासादि के द्वारा बाहर निकाल दिया जाता है । इसे और स्पष्ट समझने के लिऐ किसी कारखाने के यंत्र को केन्द्रिय डायनामों से विद्युत की धारा मिलती है और उसके द्वारा सभी कलपुर्जे उर्जावान् होकर चलते है । इसी प्रकार मानव शरीर की समस्त क्रियाओं में प्राणमय शरीर से निकलने वाली प्राणधारा से ही संचालित होती है।

इन्हीं प्राणिक क्रियाओं को पूर्णतः अपने वश में कर शरीर रूपी क्षेत्र में आत्मा का राज्य स्थापित करना हठयोग का परम लक्ष्य है । यही **हठयोग साधना** हैं जो राजयोग की ओर प्रेषित करती है। हठयोग के विविध अंगो के द्वारा हठयोग साधना के स्त्रोत निर्धारित होते हैं।

6.4.2. हठयोग साधना के अंग

हठ्योग के बिना राजयोग या राजयोग के बिना हठ्योग की साधना पूर्ण नहीं हो सकती है इसलिये योग के साधक को दोनों योगों की सम्यक् साधना करना चाहिये । इस हेतु आवश्यक है कि दोनों योगों की सम्यक् साधना करना चाहिये । इस हेतु आवश्यक है कि दोनों योगों का अभ्यास एक साथ ही करना चाहिये । षठकर्म आसन, प्राणायाम (कुंभक) मुद्रा व नादानुसंधान इस क्रम से हठ्योग की साधना की जानी चाहिये। षटकर्म और आसनों के अभ्यास द्वारा शरीर को लम्बे समय तक **स्थिर** एवं सुख पूर्वक रख सकने की योग्यता

अर्जित करने के उपरांत हठ्योग अर्थात प्राणयो की साधना प्रारम्भ की जा सकती है हम जानते हैं कि हठ् शब्द **''ह''** और **''ठ''** शब्दों से बना है। **''ह''** से तात्पर्य शरीर के दाहिने नासिका के स्वर से सम्बन्ध रखना है तथा **''ठ''** से तात्पर्य शरीर के बॉये नासिका के स्वर से सम्बन्ध रखना है।

इन दो स्वरों दांये एवं बायें से क्रमशः पिंगला एवं इड़ा नाड़ी का सम्बन्ध होता है। क्योंकि श्वास को इन स्वरों से चलाने पर स्वास इन नाड़ियों को स्पर्श कर उसके माध्यम से आने वाले **प्राण–तत्व** की शरीर में उपस्थिति बढ़ाते हैं। ये दोनो तत्व सूर्य (+) तथा चन्द्रमा (–) हमारे शरीर की सारी क्रियायें नियंत्रित करती है। हठयोग का ध्येय ही है कि इन दो तत्वों में सन्तुलन बना रहे। इन दो तत्वों के सन्तुलन में बने रहने से शरीर की सभी शारीरिक कार्यो में सुसंगति व संतुलन बना रहेगा । शरीर की समस्त क्रिया प्रक्रियाओं में उष्ण–शीत, अनुकम्पी–परानुकम्पी इस तरह के दो विरूद्ध गुणों का योग चलता रहता है।शरीर और मन का आपसी मेलजोल व सन्तुलन तथा सामंजस्य सम्यक् (ठीक) रहता है तो स्वास्थ्य बना रहता है तथा उच्चतम यौगिक साधना हेतु हमारा शरीर और मन (नाड़ी संस्थान) पूरी तरह तैयार हो सकता है।

हठयोग जिस प्राण तत्व पर नियंत्रण प्राप्त करना चाहता है उसके सम्बन्ध में हमें थोड़ी जानकाकरी अवश्य होना चाहिये। प्राण वह वायवीय शक्ति है जो समस्त ब्रम्हाण्ड में व्याप्त है। वह सजीव या निर्जीव सभी वस्तुओं में समाविष्ट है। अधिकतम जड़ पदार्थ पत्थरों से लेकर वनस्पति, जीव–जन्तुओं, प्राणी या चेतना का उच्चतम विकसित रूप मानव शरीर भी इस प्राण तत्व से अपना अस्तित्व रख पाता है । श्वास के द्वारा ग्रहण की जाने वाल वायु के माध्यम से यह प्राण तत्व जो की उसे ली जाने वाली श्वसन वायु से भी अत्याधिक सूक्ष्म है तथा एक ऐसी मूलशक्ति है जो समस्त बराबर जगत में व्याप्त रहती है । इस शक्ति का मानवीय चेतना के माध्यम से समन्वयन करते हुऐ अपने नियंत्रण में लेना प्राणों को विस्तार (आयाम) देकर किया जा सकता है।

यहाँ आयाम का अर्थ है विस्तार देना या साधना। अर्थात प्राणायाम प्रक्रियाओं की वह श्रृखला है जिसका उद्देश्य शरीर की प्राण–शक्ति को उत्प्रेरणा देना, बढ़ाना तथा उसे विशेष अभिप्राय से विशिष्ट क्षेत्रों से संचालित करना है । प्राणायाम की साधना का अन्तिम उद्देश्य सम्पूर्ण शरीर में प्रवाहित ''प्राण'' को नियंत्रित करना भी है । प्राणायाम केवल आक्सीजन प्रदान करने वाला व्यायाम मात्र नहीं है यह सूक्ष्म रूप से प्राण के प्रवाह पर भी प्रभाव डालता है । परिणामतः नाड़ियों का शुद्धिकरण होता है तथा भौतिक और मानसिक स्थिरता प्राप्त होती है । इस प्रकार हठयोग साध्ना का स्त्रोत प्राणायाम (कुम्भक) के द्वारा **श्वास** पर नियंत्रण तथा नियंत्रित श्वास द्वारा **प्राण** पर नियंत्रण प्राप्त होना है तथा प्राण पर नियंत्रण होने से **मन** पर अधिकार प्राप्त किया जा सकता है । मन पर नियंत्रण हो जानेपर साधक चित्त पर उठनेवाली वृत्तियों को अपनी इच्छा अनुसार नियंत्रिण एवं निर्देशित कर सकता है एवं उनका विरोध भी कर सकता है । यही हठयोग साधना द्वारा राजयोग की प्राप्ति है ।

6.4.2.1. हठयोग साधना के अंग

हठयोग साधना मानवीय जीवन को सहज और नैसर्गिक–प्राकृतिक वातावरण के अनुकूल सहयोजित करने का **शारीरिक, मानसिक** तथा **आध्यात्मिक** प्रयोग है।

शरीर की शुद्धि के लिए सात साधन हठयोग ग्रंथों में बतलाये जाते हैं ये साधन निम्नलिखित तालिका क्र. 1 के अनुसार हैं –

क्र.	हठयोग के सप्तसाधन	साधना के अंग
1.	शोधन	षटकर्म
2.	दृढ़ता	आसन
3.	स्थैर्य	मुद्रा एवं बन्ध
4.	धैर्य	प्रत्याहार
5.	लाधव	प्राणायाम
6.	प्रत्यक्ष	ध्यान
7.	निर्लिप्त	समाधि

तालिका क्र. 1

उपरोक्त हठयोग के सप्त साधनों को प्राप्त करने हेतु हठयोग साधना के सात अंग निम्नलिखित प्रकार से हैंः–

(1) षटकर्म (शोधन) – मनुष्य का शारीरिक स्वास्थ्य प्रकृति के अनुरूप जीवन चर्या पर आधारित होता है । उत्तम स्वास्थ्य प्रकृति के साथ ही प्राप्त हो सकता है । मूल प्रकृति के त्रिगुणात्मक होने से प्राणिमात्र के शरीर भी **वात, पित्त** और **कफ** इन त्रिधातुओं के नाना प्रकार के रूपान्तरों के सम्मिश्रण हैं । आयुर्वेद दर्शन भी इन तीनों के सन्तुलन की स्थिति को स्वास्थ्य मानता है।

समदोषः समाग्निश्च समधातु मलक्रियः।
प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः स्वस्थ इत्यभिधीयते।।

अर्थात् जब वात, पित्त और कफ सन्तुलित हों, शरीरगत अग्नि सम हों, सप्त धातु और मल निष्कासन क्रिया सम अवस्था में हों तथा पांचो ज्ञानेन्द्रियां मन और आत्मा प्रसन्न हों तब ही मनुष्य स्वस्थ कहलाता है। कुछ शरीर वातप्रधान, कुछ पित्तप्रधान और कुछ कफप्रधान होते हैं। वातप्रधान शरीरों में आहार–विहार के दोष से तथा देश–कालादि हेतु से प्रायः वातवृद्धि हो जाती है। पित्तप्रधान शरीरों में पित्त विकृति और कफप्रधान शरीरों में प्रायः कफ–प्रकोप हो जाता है जिससे दूषित श्लेष्मा, आमवृद्धि या मेद का संग्रह हो जाता है। जबकि शरीर में **वात, पित्त** और **कफ** क्रमशः **4 : 2 : 1** के अनुपात में हो तभी सम अवस्था मानी जाती है।

उपरोक्त अनुपात में जब असन्तुलन होता है तब शरीर में विकास उत्पन्न हो जाता है। इन विकारों के लिए तथा देह को पूर्ववत् स्वस्थ बनाने के लिए जैसे आर्युवेद में स्नेहन, स्वेदन के अतिरिक्त वमन, विरेचन, वस्ति, नस्य और अनुवासन ये **पंचकर्म** बताये गये हैं ठीक उसी प्रकार इन आयुर्वेद के पंचकर्मो से मृदु तकनीकों के साथ हठयोग में **षटकर्म** शरीर के शोधन हेतु बतलाये गये हैं। यह षटकर्म निम्नलिखित हैंः–

(1) धौती
(2) वस्ति
(3) नेति
(4) नौली
(5) त्राटक
(6) कपालभाति

षटकर्म की इन क्रियाओं द्वारा विभिन्न प्रकार के कफ, वात और पित्त–जनित दोषों को कण्ठ, प्लीहा, फेफड़े तथा उदर आदि के आन्तरिक विकारों को दूर कर शरीर को पूर्ण रूप से निरोग रखा जा सकता है इस शरीर शोधन से शरीर को निरोग एवं सभी नस नाड़ियों को मलरहित रखा जा सकता है। इस शरीर शोधन से शरीर को निरोग एवं सभी नस नाड़ियों को मलरहित रखा जा सकता है। इस प्रकार षटकर्मो की उपयोगिता न केवल शरीर शोधन में बल्कि शोधित शरीर द्वारा योगाभ्यास से हठयोग के लक्ष्य कुण्डलिनीजागरण तथा षट्चक्रभेदन कर हं और ठं का समरसीकरण (एकत्व) को सिद्ध करना भी है। उपरोक्त सभी षटकर्मो का विशद अध्ययन आप आगामी इकाईयों में करेंगे।

2. आसन (दृढ़ता) – हठयोग साधना का द्वितीय साधन **आसन** है। मन और शरीर को पुष्ट, दृढ़ और आरोग्य प्रदान करने की विशेष शारीरिक स्थितियॉ आसन कहलाती है। गोरक्षनाथ जी ने **आसन** को स्वरूप चेतन आत्मा में स्थित हो जाना कहा है। मत्सयेन्द्रनाथ जी ने संतोष को आसन कहा है। इसका अर्थ यह है कि शरीर को जो स्थिति साध ाना के लिए साधक को सन्तुष्ट करती हो वही आसन है। महर्षि पंतजलि आसन को स्थित एवं सुख की स्थिर मानते हैं। महर्षि घेरण्ड आसनों को शरीर की दृढ़ता से सम्बन्ध बतलाते हैं। योगीगोरखनाथ जीविता को आत्मा से और मूवता को जड़ शरीर के अर्थ में शरीर को वश में रखने का साधन मानते हैं आसनों केअभ्यास से शरीर में स्वैर्य आरोग्य और अंगस्फूर्ति की प्राप्ति होती है।

योग आसनों के नियमित अभ्यास से शरीर पर पूर्ण नियंत्रण स्थापित किया जा सकता है तथा शरीर के अंग प्रत्यंग के क्रियाशील होने से आरोग्यता बढ़ती है। आसनों से मांसपेशियों के तन्तु और सेल सक्रिय होते हैं, जिससे उनकी ग्रहणशीलता मे वृद्धि होती है, तथा जठराग्नि प्रदीप्त होने से पाचन क्रिया भी तेज होती है जिससे शरीर की अनावश्यक चर्बी कम होती है तथा मोटापा दूर होता है। रीढ़ की हड्डी जो पूरे शरीर का आधार तथा जिससे होकर

सुषुम्ना का प्रवाह है वह योगासन से सीधे प्रभावित होती है। शरीर की हड्डियों को लचीला तथा स्वस्थ करने में आसनों की महत्वपूर्ण भूमिका हो सकती है। आसनों के नियमित अभ्यास से रीढ़ की हड्डी से होने वाले दुष्प्रभाव जेसे कूबड़ निकलना, लकवा ग्रस्त होना, स्लिप डिस्क, आर्थराइटिस, स्पोंडला, इटिस, कम्पन आदि रोगो से बचा जा सकता है। आसनों से शरीर में स्थित विभिन्नअतःस्त्रावी ग्रंथियॉ जैसे– पीयूष–ग्रन्थि, पीनियल ग्रन्थि, चुल्लिका ग्रन्थि, थाइमस और यौन ग्रन्थि आदि सक्रिय होती है जो इन ग्रन्थियों से होने वाले हार्मोन आदि के स्त्राव को नियंत्रित रखती है जिनका प्रभाव शारीरिक व मानसिक स्थिति पर पड़ता है। योग आसनों के प्रकार या तरीकों में मतभिन्नता देखी जाती है जो कि अनावश्यक है । क्योंकि उपरोक्त विवेचन एवं योग के आदि प्रवर्तक आदिनाथ भगवान शिव ने जीव जगत की चौरासी लाख योनियों के अनुसार आसनों की संख्या भी चोरासी लाख बतायी है। जीवन अपनी जीवन यात्रा में इन चौरासी लाख योनियों में भटकता हुआ अन्त में **मोक्ष** को प्राप्त कर सकता है। चूंकि चौरासी लाख की संख्या बहुत ही अधिक है अतः चौरासी प्रमुख आसनों का उल्लेख मिलता है। इन चौरासी प्रमुख आसनों में भी बत्तीस आसन प्रमुख हैं। जिनका वर्णन घेरण्ड संहिता में मिलता है। हठ्प्रदीपिका में आसनों की संख्या और कम कर दी गई है तथा पन्द्रह आसनों को हि प्रमुखतः दी गई है। हठ्प्रदीपिका के ये पन्द्रह आसन निम्नलिखित हैः–

सिद्धासन, पद्यमासन, स्वास्तिकासन, शवासन, धर्नुआसन, मयूर आसन, पश्चिमोत्तान आसन, मत्सयेन्द्रासन, गोमुखासन, सिंहासन, भद्रासन, वीरासन, कुकुटासन, कुर्मासन, उत्तानकूर्मासन।

इन आसनों का निरंतर सम्यक् अभ्यास मृत्युलोक में सिद्धि प्रदान करने वाला है। अतः शुद्ध शरीर से मन को आकाश में रखकर **आसनों** का **ऋतु** एवं **कालानुरूप** अभ्यास करना चाहिये।

(3) मुद्रा एवं बन्ध (स्थैर्य) – हठ्योग की साधना के लिये पूर्व वर्णित जो सात साधन बतलाये गये हैं उनमें **मुद्रा एवं बन्ध** तीसरे स्थान पर आते हैं । शरीर की वह विशिष्ट क्रिया जिससे शरीर के किसी अवयव विशेष को स्थिति विशेष में रखा जाता है, **मुद्रा** कहलाती है । यह शरीर को स्वस्थ रखने के साथ–साथ आत्मिक बल में भी वृद्धि करता है, जो चित्त को एकाग्र करने तथा कुण्डलिनी शक्ति के जागरण में भी सहायक है। मुद्राओं के अभ्यास से इन्द्रियॉ वाह्य जगत् से सम्बन्ध विच्छेद कर अर्न्तमुखी होकर प्रत्याहार की स्थिति निर्मित करती है । यद्यपि मुद्राओं का उद्देश्य आध्यात्मिक है तथापि मानसिक एवं शरीरिक स्वास्थ्य की दृष्टि से भी इनका उपयोग नकारा नहीं जा सकता है । हठ्योग के ग्रन्थों में मुद्रा और बन्ध का संयुक्त विवरण एक साथ प्राप्त होता है । **बन्ध** का शाब्दिक अर्थ है **बाँधना** अर्थात शरीर के अंग विशेष को धीरे–धीरे शक्तिपूर्वक संकुचित कर बांधना ही बन्ध है । यह अन्तः शारीरिक प्रक्रिया है । इसके द्वारा शरीर के विभिन्न अंगो तथा नाड़ियों को नियंत्रित किया जा सकता है । विभिन्न ग्रंथो में वर्णित मुद्रा एव बंधो के नाम एवं संख्या निम्नलिखित तालिका क्र. 2 द्वारा वर्णित है।

क्र.	ग्रंथ का नाम	मुद्रा एवं बन्धों के नाम
1.	शिवसंहिता विपरीतकरणी	महामुद्रा, महाबन्ध, महावेध, खेचरीमुद्रा, जालंधरबन्ध मुद्रा, उड्डियानबन्ध बज्रोलीमुद्रा, शक्तिचालनी मुद्रा, योनिमुद्रा।
2.	हठप्रदीपिका	महामुद्रा, महाबन्ध, महावेध, खेचरी, मूलबन्ध, उड्डियानबन्ध, जालन्धरबन्ध, विपरीतकरणी, बज्रोली, शक्तिचालनी।
3.	घेरण्ड संहिता	**(1) चारबन्ध** : मूलबन्ध, उड्डियानबन्ध, जालंधरबन्ध, महाबन्ध। **(2) पाँच धारणाएँ** : अधोधारणा, आम्भासीधारण। वैश्वानरीधारणा, वायवीधारणा, नभोधारणा। **(3) मुद्रायें** : महामुद्रा, नभोमुद्रा, महावेधमुद्रा, खेचरीमुद्रा, विपरीतकरणीमुद्रा, योनिमुद्रा, वज्रोलीमुद्रा, शक्तिचालनीमुद्रा, ताडागीमुद्रा, माण्डुकीमुद्रा, शाम्भवीमुद्रा, अविश्वनीमुद्रा, पाशिनीमुद्रा, काकीमुद्रा,

मातंगी मुद्रा, भुजंगीमुद्रा।

4.	अष्टांग योग	खेचरी मुद्रा, भूचरी मुद्रा, चाँचरीमुद्रा, अगोचरीमुद्रा, उन्मनी मुद्रा।

(4) प्रत्याहार (धैर्य):– हठ्योग की साधना के लिए चौथा साधन प्रत्याहार है। मन की बहिर्मुखी वृत्ति को अर्न्तमुखी करने के साधन को **प्रत्याहार** कहते हैं। मनुष्य के बन्धन और मोक्ष का कारण मन ही है। मन की स्थिति हमेशा एक जैसी नहीं रहती वरन् देशकाल और परिस्थिति तथा व्यक्ति की प्रकृति का प्रभाव भी मन की स्थिति पर पड़ता है। योगसाधना के अंगो के अभ्यास से मन की स्थिति को साध कर उच्च स्थिति में ले जाया जा सकता है। इन्द्रियों को नियंत्रित कर शांत मन से चित्त की प्रशांत अवस्था में स्व की स्थिति सभी सिद्धियों की दात्री है। मन को नियंत्रित करने हेतु मन की अवस्थाओं का ज्ञान होना भी आवश्यक है। मन की पाँच विभिन्न अवस्थाएँ इस प्रकार है–

(i) मूढ़ावस्था – यह मन की वह स्थिति है जब शरीर में तमोगुण प्रधान होता है जिससे मनोकायिक रूप से व्यक्ति आलस्य, प्रमाद, निद्रा आदि के प्रभाव में रहता है जिसका प्रभाव मन की क्रियाशीलता पर पड़ता है। इस अवस्था में व्यक्ति की सोचने–समझने एवं निर्णय लेने की शक्ति नहीं के बराबर होती है।

(ii) क्षिप्तावस्था – यह मन की वह स्थिति है जो तमोगुण, रजोगुण एवं सत्वगुण के मध्य रहती है। इस स्थिति में व्यक्ति का मन कभी शान्त एवं स्थिर रहता है तो कभी अशान्त एवं अस्थिर हो जाता है।

(iii) विक्षिप्तावस्था – यह मन की वह स्थिति है जो तमोगुण, रजोगुण एवं सत्वगुण के मध्य रहती है। मन आकस्मिक रूप से स्थिर हुआ करता देवत्व सम्पन्न व्यक्ति इसके उदाहरण है।

(iv) एकाग्रता:– यह मन की वह स्थिति है जो सत्वगुण प्रधान होती है। इस स्थिति में मन एकाग्र एवं शान्त रहता है। व्यक्ति प्रबल धार्मिक बनता है और मानसिक चेतना सक्रिय होकर अर्न्तमुखी होती है।

(v) निरूद्धता:– यह मन की वह स्थिति है जिसमें मन की वृत्तियों का निरोध हो जाता है। मन एवं प्राण शान्त एवं सौम्य हो जाता है। योग साधना की उच्चतम स्थिति ही निरूद्धता है । काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद एवं मत्सर यह **छः विकार** मन की चंचलता के प्रमुख कारण हैं। यदि मन को इनकी ओर से निरूद्ध कर दिया जाए तो फिर ऐसा कारण नहीं जो मन की निश्चलता में बाधा उत्पन्न कर सकें । जब इन्द्रियां अपने विषयों से सम्बन्ध रखती है तब मन स्थिर हो चित्त के स्वरूपाकार या तदाकार हो जाती है यही **प्रत्याहार** है।

इन्द्रियाँ सदैव अपने–अपने विषयों में लीन होने के लिए तत्पर रहती है। जिस इन्द्रिय का जो विषय है उसका उस विषय में तदाकार हो जाना स्वाभाविक है। परन्तु उस इन्द्रिय के स्वभाव को नियंत्रित करके उसे उसके विषय में लीन न होने देना और ध्येय के आकार में उसे विलीन कर देना ही प्रत्याहार का स्वरूप है । मन (चित्त) पर नियंत्रण के दो उपाय योग वशिष्ट में बताये गये है। यह उपाय निम्नांकित है–

(1) योग
(2) ज्ञान

इन्द्रियों का अपने विषयों से रहित हो जाना ही इन्द्रियों को जीतना है। यह तभी सम्भव है जब चित्त एकाग्र हो जाता है और चित्त के निरोध होने पर इन्द्रियों का भी निरोध हो जाता है। यही इन्द्रियों का निग्रह **योग की परम** आवश्यकता है। प्रत्याहार की स्थिति में साधक का अपनी इन्द्रियों पर पूर्ण नियंत्रण रहता है तथा मन पवित्र होता है। प्रत्याहार एक **मानसिक क्रिया** है तथा ध्यान की प्रारम्भिक अवस्था है। मन की उपर्युक्त पांच अवस्थायें योग (हठयोग) साधना में सफलता के क्रमिक विकास की अवस्थायें हैं यह वह अवस्था है जो साधक के चित्त की चंचल वृत्तियों को जो बर्हिमुखी थी अर्न्तमुखी करने की ओर प्रेरित करती है। हठ्योग साधना में षट्कर्म, आसन, मुद्रा से शरीर को मल रहित, व्याधि रहित करके शक्ति संम्पन्न किया जाता है। इस प्रकार शरीर को व्यवस्थित करके प्रत्याहार द्वारा इंन्द्रियों और मन को संयमित किया जाता है जिससे साधक प्राणायाम, ध्यान और समाधि की ओर अग्रसर हो सके। विविध हठयोग ग्रंथो में प्रणायाम के प्रकार निम्नलिखित तालिका क्र.–3 के अनुसार दिये गये हैं–

क्र.	ग्रंथ का नाम	प्रत्याहार
1.	शिवसंहिता	(1) भोगरूप विध्नों से, (2) ज्ञानरूप विध्नों से, (3) धर्मरूप विध्नों से प्रत्याहार।
2.	घेरण्ड संहिता	(1) चक्षुरिन्द्रिय का (2) श्रवणेन्द्रिय का (3) त्वगिन्द्रियका (4) ध्राणेन्द्रिय का (5) रसनेन्द्रिय आदि तन्मात्राओं का प्रत्याहार।
3.	अष्टांग योग	(1) रूप (2) रस (3) गंध (4) स्पर्श (5) शब्द इन तन्मात्राओं से इन्द्रियों को लौटाना।

5. प्राणायाम (लाधव) :– श्वास–प्रश्वास की स्वाभाविक गति को रोककर शास्त्रीय विधि से श्वसन की क्रिया प्राणायाम कहलाती है। **प्राणायाम** के अर्थ से हठयोग साधन के स्वरूप इकाई 1 में हम परिचित हो चुके हैं। प्राणायाम प्राण + आयाम अर्थात प्राण का आयाम अथवा विस्तार से है। प्राणयाम वह क्रिया है जिसमें प्राणिक ऊर्जा का शरीर में अधिक से अधिक विस्तार हो सके। **प्राण** वायु का सूक्ष्म रूप है। जो सूक्ष्म तथा स्थूल शरीर के बीच सम्बन्ध स्थापित करता है। प्राण ही मन और आत्मा के बीच सम्बन्ध स्थापित करता है। **मन** स्थूल शरीर का अंग है तो **आत्मा** सूक्ष्म शरीर का जब प्राण शरीर से अलग हो जाता है तब सूक्ष्म शरीर (आत्मा) भी शरीर से अलग हो जाती है और जीव की मृत्यु हो जाती है। **प्राणशक्ति** ही शरीर की सभी प्रकार की क्रियाओं का संचालन करती है। शरीर के अन्दर अलग–अलग स्थान एवं कार्य की दृष्टि से यही विभिन्न नामों से जाना जाता है जिन्हें पंच प्राण कहते हैं। इनके अलावा भी उपप्राणों में इनका वर्गीकरण किया गया है। विभिन्न हठयोग के ग्रंथो में इनका स्वरूप निम्नलिखित तालिका क्र. –4 के अनुरूप है –

क्र.	ग्रंथ का नाम	प्राणायाम
1.	हठप्रदीपिका	(1) सूर्यभेदन (2) उज्जायी (3) सीत्कारी (4) शीतली (5) भस्त्रिका (6) भ्रामरी (7) मूर्च्छा (8) प्लाविनी।
2.	घेरण्ड संहिता	(1) सहित (2) सगर्भ (बीज मंत्र से) (3) निगर्भ (बिना मंत्र के) (4) सूर्य भेदन (5) उज्जायी (6) शीतली (7) भस्त्रिका (8) भ्रामरी (9)मूर्छा (10) केवली।
3.	अष्टांग योग	(1) सूर्य भेदन (2) उज्जायी (3) सीत्कारी (4) शीतली (5) भस्त्रिका (6) भ्रामरी (7) मूर्छा (8) केवली।

(6) ध्यान (प्रत्यक्ष) – हठयोग–साधना का छठाँ साधन ध्यान है। ध्येय विषय पर चित्त की प्रवृति को एकाग्र करके मन का निर्विषय होना **ध्यान** है। ध्यान की स्थिति में ध्याता, ध्यान और ध्येय रूपी त्रिकुटी के सिवाय और कुछ नहीं रहता। मनुष्य के मन का एक छोटा सा भाग ही सक्रिय है। यदि मानव मन के अधिकतम भाग को सक्रिय और चैतन्य बना दिया जाय तो मानव समाज अपनी सभ्यता और संस्कृति के सर्वोच्च शिखर पर प्रतिष्ठित हो सकता है। ध्यान की विभिन्न क्रियायें मानव को समग्र रूप से सक्रिय और चैतन्य बनाने में सहायक है। सामान्य रूप से मनुष्य के मन के तीन भाग हैं–

(1) चेतन मन

(2) अवचेतन मन

(3) अचेतन मन

(i) चेतन मन – मन का जो भाग चेतन, सजग और सक्रिय प्रतीत होता है उसे ही हम **चेतन मन** कहते हैं। चेतन मन सम्पूर्ण मन का एक छोटा सा हिस्सा है कि जिसकी शक्ति और सीमा शेष हिस्से की तुलना में बहुत कम है।

(ii) अवचेतनमन – मन का वह हिस्सा जो पूरी तरह से चेतन, सजग व सक्रिय तो नहीं रहता परन्तु प्रयास करने पर कुछ–कुछ सजग और सक्रिय हो सकता है अवचेतन कहा जाता है। हमारी स्मृति का सम्बन्ध इस अवचेतन मन से ही है।

(iii) अचेतन–मन – मन का यह हिस्सा प्रसुप्त और निष्क्रिय सा रहता है । यह मन का सबसे विराट भाग है। प्रयास करने पर भी उसके संचित रहस्य चेतन मन पर नहीं उभरते। चेतन मन और अवचेतन मन के आधार रूप में यह हिस्सा व्यक्ति के समग्र अस्तित्व के तल में निष्क्रिय सा रहते हुये भी सक्रिय रहता है पर इसकी सक्रियता का कोई आभास तक नहीं मिलता। पूर्व जन्म के संस्कार इसी अचेतन मन से जुड़े रहते हैं जो यदा–कदा अनजाने में परिचालित होते रहते हैं।

योग साधना के द्वारा जब मन का **अवचेतन** तथा अचेतन भाग विभिन्न यौगिक क्रियाओं के द्वारा सजग, सक्रिय एवं चैतन्य होता है तब वह स्थिति अवचेतन मन कहलाती है और इस स्थिति में साधक के लिये कुछ भी दुर्लभ नहीं होता है। मन की वह स्थति निर्विषय होते हुये भी चैतन्य रहती है। **सांख्य सूत्र** ने भी ध्यान के सम्बन्ध ा में कहा है कि–

''ध्यानं निर्विषयं मनः'' अर्थात् चेतना का ध्येय के अतिरिक्त किसी अन्य विषय–वस्तु से रहित होना ही ध्यान है। मन का निर्विचार होना साथ ही चैतन्य रहना ध्यान है।

सामान्य रूप से हमारे मन में अनचाहे विचारों की तरंगे सतत् चलती रहती है जिनकी आवृत्ति और वेग बदलते रहने से हमारी मनः स्थिति ही नहीं शरीर की आन्तरिक संरचना में होने वाली प्रक्रियाये भी अव्यवस्थित होती हैं। मन की तरंगो का रूप, रंग, आवृत्ति, वेग, और धनत्व प्रतिक्षण परिवर्तित होता रहता है जिसके कारण मनुष्य का व्यक्तित्व अव्यस्थित और असंतुलित होता है जिसका प्रभाव मन और शरीर पर विभिन्न रोगो के माध्यम से दिखाई भी पड़ता है। इसलिये शारीरिक स्वास्थ्य के लिये मन का सन्तुलित, एवं एकाग्र होना आवश्यक है जो ध्यान से ही सम्भव हैं। हमारी मानसिक चेतना के विविध आयाम हैं। योग साधना से चेतना को स्वतः नैसर्गिक विकास के क्रम से उच्च स्तर पर प्रतिष्ठित किया जा सकता है। योग साधना में चेतना के विविध आयाम इस प्रकार हैं–

(i) जागृतावस्था – चेतना की यह सामान्य स्थिति है जिसमें हमें जीव एवं जगत् का बोध होता है। इस स्थिति में शारीरिक एवं मानसिक सक्रियता के बावजूद सजगता और चेतनता का स्तर हर व्यक्ति में उसकी प्रकृति के अनुसार भिन्न–भिन्न होता है।

(ii) स्वप्नावस्था – चेतना की यह स्थिति जिसमें शरीर तो निश्चेष्ट सा पड़ा रहता है परन्तु शरीर की आन्तरिक सभी क्रियाएँ स्वाभाविक पर धीमी गति से चलती रहती है। इस स्थिति के जहां चेतन मन का नियंत्रण समाप्त सा हो जाता है वहीं अवचेतन और अचेतन मन में प्रछन्न रूप से वहीं इच्छायें, आकांक्षायें और वासनायें स्वप्न के रूप में सक्रिय हो जाती है।

(iii) सुषुप्ति अवस्था – स्वप्न रहित निद्रा ही सुषुप्ति अवस्था है। इस स्थिति में चेतनाकाविस्तार अन्य दोनों अवस्थाओं से ज्यादा होता है। सुषुप्ति अवस्था में हमारी चेतना का एक सूक्ष्म अंश प्रछन्न रूप से **साक्षी भाव** के रूप में उपस्थित रहता है। इसी से जागने पर हमें पता चलता है कि हम गहरी नींद में सोये थे।

(iv) तुरीयावस्था – यह चेतना की सबसे महत्वपूर्ण स्थिति है। चेतना का जो अंश अत्यन्त सूक्ष्म और प्रछन्न रूप से साक्षी भाव के रूप में जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति की अवस्था में रहता है वह तुरीयावस्था में वराट् बन जाता है। ध्यान की स्थिति इसी अवस्था को प्राप्त करने का चरम पुरूषार्थ है। यह अवस्था चित्त की वृत्ति को एकाग्र व लययुक्त बनाती है। महर्षि पंतजलि ने भी योग–सूत्र में ध्यान के स्वरूप के सम्बन्ध में बताया है कि–

तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम् अर्थात् जहाँ चित्त ठहराया जाय उस स्थान पर वृत्ति का एक सा बना रहना ही ध्यान है। मुख्य रूप से ध्यान के तीन प्रकार हैं–

(1) स्थूल ध्यान
(2) ज्योति ध्यान
(3) सूक्ष्म ध्यान

(1) स्थूल ध्यान – वह ध्यान जिसमें मूर्तिमय इष्टदेव का ध्यान किया जाता है, दृश्य अथवा अदृश्य पदार्थो की ज्ञान प्राप्ति के लिये जो ध्यान जाता है, वही स्थूल ध्यान है। जैसे– राम, कृष्ण, शिव अन्यान्य देवी–देवता आदि अथवा किसी इष्टदेव या गुरू आदि को आन्तरिक चक्षुओ से देखने का अभ्यास करना । यह ध्यान प्रायः सभी प्रकार के साधानों के लिये सुगम होता है। नये साधकों के लिये तो यह सबसे उपयुक्त विधि है क्योंकि आरम्भ में ध्यान का अभ्यास करने के लिये किसी प्रकार की आकृति अथवा वस्तु आवश्यक है।

(प) स्थूल ध्यान की विधि – ध्यान के किसी आसन में बैठकर नेत्रों को बन्द करके हृदय में, नासिका के अग्र भाग में अथवा दोनों भौहों के मध्य में दृष्टि को स्थित करें और अपने इष्टदेव की मूर्ति के रूप का ध्यान करें, मूर्ति की नखशिख पर्यन्त आकृति, धारण किये वस्त्र, माला, रत्न, आभूषण, किरीट, कुण्डल एवं विराजमान होने के सिंहासन अथवा मूर्ति के चारों ओर रखी हुई साज सामग्री आदि का भी ध्यान करना चाहिये जिससे धीरे– धीरे उस मूर्ति–विशेष पर मन एकाग्र होने लगेगा। किसी ध्येय विषय पर मन का तन्मय हो जाना ही ध्यान है।

(पप) साकार उपासकों के लिये शेषनाग रूपी शय्या पर शान्त आकार से शयन करते हुये भगवान विष्णु के सगुण ध्यान को **शान्ताकारं भुजगशयनम्** इत्यादि मंत्र के जप तथा आकृति को अन्तः चक्षुओं से देखने का अभ्यास करें। धीरे–धीरे अभ्यास से मन की बाह्य वृत्तियॉ एकाग्र होकर अन्तः मुख हो जायेगी। इससे मन की चंचलता समाप्त होकर मन शान्त एवं स्थित हो जायेगा।

किसी साकार रूप का ध्यान करना ही स्थूल ध्यान है और यह ध्यान ही परिपक्व होकर साधक को ज्योर्तिमय ध्यान और सूक्ष्म ध्यान के योग्य बनाता है।

(2) ज्योतिर्ध्यान – तेजोमय ज्योति रूप ब्रम्हा का ध्यान ही ज्योतिर्ध्यान कहलाता है। **घेरण्ड संहिता** में इसका विवेचन ''मूलाधारे कुण्डलिनी भुजंगाकाररूपिणी'' इत्यादि से किया गया है। इसके अनुसार मूलाधार में सर्पाकार से कुण्डलिनी शक्ति रहती है, वहीं दीपकलिका के आकार में जीवात्मा की विद्यमानता है। इसके अतिरिक्त भौहों के मध्य और मन के उर्ध्व भाग में जो प्रणवात्मक ज्योति है उसका ध्यान ही **तेजोध्यान** है। **श्वेताश्वतरोपनिषद्** में ज्योति ध्यान के सम्बन्ध में बताया गया है कि हृद्य में अर्न्तयोगी रूप से अंगुष्ठ परिमाण वाली ज्योति विद्यमान रहती है। पवित्र मन एवं हृदय वाले साधक ध्यान के माध्यम से उसकी अनुभूति कर सकता है। इस प्रकार आत्मा का ध्यान ही ज्योतिर्ध्यान है। स्थूल ध्यान के परिपक्व होने पर ही ज्योतिर्ध्यान का अभ्यास करना चाहिये।

(3) सूक्ष्मध्यान – बिन्दुमय ब्रह्यकुण्डलिनी शक्ति का ध्यान ही सूक्ष्म ध्यान कहलाता है। सूक्ष्म ध्यान के सम्बन्धा में महर्षि घेरण्ड ने कहा है कि कुण्डलिनी शक्ति आत्मा के साथ संयुक्त होकर नेत्र रन्ध्रों से निकलती और ऊर्ध्वभाग में स्थित राजमार्ग में विचरण करती है, परन्तु वह अपने सूक्ष्मत्व और चंचलत्व के कारण दिखाई नहीं देती। इसीलिये कुण्डलिनी शक्ति का ध्यान शाम्भवी मुद्रा के साथ करना चाहिये। सूक्ष्म ध्यान के अभ्यास के लिये शरीर में स्थित षट्चक्रों और सहस्रार पर क्रमशः ध्यान का अभ्यास करना चाहिये।

कुण्डलिनी शक्ति नाभिकन्द के ऊर्ध्व भाग में साढ़े तीन कुण्डल मारे हुये सुप्तावस्था में रहती है। इससे सुषुम्ना नाड़ी का मार्ग बन्द रहता है। योग–साधना से जब कुण्डलिनी–शक्ति जाग्रत होती है तो वह सुषुम्ना के मार्ग से सुई के समान षट्चक्र भेदन करती हुई सहस्रार रूपी शिव के साथ सामंजस्य प्राप्त करती है। हमारे शरीर में षट्चक्रों की स्थिति इस प्रकार है–

1. मूलाधारचक्र – स्थूल शरीर में गुदा की स्थिति गानाड्स ग्रन्थि में ही सूक्ष्म शरीर में चार दल वाले मूलाधाार चक्र की स्थिति है। अग्नि के समान रक्त वर्ण वाला यह बीजाक्षर **ल** से युक्त त्रिकोणाकार है। इसके अधिष्ठाता ब्रम्हा हैं। ये मूलाधारचक्र निम्न चित्र द्वारा स्पष्ट किया गया है–

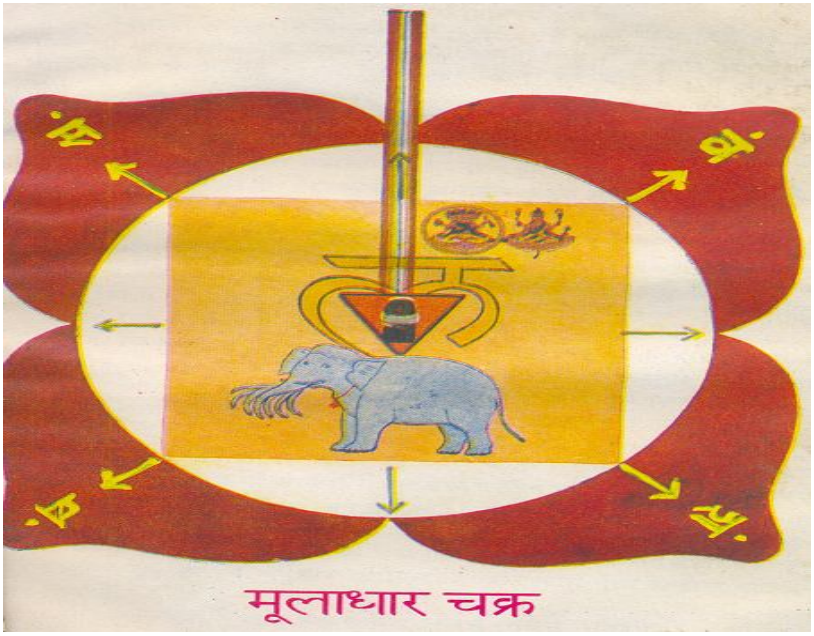

चित्र क्र.–3

2. स्वाधिष्ठान चक्र – स्थूल शरीर में लिंग अथवा योनि के मूल में स्थित प्रोस्टेट ग्रन्थि में ही सूक्ष्म शरीर में छः दल वाले स्वाधिष्ठान चक्र की स्थिति है। यह सूर्य के प्रकार की तरह सिन्दूर वर्ण तथा बीजाक्षर **वं** से युक्त अंकुर के समान है। इसके अधिष्ठाता विष्णु हैं। यह स्वाधिष्ठान चक्र निम्नांकित चित्र द्वारा स्पष्ट किया गया है–

चित्र क्र.–4

3. मणिपूरकचक्र – स्थूल शरीर में नाभि स्थान में स्थित सुप्रारेनल ग्रन्थि में ही सूक्ष्म शरीर में दश दल का नील वर्ण तथा बीजाक्षर **रं** से युक्त मणिपूरक चक्र है । इसके अधिष्ठाता विष्णु है। यह मणिपूरचक्र निम्नांकित चित्र द्वारा स्पष्ट किया गया है–

चित्र क्र. 5

4. अनाहतचक्र – स्थूल शरीर में हृद्य में स्थित थाइमस ग्रन्थि में ही सूक्ष्म शरीर में बारह दल युक्त अनाहत चक्र की स्थिति है। यह चक्र स्वर्ण के समान कान्ति वाला बीजाक्षर **मं** से युक्त एवं वर्तुलाकार है। इसके अधिष्ठाता शिव हैं। यह अनाहतचक्र निम्न चित्र द्वारा स्पष्ट किया गया है–

5. विशुद्धचक्र – स्थूल शरीर में कंठ में स्थित थायराइड ग्रन्थि में ही सूक्ष्म शरीर में सोलह दल युक्त विशुद्ध चक्र स्थित है। यह धूमवर्ण का वर्तुलाकार एवं बीजाक्षर **हं** से युक्त हैं। इसके अधिष्ठाता रूद्र हैं। यह विशुद्धचक्र निम्नांकित चित्र द्वारा स्पष्ट किया गया है–

6. आज्ञाचक्र– स्थूल शरीर में दोनों भौहो के मध्य पीनियल ग्रन्थि में ही सूक्ष्म शरीर में दो दल युक्त श्वेत वर्ण का आज्ञा चक्र स्थित है। इसका बीजाक्षर **ॐ** है। इसके विशिष्ठ देव महेश्वर है। यह आज्ञाचक्र निम्नांकित चित्र द्वारा स्पष्ट किया गया है–

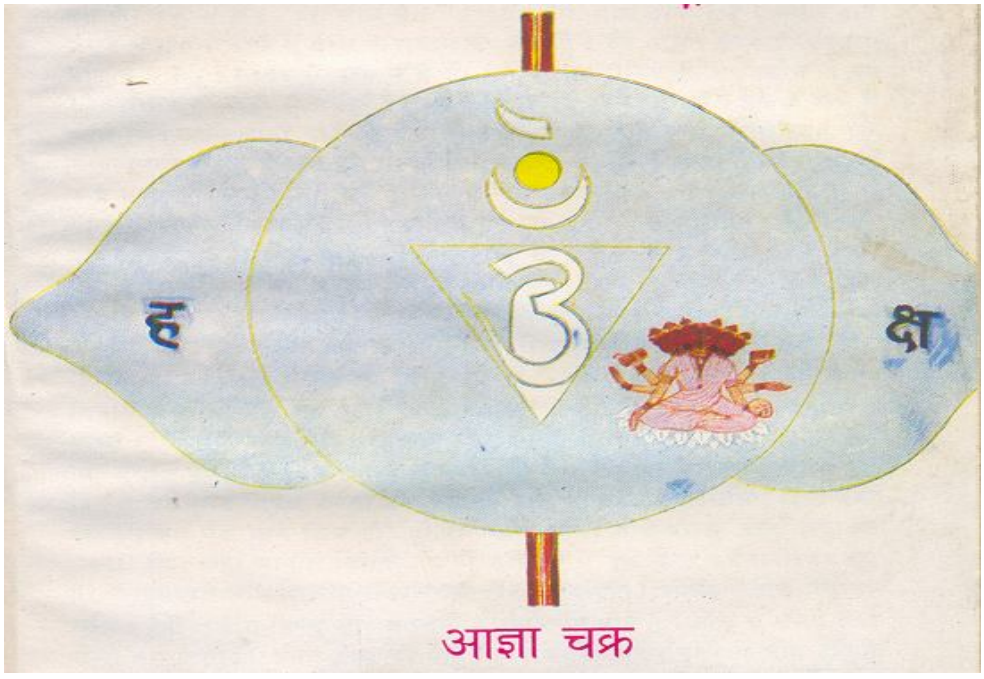

7. सहस्त्रार – स्थूल शरीर में मस्तिष्क में पिट्यूटरी ग्रन्थि का स्थान सूक्ष्म शरीर में सहस्रार चक्र का है। यह हजार दल युक्त श्वेत वर्ण का है। इसके अधिष्ठाता श्री गुरु माने जाते हैं। यह सहस्त्रार निम्नांकित चित्र द्वारा स्पष्ट किया गया है–

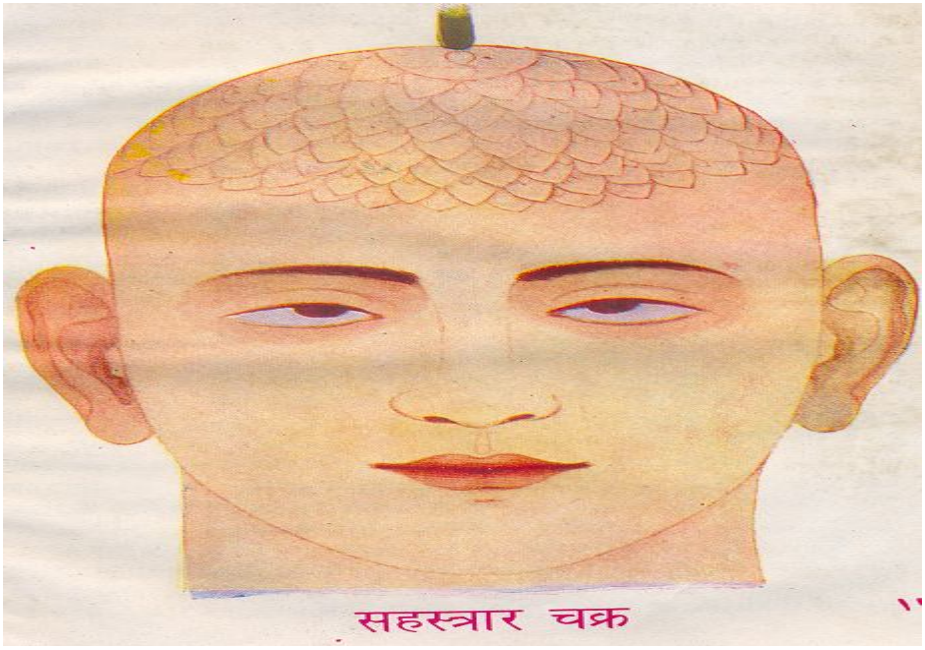

उपर्युक्त छः चक्रों पर क्रमशः ध्यान का अभ्यास करने से **कुण्डलिनी** जाग्रत होकर **षट्चक्र भेदन** का अभ्यास सिद्ध होने पर सातवें चक्र सहस्राह का **लय क्रम** स्वतः सिद्ध होता है। विभिन्न हठ्योग के ग्रंथों में ध्यान के विविध प्रकार बतलाये गये हैं जो निम्नांकित तालिका क्र.–5 में वर्णित है–

क्र.	**ग्रंथ का नाम**	**ध्यान का प्रकार**
1.	शिव संहिता	1. शून्य का ध्यान
2.	घरेण्ड संहिता	1. स्थूल ध्यान 2. ज्योर्तिध्यान या तेजो ध्यान 3. सूक्ष्म ध्यान
3.	अष्टांग योग	1. पदस्थ ध्यान 2. पिण्डस्थ ध्यान 3. रूपस्थ ध्यान 4. रूपातीत ध्यान

(7) समाधि (निर्लिप्त) – हठयोग साधना का अन्तिम एवं सातवाँ साधन समाधि है । इस स्तर पर जब ध्याता, ध्यान से ध्येय विषय में मिलकर लय हो जाता है तब उस द्वैतभावरहित वृत्ति निरोध की अन्तिम अवस्था को **समाधि** कहते हैं। समाधि की अवस्था में ध्येय मात्र की प्रतीति होती है और चित्त का अपना रूप शून्य हो जाता है। हठयोग साधना में प्राप्त होने वाली समाधि **महाबोध** समाधि कहलाती है।

ध्यान की अवस्था में साधक को यह **बोध** रहता है कि मैं **ध्येय** का **ध्यान** कर रहा हुँ किन्तु जब ध्यान करते–करते चित्त ध्येय के रूप में बदलने लगता है और उसमें अपने रूप का अभाव सा हो जाता है तब साधना की वह अवस्था जिसमें ध्येय मात्र की प्रतीति हो **समाधि** कहलाती है। समाधि की दो अवस्थायें हैं –

(1) सविकल्प समाधि – यह समाधि की प्रारम्भिक अवस्था है। इसमें ध्याता, ध्येय और ध्यान की त्रिकुटी के लय की नियमित काल पर्यन्त चित्त की वृत्तियों की एक तदाकार स्थिति होती है। यद्यपि इस अवस्था में द्वैतभाव रहता है, तथापि अद्वैत भाव की इस प्रकार प्रतीति होती है जैसे मिट्टी से बनी किसी वस्तु में मिट्टी का ही भान हो उसी प्रकार द्वैत में अद्वैत का भान होता है। समाधि की इस अवस्था में किसी न किसी अवलम्बन की आवश्यकता रहती है। इस स्थिति में प्रज्ञा के संस्कार शेष रहते हैं। यह समाधि चित्त की एकाग्र अवस्था में होती है।

(2) निर्विकल्पसमाधि – जब ध्याता, ध्येय और ध्यान भेद की अपेक्षा से रहित चित्त की वृत्तियों की स्थिति एक अद्वितीय ध्येय वस्तु में अत्यन्त ऐक्यभाव से तदाकार रूप में चिर काल पर्यन्त होती है तब निर्विकल्प समाधि होती है।

समाधि की इस अवस्था में द्वैत भाव का सर्वथा अभाव रहता है। इस स्थिति में किसी अवलम्बन की भी आवश्यकता नहीं रहती तथा प्रज्ञा के संस्कार भी शेष नहीं रहते। सब वृत्तियां विलीन हो जाती है। यह स्थिति चित्त की निरूद्धावस्था में होती है। यह समाधि दुख की अत्यन्त निवृति ओर आत्यन्तिक सुख की पूर्ण रूप से प्राप्ति कराने वाली है।

समाधि की उपर्युक्त क्रमशः प्रारम्भिक और अन्तिम अवस्थायें हैं। विभिन्न साधनों से समाधि की स्थिति प्राप्त होने से समाधि के भी अनेक प्रकार है–

1. ध्यान–योग–समाधि 2. नाद–योग–समाधि 3. मंत्रयोग–समाधि 4. लययोग–समाधि 5. भक्तियोग–समाधि 6. राजयोग–समाधि।

(1) ध्यानयोग समाधि – यह समाधि की प्रारम्भिक अवस्था है। ध्यान की परिपक्वता के बिना समाधि नहीं हो सकती। इसीलिये इस साधना में मन को ध्येय विशेष पर केन्द्रित कर ध्यान की सिद्धि प्राप्त करनी चाहिये। ध्यान की सिद्धि से मन दोष–रहित होता है जो साधक को पापों से मुक्त करता है। घेरण्ड संहिता में इस सम्बन्ध में बताया है कि–

शाम्भवीं मुद्रिकां कृत्वा आत्मप्रत्यक्षमानयेत्।
बिन्दुब्रह्म सकृद्दृष्टवा मनस्तत्रनियोजयेत्।।
खमध्ये कुरूचात्मानं आत्मध्ये च खं कुरू।
आत्मानं खमयं दृष्टवा न किंचदपि बाध्यते।।
सदानन्दमयो भूत्वा समाधिस्थो भवेन्नरः।

अर्थात शाम्भवी मुद्रा करके प्रथम आत्मा का प्रत्यक्ष करें और बिन्दुमय ब्रह्म का साक्षात्कार करते हुए मन को बिन्दु में लगा दें। तत्पश्चात् मस्तक में विद्यमान ब्रह्मलोकमय आकाश (सहस्रार) के मध्य में आत्मा को ले जायें, जीवात्मा में आकाश (सहस्त्रार) को लय करें और परमात्मा में जीवात्मा का लय करें इससे योगी सदानन्दमय एवं समाधि की स्थिति को प्राप्त करता है।

(2) नादयोगसमाधि – हठ्योग समाधि को ही नादयोग समाधि कहते हैं। मन को शरीर में स्थित अनाहत शब्द से पूरे **नाद** में लीन कर लेना ही नादयोग समाधि है। मन जब नाद के अक्षर में लीन होता है तब उस स्थिति में निःशब्द समाधि रूप परमपद की प्राप्ति हो जाती है। नादयोग–समाधि के सम्बन्ध में घेरण्ड संहिता में कहा है –

साधनात् खेचरीमुद्रा रसनोर्ध्वगतासदा।
तदा समाधि सिद्धिःस्याद् हित्वा साधारण क्रियाम्।।

अर्थात् खेचरी मुद्रा का अभ्यास करते हुये जिह्वा को ऊर्ध्व की ओर (ब्रह्मरन्ध्र में) स्थित करें। इससे साधारण क्रियाओं के हटने पर जो समाधि सिद्ध होती है, वही नादयोग समाधि है। इस प्रकार हठयोग साधना से प्राप्त हुई समाधि को **महाबोध** समाधि भी कहते हैं।

(3) मंत्रयोगसमाधि – मन को श्वास–प्रश्वास के साथ लय कर लेना मंत्रयोग समाधि कहलाती है। नित्य प्रति प्रत्येक मनुष्य इक्कीस हजार छः सौ बार श्वास लेता है। श्वास **सकार** ध्वनि के साथ बाहर निकलती है तथा **हकार** ध्वनि के साथ अन्दर आती हैं। इस प्रकार **सकार** और **हकार** का क्रम चलते–चलते **सोऽहं** और **हंस** दोनों के ही श्रवण का भान होता है। दोनों में कोई भी भेद नहीं। जो साधक नित्य प्रति इक्कीस हजार छः सौ संख्या में **हंस** का जाप करता है वह **सोऽहम** रूप ही होता है। इस प्रकार मंत्रयोग की माधि को **महाभाव** समाधि भी कहते हैं। वाल्मीकी के पूर्व जन्म की कथा इसी प्रसंग से जुड़ी है जब नारद मुनि ने रत्नाकर डाकू को **राम** शब्द का उच्चारण न कर पाने पर उसकी प्रवृति तथा उसके पेशे को देखते हुए **मरा** का लगातार जप करने की सलाह दी। वही रत्नाकर आगे चलकर मरा–मरा से राम–राम कहने वाला महामुनि वाल्मीकि बना।

(4) लययोगसमाधि – नाभि कन्द में कुण्डलिनी सुषुम्णा नाड़ी का मार्ग बन्द करके साढ़े तीन कुण्डल मारे सुप्तावस्था में रहती है। शरीर में स्थित **कुण्डलिनी शक्ति** का प्रतीत है । यौगिक साधना से कुण्डुलिनी–शक्ति को जाग्रत कर षट्चक्रो का भेदन करते हुये सहस्त्रार में स्थित **शिव** से उसका लय होना ही लययोग–समाधि का स्वरूप है। घेरण्ड–संहिता में लययोग समाधि के सम्बन्ध में कहा है–

योनिमुद्रां समासाद्य स्वयंशक्तिमयोभवेत्।
सुश्रृंगाररसेनैव बिहरेत् परमात्मनि।।
आनन्दमयः सम्भूय ऐक्यं ब्रह्मणि संभवेत्।
अहं ब्रह्मेति वाद्वैतं समाधिस्तेन जायते।।

अर्थात् योनिमुद्रा का साधन करके योगी स्वयं में शक्ति की भावना और परमात्मा में पुरूष की भावना करे। फिर यह भावना करें कि मुझ में और परमात्मा में शक्ति और पुरूष रूप में बिहार हो रहा है। फिर आनन्दमय ऐक्य स्थापित करता हुआ यह चिन्तन करें कि **मैं अद्वैत ब्रह्म हूँ।** इससे जो समाधि होती है उसे लय योग समाधि कहते हैं। लययोग से प्राप्त समाधि को **महालय समाधि** भी कहते हैं।

(5) भक्तियोगसमाधि – जब साधक इष्टदेव की भक्ति में अपने चित्त को लगा देता है उस स्थिति में उसे अपने शरीर का भी कोई ज्ञान नहीं रहता। अर्थात् वह बाह्य विषयों से सर्वथा पृथक संज्ञाशून्य हो जाता है। शरीर पुलकित हो जाता है और आनन्द के आँसू बहने लगते हैं। वह स्थिति भक्तियोग समाधि की है। घेरण्ड संहिता में भी इस समाधि के सम्बन्ध में कहा है –

स्वकीय हृदये ध्यायेदिष्टदेव स्वरूपकम्।
चिन्तयेद् भक्तियोगेन परमाह्लाद पूर्वकम्।।
आनन्दाश्रु पुलकेन दशाभावः प्रजायते।
समाधिः सम्भवेत्तेन सम्भवेच्चमनोन्मनि।।

अर्थात् अपने हृदय में परम् आह्लाद सहित भक्तियोग के द्वारा इष्टदेव के स्वरूप का चिन्तन करना चाहिये। इससे आनन्द के आंसू बहने लगते हैं और शरीर पुलकायमान होता है तथा मन में उन्मनी भाव और एकाग्रता आकर ब्रह्म से साक्षात्कार होता है यह भक्तियोग समाधि कहलाती है।

(6) राजयोगसमाधि – मन बड़ा चंचल । यौगिक क्रियाओं से मन की चंचल वृत्तियों पर नियंत्रण स्थापित कर उसे निरूद्ध करके आत्मा में लय करें तथा आत्मा को परमात्मा में लय कर दें। निरूद्ध मन का आत्मा के साथ तथा आत्मा का अखण्ड रूप से परमात्मा के साथ मिलन ही **राजयोग** समाधि है। घेरण्ड संहिता में इस समाधि का वर्णन इस रूप में मिलता है –

मनोमूर्च्छां समासाद्य मन आत्मनियोजयेत्।
परात्मनः समायोगात् समाधिः समवाप्नुयात्।।

अर्थात् मनोमूर्च्छा कुम्भक करता हुआ साधक मन को एकग्र करके ब्रह्म में लगावें। इस प्रकार परमात्मा के साथ समायोग सम्मिलित होने को **राजयोग–समाधि** कहते हैं। हठ्योग साधना में समाधि के स्वरूप को विविध हठयोग ग्रंथो में विभिन्न प्रकारों में बतलाया गया है, जो निम्नांकित तालिका क्र.–6 द्वारा वर्णित है–

क्र.	ग्रंथ का नाम	समाधि के प्रकार
1.	शिव संहिता	1. लय समाधि नाद के द्वारा
2.	हठ्प्रदीपिका	1. नदान्द संधान द्वारा लय समाधि
3.	घरेण्ड संहिता	1. शाम्भवी समाधि 2. भ्रामरी समाधि 3. खेचरी समाधि 4. योनिमुद्रा समाधि (ध्यान, नाद, रसानन्द एवं लय की वाचक) 5. भक्तियोग समाधि 6. मनोमूर्च्छा समाधि
4.	अष्टांगयोग	1. भक्ति समाधि 2. योग समाधि 3. ज्ञान समाधि।

तालिका क्र.–6

बोध प्रश्न :

टिप्पणी क : अपने उत्तर नीचे दिये गये स्थान में लिखें।

ख : इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

प्रश्न 3 प्राण क्या है ? विविध प्राणों के कार्य लिखिये ?

प्रश्न 4 हठयोग साधना में मुद्रा एवं बन्ध से आप क्या समझते है ? स्पष्ट कीजिये ?

6.5 इकाई 19 हठयोग साधना की परम्परा और ऐतिहासिक विकास

6.5.1. हठयोग साधना की परम्परा

हठयोग साधना का अन्तिम लक्ष्य **महाबोध समाधि** है। हठयोग साधना की परम्परा में हठयोग के आदि उपदेष्टा **योगीश्वर भगवान शिव** से प्रारम्भ होती है। अन्य योगों की परम्परा की तरह ही योग विज्ञान का ऐतिहासिक विकास तभी से शुरू हो जाता है जब से मनुष्य का अस्तित्व शुरू होता हैं। भारतीय संस्कृति में ज्ञान के सभी स्त्रोतों का उदगम् ईश्वर से शुरू होता है। जिस प्रकार ईश्वर अनादि और अजन्मा है, उसी प्रकार हठयोग विज्ञान भी सृष्टि के आरम्भ काल से प्रवाहमान है। आदिनाथ भगवान शिव का कथन शिवसंहिता में प्राप्त होता है कि–

शिवविधा महाविद्या गुप्ता गुप्ता चाग्रे महेश्वरी।
मदभाषितमिदं शास्त्रं गोवनीय मतो बुधौः।
हठविधा परं गोप्या योगिना सिद्धिमिच्छता।।

(शिवसंहिता 5/249)

अर्थात् यह हमारी कही हुई महाविधा को ही शिव विद्या कहते है यह विद्या सभी प्रकार से गोपनीय है। यह विधा हठयोग से शुरू होती है ऐसा आगे भगवान शिव का मत इस परम्परा और इसके महत्व एवं उपयोगिता को निम्नश्लोक द्वारा स्पष्ट करता

त्रैलोकये यानि भूतानि तानि सर्वाणि देहतः।
मेरूं संवेष्टय सर्वत्र व्यवहारः प्रवर्तते।
जनाति यः सर्वमिदं स योगी मात्र संशयः।।

(शिव संहिता 2/4)

अर्थात जो त्रैलाकय में चराचर वस्तु हैं सो सब इसी शरीर में मेरू के आश्रय हो के सर्वत्र अपने अपने व्यवहार को वर्तते हैं, जो मनुष्य यह सब जानता है सो योगी है। इसमें संशय नहीं हठयोग के अभ्यास की महत्तता पर भी आदि देव भगवान शिव का बड़ा स्पष्ट उपदेश है।

हठं बिना राजयोगो राजयोगं बिना हठः।
तस्मात् प्रवर्तते योगी हठे सदगुरूमार्गतः।। (5/217)

अर्थात् हठयोग के बिना राजयोग और राजयोग के बिना हठयोग सिद्व नहीं होता इस हेतु से योगी को उचित है कि योगवेत्ता सद्गुरू द्वारा हठयोग में प्रवृत हो। परिवर्तो समय में भगवान शिव द्वारा उपदेशित योग की परम्परा ने दो स्वरूप ले लिए एक परम्परा वैदिक परम्परा और दूसरी तांत्रिक परम्परा है। योग की तांत्रिक परम्परा हमारी आधुनिक जीवन पद्धति के अधिक समीप है फिर भी वैदिक और औपनिषदिक अवधारणा किसी भी दृष्टि से कम प्रासंगिक नहीं है। वेद ऋषियों–मनीषियों के मौलिक आध्यात्मिक, तात्विक, नैतिक, सामाजिक एवं व्यावहारिक विचारों के संग्रह हैं। इस परम्परा नें सृष्टि के प्रत्येक पहलू का अनुभव ईश्वरीय स्वरूप या प्रकृति की एक अभिव्यक्ति के रूप में किया है। वेद वस्तुतः चेतना के साक्षात्कार है जो चिन्तक विशेषों के कारण भिन्नता लिए प्रतीत होते है किन्तु अन्तिम सार सभी में एक समान ही है। ज्ञान और बुद्धि के स्तर पर वैदिक विचार धारा या तांत्रिक विचार धारा जो भी हो किन्तु हठयोग की सैंद्धान्तिक पृष्ठभूमि के मूल में उपरोक्त सभी धारायें एक हो जाती है ये सिद्धांत निम्नलिखित है–

(1) शरीर और मन दोनों एक दूसरे को प्रभावित करते है।
(2) प्राण और मन में दोनों परस्पराश्रित हैं।

इन दोनों हठयोग के सिद्धांतों में मंत्र, लय एवं तारक योग की भी सैद्धांतिक आवश्यकता की पूर्ति हो जाती है। क्योंकि स्थूल शरीर सूक्ष्म शरीर का ही परिणाम है इस कारण स्थूल शरीर का प्रभाव सूक्ष्म शरीर पर समानरूप से पड़ता है। अतः स्थूल शरीर के अवलम्बन से सूक्ष्म शरीर पर प्रभाव डालकर चित्त वृत्तिनिरोध करने की जितनी भी शैलियां है उन सबको हठयोग के अर्न्तभूत ही समझा जाता है।

हठयोग परम्परा के प्रमुख ऋषि :– हमने योग विज्ञान के परिचायात्मक स्वरूप के अंर्तगत हठ्योग परम्परा के

प्रमुख ऋषियों महर्षि भृगु और महर्षि विश्वमित्र के नामों का उल्लेख किया था। इसी श्रृखला में नौ नाथों एवं चौरासी सिद्धों की भी गणना होती है।

हठयोग के दो प्रमुख भेद है जो निम्नानुसार हैः–

(1) मार्कण्डेय हठयोग और

(2) नाथपंथी हठयोग।

(1) मार्कण्डेय हठयोगः– प्राचीन नालन्दा विश्वविद्यालय बिहार राज्य में स्थित था। ई0 सन् 750 के आसपास अन्तिम गुप्त राजा के समय बिहार में बौद्ध मतावलंबी पालवंशीय राजाओं का प्रभुत्व बढ़ गया इनका राज्य कामरूप (असम) तक फैला था। इन्होंने भगलपुर के पास उदन्तपुरी में एक विशाल पुस्तकालय स्थापित किया और उसी के पास विक्रमशिला नामक वौद्ध विश्वविद्यालय 800 ई0 में स्थापित किया इन्ही दो संस्थाओं के प्रभाव के कारण नालन्दा विश्वविद्यालय का पतन हो गया था। इस विश्वविद्यालय में बड़े स्तर पर मंत्रायान, तंत्रयान तथा वज्रयान का अध्ययन होने लगा। वाममार्गीय तांत्रिक उपासना जिसे सहजयान भी कहते है। यह सहजयान के साधक लोग 84 सिद्धों के नाम से विख्यात हुऐ। इन 84 सिद्धों में प्रमुख सिद्ध सरहपा, शबरपा, लूहिपा, तिलोपा, भुसुक, जालन्धरपा, मीनपा, कव्हपा, नारोपा, तथा शन्तिपा विशेष रूप से प्रसिद्ध सिद्धों में जाने जाते है। इन सिद्धो में सिद्ध नरोपा सुप्रसिद्ध दीपंकर श्रीज्ञान के गुरू थे। और नरोपा के गुरू सिद्ध तिलोपा थे। गोरखनाथजी के गुरू मत्स्येन्द्रनाथ के सिद्ध मीनपा के पुत्र थे। और सिद्ध जालन्धरपा मत्स्येन्द्रनाथ के गुरू थे।

(2) नाथपंथी हठयोगः– नाथ सम्प्रदाय का उदय लगभग 1000 ई0 के आसपास हुआ। इस साधना धारा के नौ नाथों का वर्णन निम्नानुसार है–

नौ नाथः–

1. गोरक्ष नाथ 2. ज्वालेन्द्रनाथ 3. कारिणनाथ 4. गहिनीनाथ 5. चर्पटनाथ 6. रेवणनाथ 7. नागनाथ 8. भर्तृनाथ तथा 9. गोपीचन्द्रनाथ।

नाथ सम्प्रदाय के साधक **कनफट** योगी भी कहलाते है। इनकी विशेषता उनके कान में बड़े बड़े सींग के कुण्डल होना है। इसका तात्पर्य अत्यन्त गूढ़ है। कान छेदने से साधारणतया अन्त्रवृद्वि तथा अण्डवृद्धि रोग नहीं होते। और कुछ साधकों का मत है कि इस प्रक्रिया से योगसाधना में भी सहायता मिलती है इन योगियों के गले में काले ऊन का एक बटा हुआ धागा होता है जिसे **सेली** कहते है। और इस सेली में सींग की एक छोटी सी सीटी बँधी रहती है जिसे **नाद** (श्रृगीनाद) के प्रतीक अर्थ से लिया जाता है।यह नादानुसंधान अथवा प्रणवाभ्यास का धोतक है। इनके हाथ में नारियल का खप्पर होता है।

6.5.2 हठयोग साधना का ऐतिहासिक विकास

योग विज्ञान के ऐतिहासिक विकास के अनुरूप ही हठ्योग साधना का ऐतिहासिक विकास हुआ। योग विज्ञान के अंगों में हठयोग का उल्लेख सभी में निहित है। हमने अध्ययन किया है कि भारतीय संस्कृति में ज्ञान के सभी स्त्रोतों का उदगम् **ईश्वर** से शुरू होता है। जिस प्रकार ईश्वर अनादि और अजन्मा है उसी प्रकार **योग विज्ञान** भी सृष्टि के आरम्भ काल से प्रवाहमान है। इसी क्रम में हठयोग भी अपना स्थान रखता आया है, यह अंग सबसे ज्यादा व्यवहारिक है।

हठयोग साधना के ऐतिहासिक विकास को हम दो परम्पराओं में बाँट सकतें हैः–

(1) परम्परानुसार विकास

(2) ऐतिहासिक एवं पुरातात्विक विकास।

(1) परम्परानुसार विकास

परम्परानुसार हठ्योग साधना के विकास में ऐसी मान्यता चली आ रही है कि समस्त साधनों का मूल योग है, तप, जप, संन्यास, उपनिषद् ज्ञान आदि मोक्ष हेतु अनेक हैं किन्तु सर्वोत्कृष्ट योग मार्ग ही है और योगमार्ग में प्राथमिक योग **हठयोग** ही है। इसी योग के प्रभाव से शिव सर्वसामार्थ्य, ब्रह्मकर्त्ता, विष्णु पालक हैं। योग के मुख्य उपदेष्टा भगवान शिव नें पार्वती जी से कहा कि ब्रह्म जी की कथा से **योगी याज्ञवलक्यस्मृति** बनी है। विष्णु (भगवान श्री कृष्ण जिनके अवतार मान जाते है।) ने गीता एवं भागवत् के ग्यारहवें स्कंध में कहा है कि इसके मुख्य आचार्य आदिनाथ (शिवजी) हैं। इन्हीं से नाथ संप्रदाय शुरू हुआ। ऐसी श्रुति है कि एक समय आदिनाथ किसी द्वीप में योगेश्वरी, जगत्जननी, भगवती आदिशक्ति, माँ पार्वती को योग साधना को समझा रहे थे तभी एक मछली ने यह दिव्य ज्ञान एवं दिव्य साधना से दिव्य मनुष्य देह प्राप्त किया एवं मत्स्येन्द्रनाथ के नाम से जाने गये। इन्हीं मत्स्येन्द्रनाथ नें हठयोग साधना का प्रचार प्रसार किया इनके अनुयायियों में शाबरनाथ (जिन्होंने शाबरतंत्र का प्रार्दुभाव किया) इसी श्रृंखला में आनंदभैरव नाथ, चौरंगीनाथ, आदि हुऐ। ऐसी मान्यता प्रचलित है कि ये योगी इच्छाअनुसार कही भी विचरण कर सकते थे। एक समय भ्रमण के दौरान एक चोर को हाथ पैर कटे हुऐ इन्होंने देखा इनकी कृपा दृष्टि से उस चोर के हाथ–पाँव ऊग आये तथा उसे सत्यज्ञान भी हो गया। मत्स्येन्द्रनाथ जी से योग पाकर चौरंगिया नाम **योगी सिद्ध** विख्यात हुआ। मत्सयेन्द्रनाथ से योग पाकर मीननाथ, गोरखनाथ, विरूपाक्ष बिलेशय, मंथानभैरव, सिद्धवृद्ध, कंथड़ी कोरंटक, सुरानंद, सिद्धपाद, चर्पटी, कानेरी, पूज्यवाद, नित्यानंद, निरंजन, कपाली, विंदुनाथ, काकचंडीश्वर, अल्लाम, प्रभुदेव, धोडाचोली, टिंटिणी, भानुकी, नारदेव, चण्डकापालिक तारानाथ इत्यादि योगसिद्धि पाकर योगाचार्य हुए हैं।

(2) ऐतिहासिक एवं पुरातात्विक विकास

ऐतिहासिक एवं पुरातात्विक ज्ञान के आधार पर हठयोग साधना का विकास क्रम अनुमान लगाया जा सकता है। आप जानते है कि विश्व की सर्वाधिक प्राचीन सभ्यता सिन्धुघाटी की सभ्यता है। इस काल से शुरू कर हठयोग के विकास को समझने हेतु पुरातात्विक धरोहरों एवं प्राचीन साहित्य का आधार बनाया गया है। इस प्रकार काल क्रमानुसार हठयोग विज्ञान का ऐतिहासिक विकास निम्नानुसार हैः–

(प) पूर्व वैदिक काल।
(पप) वैदिक काल।
(पपप) उपनिषदों का काल।
(पअ) महाकाव्य काल।
(अ) सूत्र काल।
(अप) स्मृति काल।
(अपप) पौराणिक काल।
(अपपप) मध्यकाल।
(पग) पूर्व–आधुनिक काल।
(ग) 21वीं शताब्दी का प्रारंभ काल।

(प) पूर्व वैदिक कालः– पुरातात्विक साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि वैदिक काल के पूर्व 3000 ईसवीं पूर्व में सिन्ध ु घाटी नामक एक ऐसी सभ्यता थी जिसमें मातृ शक्ति की पूजा की जाती थी। यही से **पुरावशेष** के रूप में प्राप्त **पशुपतिनाथ** की मुद्रा पद्यमासन में अर्धनिमिलित नेत्र जो नासिका के अग्रभाग पर स्थिर है। हठयोग साधना के अंग **आसन** का साक्ष्य प्रदान करता है। इससे हठयोग साधना की परम्परा का ऐतिहासिक कालानुक्रम पूर्व वैदिक काल तक पहुँचता है।

(पप) वैदिक कालः– हठयोग साधना का ज्ञान वैदिक समय में था क्योंकि वैदिक साहित्य से ज्ञात होता है कि प्राणापनादि वायु, सत्यधर्म की महत्ता, ध्यान, आचारशुद्धि ध्यानात्मक आसन की स्थिति आदि हठयौगिक क्रिया–प्रक्रियाओं का स्पष्ट उल्लेख प्राप्त होता है। **हठयोग** को **प्राणयोग** भी कहते है। शथपथ ब्राम्हण, एतरेय ब्राम्हण, कौशीतिकी

ब्राम्हण, जैमनीय एवं गोपथ ब्राम्हण आदि में **प्राणविद्या** के बारे में विस्तार से वर्णन है। प्रणव विद्या का विकसित रूप इस काल में आ चुका था।

(पपप) उपनिषदों का कालः— उपनिषदों के काल में हठ्योग साधना चरम उत्कर्ष पर थी। इस काल के साहित्य में प्राणयोग पर असाधारण साहित्य प्राप्त होता है। वृहदारण्यकोपनिषद् (1.5.3) एवं छांदोग्य उपनिषद् (1.3.3) में प्राण अपान आदि पाँच वायुओं के महत्व का वर्णन किया गया है। हद्रय तथा उससे निकलने वाली नाड़ियो का वर्णन कठोपनिषद (2:3:16) तथा छांदोग्य उपनिषद (8.6.1) में पाया जाता है। हठ्योग में सबसे आधिक महत्वपूर्ण समझी जाने वाली सुषुम्नानाड़ी का अप्रत्यक्ष उल्लेख भी इन दोनों उपनिषदों में तथा तैतरीय उपनिषद् (6.1) में मिलता है। श्वेताश्वतर उपनिषद में हठयोग के अभ्यासों का क्रमवार विवरण प्राप्त होता है। तथा उनका शरीर क्रियात्मक प्रभाव का वर्णन भी प्राप्त होता है। जिसकी परम्परा परिवर्ती हठयोग साहित्य में प्राप्त होती है।

(पअ) महाकाव्य कालः— रामायण एवं महाभारत काल में हठयोग साधना का पर्याप्त प्रयोग मिलता है। इस काल के अतुलनीय ग्रंथ श्रीमद्भगवत गीता में भी कई जगह हठयोग साधना के तत्व प्राप्त होते है।

(अ) सूत्र कालः— यह काल योग दर्शन की महान कृति पांतजल योग सूत्र के संकलन का काल रहा इसी समय के पहिले भगवान बुद्ध एवं भगवान महावीर का समय रहा। इस तीनों धाराओं में हठयोग साधना के पर्याप्त तत्व प्राप्त होते है।

(अप) स्मृति कालः— स्मृति काल में हठयोग साधना का स्वरूप कुछ विशेष अर्थो के प्रार्दुभाव के साथ हुआ। इस काल से रचित याज्ञवलक्य स्मृति, मनुस्मृति, दक्षस्मृति आदि में पर्याप्त हठयोग साधना के सिद्धांत समाहित है।

(अपप) पौराणिक कालः— पौराणिक काल में हठयोग साधना पर पर्याप्त साहित्य उपलब्ध होता है। प्रथम ईसवी सदी के आसपास से पौराणिक काल की शुरूआत हो जाती है। इस काल में 18 पुराणों की परम्परा है साथ ही इनके 18 उपपुराण भी है हंलाकि इनकी संख्या सैकड़ों में भी हो सकती है। इन पुराणों में हठयोग साधना के कई संदर्भ जगह–जगह पर प्राप्त होते है।

(अपपप) मध्य कालः— मध्यकाल में हठयोग साधना की गहरी परम्परा रही है। इन परम्पराओं को चार प्रकारों में पृथक–पृथक अध्ययन की सुविधा हेतु बाँटा जा सकता है। ये निम्नलिखित प्रकार से है–

(अ) तन्त्र धारा (ब) नाथ धारा (स) भक्तिधारा (द) शंकराचार्य धारा।

इस काल में हठयोग साधना का उद्भव अपने चरमोत्कर्ष पर था। तन्त्रों में हिन्दू और बौद्ध दोनों तन्त्रों में हठयोग की साधनाओं के स्त्रोत भरे पड़े है। नाथों तथा सिद्धों की साधना पद्धति तो शुद्ध हठयोग साधना विधान ही है। भक्ति काल में भी हठयोग साधना के तत्व शण्डिल्य सूत्र, नारद भक्ति सूत्र इत्यादि में प्राप्त होते हैं। शंकराचार्य धारा भी प्राण साधना द्वारा हठयोग से ओत–प्रोत है।

(पग) पूर्व आधुनिक कालः— इस काल में स्वामी शिवानंद, स्वामी विवेकानंद , स्वामी कुवल्यानंद आदि योग साधकों ने हठयोग के अंगोपर पर्याप्त बल दिया है। एवं हठयोग साधना पर वैज्ञानिक प्रयोग भी इस समय में किये गये है। इस काल हठयोग साधना के कई ग्रंथों का प्रणायन हुआ।

(ग) 21 वीं शताब्दी का प्रारम्भ कालः— इस काल में विशेष धार्मिक सामाजिक आंदोलनो के रूप में योग का जो स्वरूप विकसित हो रहा है उसमें सर्वाधिक प्रयोग हठयोग साधना के अंगों का हो रहा है। इस काल में हठयोग साधना के आश्रमों संस्थाओं विद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों के स्तर पर भी हठ्योग साधना के अभ्यास को महत्व दिया जा रहा है। इस साधना पद्धति पर शोध की संभावनाएं बढ़ी है मेडिकल कॉलेजों में हठयोग के शरीर क्रियात्मक प्रभाव पर अनेक शोध परियोजनाएँ संचालित हो रही है। शसकीय स्तर पर भी इस साधना पद्धति को समर्थन एवं अनुदान प्राप्त हो रहा है।

————0————

बोध प्रश्न :

टिप्पणी क : अपने उत्तर नीचे दिये गये स्थान में लिखें।

ख : इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

प्रश्न 5 हठयोग साधना की परम्परा से आप क्या समझते है ? संक्षेप में समझाइये ?

प्रश्न 6 नौ नाथों से क्या समझते है स्पष्ट कीजिये ?

6.6 सारांश

हठयोग का स्वरूप साधना एक वर्षीय योग विज्ञान पत्रोपाधि कार्यक्रम के द्वितीय प्रश्न पत्र के खण्ड 6 में आपने हठयोग के स्वरूप, अर्थ सिद्धांत अवधारणा, स्त्रोत (अंग) परम्परा एवं ऐतिहासिक विकास का अध्ययन किया इसमें आपने ने यह पाया कि

केवल मनुष्य ऐसा प्राणी है जो अपनी इंद्रियों में नियत्रंण कर सकने का विवेक रखता है। यह तत्व उसे अन्य प्राणियों से श्रेष्ठ बनाता है। इंद्रियों पर नियंत्रण तभी किया जा सकता है जब मन को नियंत्रित किया जा सकेगा। मन मनुष्य के पूर्व संस्कारों की वृत्तियों के अनुरूप चंचल एवं सतत् परिणामशील है। चित्त की वृत्तियों के निरोध ा से मन का नाश संभव है। इस प्रकार मन का नाश इंद्रियों के नियंत्रण के लिये अतिआवश्यक है। मन चूकिं पूर्व संस्कारों के एवं वर्तमान परिस्थितियों के प्रभाव से अत्यंत चंचल बना रहता है उसकी चंचल वृत्ति से व्यक्तित्व में विघटन का कारक या बंधन का कारण होता है। बंधन से मुक्त होने हेतु मन पर नियत्रंण पहली शर्त है। इसी मन को नियत्रित करने की विद्या या विज्ञान **हठयोग विज्ञान** के नाम से जाना जाता है।

हठयोग विज्ञान दो मूल सिद्धांतों को लेकर कार्य करता हैः—

(1) शरीर और मन दोनों एक दूसरे को प्रभावित करते है।

(2) प्राण और मन ये दोनों परस्पराश्रित है।

अतः मन पर नियंत्रण हेतु प्राणों का श्वास तकतीक के द्वारा नियमन एवं नियंत्रण द्वारा मन को वश में कर (अपने नियंत्रण में लेकर) चित्त को शांत कर अर्थात मन की चंचलता से उठनेवाली वृत्तियों का निरोध कर इंद्रियों पर विजय प्राप्त की जा सकती हैं। यही हठयोग साधना का फल राजयोग हेतु आधार भूमि तैयार करता है। इस हेतु हठयोग साधना के निम्नलिखित सात सोपानों में पूर्णता प्राप्त करना होता है।

(1) षट्कर्म :— दूषित शरीर के शोधन हेतु क्रियायें।

(2) आसन :— शरीर को स्थिरता एवं सुखपूर्वक लम्बे समय तक रख सकने की योग्यता। अर्थात् शरीरिक दृढ़ता प्राप्त करना।

(3) मुद्रा एवं बन्ध :— कुछ विशिष्ट शरीरिक भाव भगिमाये (मुद्रा) एवं प्राणों को अंग विशेष में रोके रखना (बन्ध) इन मुद्रा एवं बन्ध से शारीरिक एवं मानसिक स्थैर्य प्राप्त किया जा सकता है।

(4) प्रत्याहार :— मन जब इन्द्रियों के साथ मिलकर कार्य करता है तो कर्म का सम्पादन होता है। अतः मिथ्या इन्द्रिय जन्य कर्मों को त्यागकर मन को इन्द्रियों से खींचकर अपने चित्त में स्थिर रहना प्रत्याहार है तथा इससे धैर्य की प्राप्ति होती है।

(5) प्राणायाम :—प्राणों को सम्पूर्ण अंग विशेष के सूक्ष्मतम भागों में प्रवेश करा देना प्राणों को आयाम या विस्तार देना है। इससे शरीर में लाघव या हल्कापन एवं निरोगता आती है।

(6) ध्यान :— प्राणों को आयाम देकर मन को वश में कर किसी स्थान, वस्तु , या लक्ष्य विशेष पर प्राणों को एकाग्र करना ध्यान कहलाता है। ध्यान से समाधि की उपलब्धि होती है। तथा चिन्तन की विषय वस्तु का प्रत्यक्ष हो जाता है।

(7) समाधि :— ध्यान की एकाग्रता का लगातार बने रहना समाधि है समाधि की अवस्था ही हठयोग से राजयोग में प्रवेश का द्वार है।

इस प्रकार से सात अंग हठयोग साधना की क्रमशः सीढ़ियाँ है। इस प्रकार हठयोग साधना की परम् गोप्य प्रणाली का ज्ञान हठयोगी साधक की शरण से ही प्राप्त हो सकता है ऐसा स्वयं भगवान शिव का कथन है। अतः इस जगत् के कर्म बन्धनों को काटकर मुक्ति का व्यवहारिक एवं श्रेष्ट मार्ग हठयोग साधना पद्धति है जिससे शरीर के स्तर से लेकर इंन्द्रियों मन चित तथा आत्मा के बोध तक जाया जा सकता है।

6.7 बोध प्रश्नो के उत्तर

प्रश्न 1. हठयोग शब्द से आप क्या समझते है ? स्पष्ट कीजिये ?

उत्तर – विभिन्न यौगिक उपनिषदो में मुख्य रूप से छह प्रकार के योगों का वर्णन मिलता है, जो क्रमशः कर्मयोग, ज्ञानयोग, हठयोग, राजयोग, मंत्रयोग तथा लययोग है। इनमें **राजयोग** को, जैसा कि नाम से विदित है, सभी योगों का राजा या श्रेष्ठतम योग माना गया है। इसकी अन्तिम अवस्था प्राप्त करने में **हठयोग की साधना** सहायक होती है।

साधारणतः 'हठ शब्द का अर्थ बल, जिद, दुराग्रह होता है। शाब्दिक दृष्टि से हठ **ह** एवं **ठ** से मिलकर बना है। यौगिक दृष्टि से **ह** (हं) का प्रतिनिधत्व करता है, जिसका सांकेतिक अर्थ है **चन्द्र** अर्थात इड़ा नाड़ी तथा **ढ** ढम् का धोतक है जिसका अर्थ है **सूर्य** अर्थात् पिंगला नाड़ी, और **योग** का अर्थ होता है मिलन। अतः हठ योग का अर्थ हुआ – हमारे जीवन के सूर्य व चन्द्र नाड़ियों के बीच संतुलन या मिलन कराने वाली विद्या या योग साधना पद्धति।

प्रश्न 2. हठयोग के सिद्वांत से आप क्या समझते है ? स्पष्ट कीजिये।

उत्तर – योग साधना के चार सम्प्रदाय उपनिषदों में बताये गये है। ये है राजयोग, लययोग, हठयोग एवं मंत्र योग। क्लेश आदि के रहने पर योग की स्थिति नहीं बन सकती इस हेतु क्लेशादि को हटाना आवश्यक हो जाता है। कर्मो के अनुरूप व्यक्ति शरीर ग्रहण कर **भावना भाषित** होता है। ये भावनाएँसात्विक, राजसिक एवं तामसिक प्रकार की होती है। इन अलग अलग स्वरूपों की भवनाओं के सामंजस्य हेतु योग के प्रकार भी अलग अलग हो जाते है। तथा कर्म का स्वरूप एक समान होने पर भी भावना अनुरूप उसके परिणाम में भिन्नता हो जाती है।

उपनिषद मन को बन्धन एवं मोक्ष का कारण मानते है। क्योंकि कर्मो की उत्पत्ति कर्त्ता एवं चालक कर्म ही है। उनके नियंत्रण हेतु हठयोग साधना निम्न दो सिद्धांतों पर अवधारित है।

(1) शरीर और मन दोनों एक दूसरे को प्रभावित करते है।

(2) प्राण और मन ये दोनों परस्पराश्रित है।

अतः मन पर नियंत्रण हेतु प्राणों का श्वास तकनीक के द्वारा नियमन एवं नियंत्रण द्वारा मन को शांत कर चित्त के अनुरूप अपने को स्वरूप में प्राप्त करना इस अवस्था में सूर्य एवं चन्द्र स्वर मिलकर सुषुम्ना से प्रवाहित होने लगते है। प्राणों को नियत्रंण में कर राजयोग की साधना पद्धति, शरीरशुद्धि से शुरू होकर सप्तअंगों द्वारा समाधि की अवस्था की ओर बढ़ती है। यही हठयोग का सिद्धांत है।

प्रश्न 3 प्राण क्या है ? विविध प्राणों के कार्य लिखिये ?

उत्तर– योग विज्ञान के अनुसार प्राण एक अन्तर्निहित तेजस्वी शक्ति है। यह जगत् के तत्वों के स्तर पर आकाश से लेकर पृथ्वी तक पदार्थ जगत् के समस्त भावों में व्याप्त है। जगत् का हर एक तत्व विविध रूपों में प्राणिक शक्ति के संयोजन और संघटन का ही परिणाम है। पदार्थ प्राणिक शक्ति के सर्वाधिक सघन रूप है। जगत् के समस्त् अस्तित्वान् (व्यक्त) रूपों में जो संपीडित या धनीभूत शक्ति है वह प्राणिक शक्ति की ही अभिव्यक्ति है।

हठयोग–साधना के मूल आधार प्राण है। ये व्यक्त प्राण दो है। (1) इड़ा (2) पिंगला। पिंगला से पांच उप प्राण निकलते है ये है–

(1) प्राण, (2) अपान ,(3) समान, (4) ब्यान, (5) उदान इन प्राणों के कार्य निम्नलिखित हैः– प्रधान प्राण अपने को इन उप विभागों में विभक्त कर शरीर की विभिन्न क्रियाओं तथा इन्द्रियों और मन बुद्धि को सक्रिय बनाये रखता है। प्राण, अपान, समान, व्यान और उदान ये मुख्य प्राण है। नाग कूर्म, कृकल, देवदत्त ओर धनंजय सूक्ष्म प्राण कहलाते हैं। इनके कार्य निम्नलिखित हैः–

(1) प्राण– यह मानव जीवन का आधार है इसका मुख्य स्थान हृदय है। श्वास को लेना और बाहर निकालना, खासना, खाये अन्न का पाचन करना, रसादि धातुओं का निर्माण करना **प्राण** के कार्य हैं। नाभि से ऊपर के सभी कार्य और इन्द्रियां प्राण द्वारा ही संचालित होती है।

(2) अपान– नाभिप्रदेश के नीचे गुदा, उपस्थ, जंघा, घुटने और कटि प्रदेश में अपान स्थित है। मल, मूत्र, शुक्र और गर्भ को नीचे की ओर ले जाना और बाहर निकालना इस कार्य है।

(3) समान– नाभि प्रदेश में स्थित समान प्राण बचे हुये रस आदि को शरीर के सब अंगो और नाड़ियों में बांटने का कार्य करता है।

(4) व्यान– सारी स्थूल और सूक्ष्म नाड़ियों में गति करना हुआ शरीर के सब अंगो में रूधिर (रक्त) का संचार करता है।

(5) उदान– कण्ठ में स्थित है। शरीर को उठाये रखना इसका कार्य है। मृत्यु के समय उदार ही सूक्ष्म शरीर को बाहर निकाल कर ले जाता है।

प्रश्न 4 हठयोग साधना की परम्परा से आप क्या समझते है। संक्षेप में समझाइये ?

उत्तर– महावोध समाधि की आकांक्षा रखने वाले हठयोग साधना की परम्परा के साधक इस परम्परा के साधक होते है। इस परम्परा की शुरूआत आदिनाथ योगीश्वर भगवान शिव से हुई ऐसा शिवसंहिता में स्वयं भगवान शिव का उपदेश है।

भारतीय संस्कृति में ज्ञान के सभी स्त्रोतों का उद्‌गम् ईश्वर से शुरू होता है। जिस प्रकार ईश्वर अनादि और अजन्मा है उसी प्रकार हठयोग विज्ञान भी सृष्टि के आरभ्भ काल से ही प्रवाहमान है। भगवान शंकर ने शिवसंहिता में कहा है कि जो त्रैलोक्य में चराचर वस्तु है जो सब इसी शरीर में मेरू के आश्रय हो के सर्वत्र आपने–आपने व्यवहार को वर्तते हैं। इस प्रकार साधना का क्षेत्र यही मनुष्य शरीर है। शिव द्वारा प्रदत्त हठयोग का ज्ञान बाद में दो परम्पराओं में बट गया। ये निम्न हैः–

(1) वैदिक परम्परा
(2) तान्त्रिक परम्परा

इन परम्पराओं के भी बाद में दो साधना सम्प्रदाय हो गये ये निम्नलिखित हैः–

(1) मार्कण्डेय सम्प्रदाय
(2) नाथ सम्प्रदाय

नाथ सम्प्रदाय (कनफटे योगी) की हठयोग साधना पद्धति आज ज्यादा लोकप्रिय बनी हुई है।

प्रश्न 6 नौ नाथों से क्या आशय है स्पष्ट कीजियें ?

उत्तर– नौ नाथ सम्प्रदाय का उदय लगभग 1000 ई0 के आसपास हुआ। इस साधना धारा के नौ नाथों का वर्णन निम्नानुसार है–

नौ नाथः–

1. गोरक्ष नाथ।
2. ज्वालेन्द्रनाथ।
3. कारिणनाथ।
4. गहिनीनाथ।
5. चर्पटनाथ।
6. रेवण्नाथ।
7. नागनाथ।
8. भर्तृनाथ तथा।
9. गोपीचन्द्रनाथ।

नाथ सम्प्रदाय के साधक **कनफटे** योगी भी कहलाते है। इनकी विशेषता उनके कान में बड़े बड़े सीगं के कुण्डल हाना है। इसका तात्पर्य अत्यंन्त गूढ़ है। कान छेदने से साधारणतया अन्त्रवृद्वि तथा अण्दवृद्धि रोग नहीं होते। और कुछ साधकों का मत है कि इस प्रक्रिया से योगसाधना में भी सहायता मिलती है इन योगियों के गले में काले ऊन का एक बटा हुआ धागा होता है जिसे **सेली** कहते है। और इस सेली में सींग की एक छोटी सी सीटी बँधी रहती है जिसे **नाद** (श्रृगीनांद) के प्रतीक अर्थ से लिया जाता है।यह नादानुसंधान अथवा प्रणवाभ्यास का धोतक है। इनके हाथ में नारियल का खप्पर होता है।

6.8 परिभाषिक शब्दावली

(1) वेद–ज्ञान (विद्–ज्ञाने) सायण के आनुसार वेद वह शब्द–राशि है जो अभीष्ट–प्राप्ति और अनिष्ट को दूर रखने का आलौकिक, दिव्य उपाय बताने वाले ग्रंथ है। ये चार है ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, तथा अथर्ववेद। चूकि ये तीनों विद्याओं का ज्ञान देते है अतः इन्हें त्रयी भी कहते है।

(2) उपनिषद्– उपनिषद् वेदों के एक भाग है। वेद चार भाग मिलकर बने होते है– (1) संहिता (2) ब्राह्मण (3) आरण्यक (4) उपनिषद्। इनमें उपनिषद् ब्रह्मविषयक दार्शनिक चर्चा को कहते है इन्हें ही वेदांत भी कहा जाता है क्योंकि इनके पश्चात, वेदो का और कोई साहित्यक विभाजन नहीं होता है।

(3) षटकर्म– हठयोग में कफ प्रधान शरीर की शुद्धि हेतु छः शुद्धि कर्म बतायें गये है ये है (1) स्वात्माराम के अनुसार – धौती, वास्ति, नेति, नौली, कपालभाति, और त्राटक (2) चरणदास जी ने अनुसार कपालभांति की जगह गजकरणी लिया है शेष पाँच समान है।

(4) मन– ज्ञान का होना या न होना मन का लक्षण है। शरीर में तेरह करण होते है 5 ज्ञानेन्द्रिया 5 कर्मेन्द्रिय जिन्हें ब्राह्म करण तथा मन, बुद्धि, अहंकार, अन्तः करण है। मन त्रिगुणात्मक होता है सत्व, रज, या तम इस कारण तीन प्रकार के ब्यक्तित्व जगत् में प्राप्त होते है।

(5) सुषुम्ना नाड़ी– हमारे शरीर में बहत्तर हजार नाड़िया है। इनमें से 10 प्रमुख है। इन 10 में से तीन प्रमुख नाड़िया है ये है (1) इड़ा (2) पिंगला तथा इन दोनों के मध्य में स्थिति नाड़ी को (3) सुषुम्ना नाड़ी कहते है।

(6) महाप्राण– प्राण के अतीन्द्रिय, अलौकिक–अव्यक्त पहलू को महाप्राण कहां जाता है।

(7) उपप्राण– महाप्राण में अर्न्तनिहित शक्ति के अभिव्यक्त रूपों को उपप्राण कहा जाता है।

(8) हठप्रदीपिका– योगी स्वात्माराम द्वारा लिखित हठयोग प्रदीपिका एक हठयोग का ग्रंथ है। जिसकी साधना राजयोग की ओर ले जाती है।

(9) धरेण्ड संहिता – महर्षि घेरण द्वारा उपदेशित ग्रंथ को घेरण्ड संहिता नाम से जाना जाता है।

(10) अष्टांग योग – स्वामी चरण जी द्वारा लिखित ग्रंथ का नाम अष्टांग योग है।

6.9 उपयोगी संदर्भ ग्रंथ

(1) योग एस डेप्थ साइकोलॉजी एण्ड पैरा साइकोलॉजी टवसण् ए हिस्टोरिकल बैकग्रउण्ड
डॉ. सी. टी. केन्गें
भारतीय मनीषा प्रकाशन
वाराणसी

(2) योग साइक्लोपीडिया भाग (ए ण्ए ण्ण्)
डॉ. जयदेव योगेन्द्र
ईस्ट बम्बई – 400055

(3) भारतीय दर्शन का सर्वेक्षण
संगम लाल पाण्डेय
सेन्ट्रल पब्लिशिंग हाऊस, इलाहाबाद

(4) भक्ति सागरादि
स्वात्माराम योगेन्द्र
खेमराज श्री कृष्णदास प्रकाशन
बम्बई

(5) दी हठयोग प्रदीपिका ऑफ स्वात्माराम (ब्रम्हानंद ज्योत्सना टीका)
के. कुन्जुनी राजा
जनरल एडीटर
टैक्सट कामेन्टरी ट्रान्सलेशन
दी अड्यार लाइब्रेरी एन्ड रिसर्च
सेन्टर चैन्यै– 600020

(6) हठप्रदीपिका ऑफ स्वात्माराम
स्वामी दिगम्बर जी एवं पं. रघुनाथ शास्त्री
कैवल्यधाम लोनावाला
पूना महाराष्ट्र 410403

(7) शिव संहिता
गोस्वामी श्रीराम चरण पुरी
खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन
बम्बई

(8) हठयोग एक ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य एवं हठयोग प्रदीपिका
सुरेन्द्र कुमार शर्मा
प्रकाशक ईस्टर्न बुक लिंकर्स
दिल्ली

(9) गोरख दर्शन
अक्षय कुमार बनर्जी
गोरखनाथ मन्दिर गोरखपुर

(10) योग का वैज्ञानिक रहस्य
श्री रमणदास महात्यागी
प्रकाशक चौखम्बा ओरिएन्टालिया
वाराणसी

————0————

खण्ड –7

हठयोग प्रदीपिका का परिचय

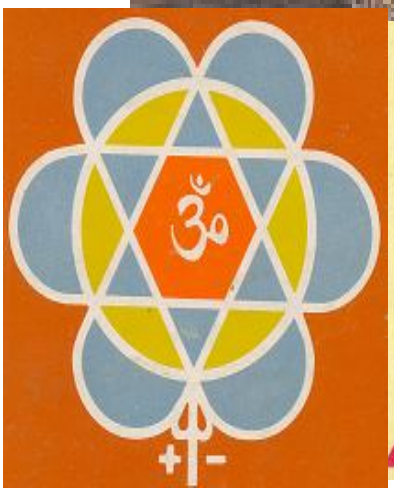

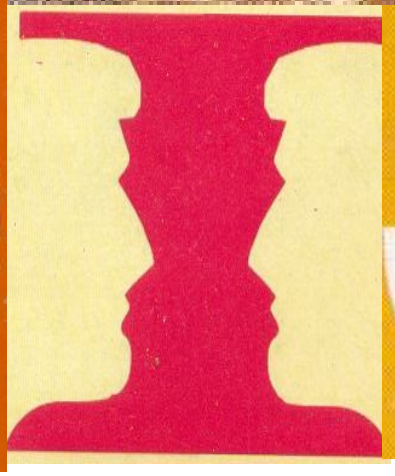

खण्ड–7 हठयोग प्रदीपिका का परिचय

योग विज्ञान में कार्यक्रम के इस द्वितीय प्रश्न पत्र हठयोग विज्ञान के सप्तम खण्ड का अध्ययन यहां करेगें। इस खण्ड के अंतर्गत इकाई क्र. 20, 21, 22, 23, 24, एवं 25 इन छः इकाईयों का अध्ययन निम्नलिखित खण्ड संरचना के अनुसार किया जावेगा।

खण्ड संरचना –7

		पृष्ठ क्र.
7.0	प्रस्तावना ————————————————————	39
7.1	उद्देश्य ————————————————————	39
7.2	विषय प्रवेश ————————————————————	39–41
7.3	इकाई 20 स्वात्माराम एवं ग्रंथ ————————————	41–43
	7.3.1 हठयोग प्रदीपिका का रचना काल	
	7.3.2 हठयोग प्रदीपिका के प्रकाशित संस्करण	
7.4	इकाई 21 हठयोग प्रदीपिका में योग साधना की आवश्कताएँ ——— एवं पूर्व तैयारियां	44–72
	7.4.1 हठयोग प्रदीपिका में वायु।	
	7.4.2 हठयोग साधना का प्रथम अंग एवं उसकी विवेचना।	
7.5	ईकाई 22 हठयोग प्रदीपिका में वायु एवं नाड़ी शुद्धि ———	73–85
	7.5.1 हठयोग प्रदीपिका में वायु।	
	7.5.2 हठयोग प्रदीपिका में नाड़ी शुद्धि।	
7.6	ईकाई 23 हठयोग प्रदीपिका में प्राणायाम, मुद्रा, बन्ध, ग्रंथियाँ ——— एवं कुण्डलिनी	86–110
	7.6.1 प्राणायाम	
	7.6.2 मुद्रा	
	7.6.3 बन्ध	
	7.6.4 ग्रंथियाँ	
	7.6.5 कुण्डलिनी	
7.7	ईकाई 24 हठयोग प्रदीपिका में नाद–बिन्दू कला, समाधि एवं ——— नदानुसंधान	111–113
	7.7.1 नाद–बिन्दु–कला	
	7.7.2 समाधि	
	7.7.3 नादानुसंधान	
7.8	ईकाई 25 यौगिक चिकित्सा ————————————	115–119
	7.8.1 यौगिक चिकित्सा के सिद्धांत	
	7.8.2 हठयोग प्रदीपिका में सामान्य रोग एवं उनकी चिकित्सा	
7.9	सारांश ————————————————————	119–120
7.10	बोध प्रश्नों के उत्तर ————————————	121–123
7.11	पारिभाषिक शब्दावली ————————————	123–123
7.12	उपयोगी संदर्भ ग्रंथ ————————————	123–124

7.0 प्रस्तावना

द्वितीय प्रश्न पत्र खण्ड 7 के अन्तर्गत इकाई 20, 21, 22, 23, 24, एवं 25 का अध्ययन आप करने जा रहे है। यह खण्ड हठ योग के प्रमुख आचार्यो के ग्रंथों के परिचय, उनकी विषयवस्तु तथा सिद्धांतों पर आधारित है। हठयोग की वैदिक विचार धारा एवं तांत्रिक विचार धारा के समन्वय इन प्रमुख ग्रंथों की विषय वस्तु है। इन छः इकाईयों में आप इन ग्रंथों का रचना काल, हठ्योग अंग, उनके रचनाकार, योगांगों का विभाजन अंगों की संख्या एवं शुरूआत, आसनों के प्रकार और उनकी क्रिया विधि प्राणायाम, चक्र, मुद्रा, नाड़ियां शुद्धि, क्रियायें उनके प्रकार तथा उनकी व्यवहारिक तकनीकों का ज्ञान, सिद्धियां उनका स्वरूप एवं सिद्धियों को प्राप्त करने की विधियों, का विस्तृत विवरण प्राप्त हो सकेगा। साथ ही साथ इन हठ्यौगिक ग्रंथों में प्रत्याहार, धारणा ध्यान और समाधि के बारे में जानकारी प्राप्त हो सकेगीं। आप जानेगें कि हठ् प्रदीपिका में यम और नियम के कितने प्रकार दिये गये है। घेरण्ड संहिता एवं अष्टांग योग यम एवं नियम की बात किस प्रकार से करते है। हठप्रदीपिका, घरेण्ड संहिता और अष्टांग योग में योग आसनों के प्रकार एवं विधि किस प्रकार बतलाई गयी है। इन तीनों ग्रथों में प्रणायाम के भेद किस प्रकार से वर्णित है। इनमें मुद्राओं की संख्या एवं स्वरूप किस प्रकार का है। इन ग्रंथों में शुद्धि क्रियाओं के प्रकार एवं उनकी कार्यविधि की क्या–क्या विशेषताएँ है। इस प्रकार आप तीनों ग्रंथों का एक प्रकार से अध्ययन के साथ–साथ तुलनात्मक अध्ययन प्राप्त कर सकेगें। जिससे आपका दृष्टिकोण साधना पद्धति एवं क्रिया विधि के प्रति एक दम व्यवहारिक एवं स्पष्ट रूप ले सकेगा।

7.1 उद्देश्य

खण्ड 7 के अर्न्तगत इकाई 20, 21, 22, 23, 24, एवं 25 के अध्ययन का उद्देश्य हठयोग के स्वरूप एवं साधना की क्रिया विधि का निम्नलिखित रूप में विस्तार पूर्वक ज्ञान करवाना है जिससे आप समझ सकेगें कि –

- हठयोग के ग्रंथों की विषय वस्तु एवं ग्रंथकार कौन–कौन है।
- हठयोग के अंग कितने है और उनमें क्या समानता अथवा भिन्नता है।
- हठयोग चिकित्सा का स्वरूप क्या है।
- हठयोग साधना किस स्तर तक व्यक्ति के आध्यात्मिक स्तर को उन्नत करती है।
- हठयोग के इन संदर्भित विषयों में क्या अर्न्तसंबंध है।
- आप इन इकाईयों के अध्ययन से हठ्योग के सभी अंगों को समझ कर उनमें तुलनात्मक उपयोगिता स्वयं ही निर्धारित कर सकने में सक्षम हो सकेगें। एवं हठयोग साधना के वास्तविक स्वरूप को प्राप्त करने में सक्षम हो पायेगें।

7.2 विषय प्रवेश

इस खण्ड में जिन छः इकाईयों का अध्ययन आप करने जा रहे है। उन सभी का आधार **योगीन्द्र स्वात्माराम** के द्वारा रचित हठयौगिक ग्रंथ **हठयोग प्रदीपिका** नामक योग साधकों का अत्यन्त प्रिय एवं एक व्यवहारिक योग शास्त्र का अद्भुत एवं मौलिक विशलेषण परक ग्रंथ है। जिसमें व्यक्त अनुभवों और साधना पद्धति के परिप्रेक्ष्य में योगसाधक को सहज **राज योग** की सिद्धि प्राप्त हो जाती है।

योगीन्द्र स्वात्मा राम जी के इस ग्रंथ **हठयोगप्रदीपिका** को अनेकों योगसम्प्रदायों एवं साधकों तथा जनसाधारण द्वारा स्वास्थ्य साधना हेतु एक मार्ग निर्देशिका के रूप में इसे स्वीकार किया गया है। इस ग्रंथ के निर्देशों एवं साधना पद्धति का अनुसरण कर अनेक योगाभ्यासियों और योगसिद्धों ने जीवन्मुक्ति प्राप्त की है। **हलांकि हठयोग** प्रदीपिका हठयोग का ग्रंथ है तथापि यह ग्रंथ राजयोग और हठयोग का समन्वयक शास्त्र है।

हठयोग प्रदीपिका के चौथे उपदेश में **मनोन्मनी** और समाधि की चरम अवस्था में योगीन्द्र स्वात्माराम ने जिस राजयोग को प्रकाशित किया है उससे इस तथ्य का स्पष्टीकरण हो जाता है कि **राजयोग** की सिद्धि को ही दृष्टि में रखकर हठयोग प्रदीपिका ग्रंथ का प्रणयन किया गया है। यहां यह भी ध्यान रखने योग्य है कि निर्मल और वशवर्ती मन से सम्पन्न योगी ही इस समन्वयात्मक स्वरूप के रसास्वादन को प्राप्त कर सकने में सक्षम हो पाता है।

योग के परिचायात्मक स्वरूप के अर्न्तगत आप अच्छी तरह समझ चुके है कि हठ्योग प्राण साधना की विद्या है। **हठयोग प्रदीपिका** के रचनाकार ने इस ग्रंथ का प्रणयन ही **प्राणविद्या** के उपदेश के लिये ही इस रचना में योग प्राप्ति हेतु सैद्धांतिक और व्यवहारिक प्रयोगात्मक पक्षों का समन्वयात्मक दृष्टिकोण अपनाया है। इस समन्वय की आधारशिला है राजयोग की सिद्धि प्राप्त करना। आप जान चुके है कि महर्षि पंतजलि के योगानुशासन के धरातल पर चित्तवृत्ति निरोध, मन और प्राण के सयंम से ही सम्भव हो सकता है, और यह सयंम ही हठयोग है। **ह** प्राण का वाचक है और **ठ** अपान का वाचक है। प्राण और अपान का नाभिस्थान में अपकर्षण कर उनका उर्ध्वमुखीकरण करना ही **प्राण** और **मन** का **संयम** है प्राण और मन के संयमित होने पर चित्तवृति–निरोध स्वरूप योग ही योगी की **समाधि–अवस्था** में राजयोग की सिद्धि करवाता है। इस प्रकार यह बड़ा ही स्पष्ट तथ्य है कि मन और प्राण के संयम से ही स्वरूपावस्था की उपलब्धि (प्राप्ती) होती है।

हठयोग साधना के सोपानों से हमारा भौतिक (स्थूल) शरीर भी शुद्ध एवं व्याधियों से रहित हो जाता है। **सूक्ष्म शरीर** (मन), निर्मल हो जाता है एवं ह्रद्रय की गति संतुलित हो जाती है, कारण शरीर चित्त की चंचलता के क्षय हो जाने की स्थति में साधक स्वस्थ होकर अपनी योग साधना का लक्ष्य हासिल कर लेता है। साधना करते–करते योगी क्रमशः सामर्थ्यवान् होते जाता है और जीवन्मुक्ति का आनंद करते हुए मृत्यु को टाल देता है। इस यौगिक शब्दावली में **कालवचंन** कहा जाता है। किन्तु यहां यह भी ध्यान रखना है कि मृत्यु को टाल देना मृत्यु को रोकना नहीं है, योगी साधक प्राकृतिक विधानों का उल्लंघन करके मृत्यु को रोकने का प्रयास नहीं करता वह इसे जीवन की असंगति ही मानता है, मृत्यु को टालना तो एक दूसरी अस्थायी प्रक्रिया है। योगीन्द्र स्वात्माराम ने इन सभी बातों के हर एक पहलुओं को अपने हठयोग प्रदीपिका ग्रंथ में व्यवहारिक रूप से स्पष्ट करने का पूर्ण प्रयास किया है। हमने यह भी देखा है कि हठयोग के आदि प्रवर्तक आदिनाथ भगवान **शंकर** द्वारा जगदीश्वरी **पार्वती** के प्रति उपदिष्ट योगाज्ञानामृत की परम्परा का, जिसकी अक्षुणता योगीन्द्र मत्स्येन्द्रनाथ और शिवगोरक्ष महायोगी **गोरखनाथ** की ही देन है। यह भी स्पष्ट है कि यह साधना पद्धति स्वसंवेद्य होते हुए भी, **श्रुति–स्मृति–आगम** तथा **तन्त्रादि** में वर्णित **योगविद्या** के सभी आधारभूत पहलुओं के अनुरूप है। हठ्योग के साधक के लिए यह उपादेय है कि उसे **राजयोग** के लिए हठयोग की क्रमशः साधना को अपना चाहिये, जिससे **शरीर** और फिर **मन** निर्दोष होन पर वह अपने लक्ष्य की ओर सफलता के साथ बढ़ सकें। इसी लिये स्वात्माराम जी ने अपनी **हठयोगप्रदीपिका** में प्रथम उपदेश के दूसरे श्लोक में ही योग साधना के अन्तिम लक्ष्य को स्पष्ट कर दिया है। निम्नलिखित श्लोक के अनुसार–

प्रणम्य श्रीगुरूं नाथं स्वात्मारामेण योगिना।
केवलं राजयोगाय हठ विद्योपदिश्यते।।

(ह.यो.प्र.1/2)

यह स्पष्ट है कि हठ्योग या हठ्विद्या का उपदेश केवल राजयोग की प्राप्ति के लिए किया गया है। इसके अन्य प्रयोजन क्रमवश एवं मूल उद्देश्य की प्राप्ति के सहायक अंग के रूप में ही है न कि उनका पृथक साधना परक कोई अन्य उद्देश्य।

आपने अध्ययन किया है कि हठयोग के सम्बन्ध में अनेक पूर्ववर्ती ग्रंथ जैसे शिवसंहिता, गोरक्षसंहिता विवेकमार्तण्ड, योगबीज, सिद्धसिद्धान्तपद्धति, महर्षि घेरण्डकृत घेरन्ड संहिता तथा अनेक योगोपनिषद आदि ग्रंथ इस हठयोग प्रदीपिका का रचना के मूलाधार है। तथा इन ग्रंथों के बाद रचित ग्रंथ जैसे योगचिंतामणि, हठरत्नावली, हठसंकेत चन्द्रिका, हठतत्वकौमुदी आदि। हठयोग प्रदीपिका ग्रंथ के अनुवर्ती और उसी परम्परा के वाहक ग्रंथ है। हठयोग प्रदीपिका का मूल जोर मन की अमनस्कता पर था, यही प्रायः सभी योगपरक ग्रंथों का मूल साधना लक्ष्य रहा है।

हठयोग प्रदीपिका ग्रंथ के विषयानुक्रम में आप देखेगें कि इसमें पहले, दूसरे और तीसरे उपदेशों के अर्न्तगत स्वात्माराम जी ने आसन, षटकर्म, युक्ताहार–विहार, प्राणायाम बन्धों, मुद्राओं, चक्रभेदन कुण्डलिनी जागरण और नादानुसंधान आदि की प्रक्रियाओं पर प्रकाश डालकर हठयोग का व्यावहारिक स्पष्ट प्रतिपादन किया है। इसी तारतम्यता के साथ **चौथे उपदेश** में राजयोग का विवेचन कर सहजावस्था की प्राप्ति का निर्देशन किया है। समस्त द्वन्दों का अन्तरूपी एक्य–जीवात्मा–परमात्मा का ऐक्य जानकर सभी संकल्पों का नाश कर साधक ध्येय में लीन हो जाता है, यही **समाधि** है। **प्राण** का **संचय** और **मन का लय** होने से जिस समरसता का उदय होता है, उसे ही समधि या स्वरूप स्थिति कहा जाता है। योगशास्त्र मुक्ति की क्रमिक सीढ़ियां है, जो जगत् के भय और कष्टों का निवारण करता है। हठ्योग **काया** की साधना पर आधारित है। **प्राण** और **मन** की साधना इसका प्रमुख ध्येय है। इस सिद्धांत के अनुसार मन और प्राण की तल्लीनता होने पर स्वरूपस्थिति प्रकाशित हो जाती है, यह हठयोग साधना में राजयोग की सिद्धि या प्राप्ति है। हठयोग प्रदीपिका के चतुर्थ उपदेश की स्वरूप स्थिति यही अवस्था है।

7.3 ईकाई 20 : स्वात्माराम एवं ग्रंथ

7.3.1 हठयोग प्रदीपिका का रचना काल

हमने हठयोग साधना के ऐतिहासिक विवेचन में पूर्व में जान लिया है कि हठयोगशास्त्र का उद्देश्य इस दुःख मय जगत से मुक्ति या मोक्ष के अर्थ तथा सभी मनोगत अभीष्ट सिद्धियों की प्रप्ति है। इस शास्त्र के अदि उपदेश योगिराज शिवाजी ने पार्वती को इस महाकाल योगशास्त्र का सर्वप्रथम रहस्य प्रकाशन किया। इसी हठविद्या का प्रणयन करके ब्रम्हा जी ब्रम्ह पद को प्राप्त हुए। इस हठविद्या का उपदेश भगवान श्रीकृष्ण ने श्रीमद्भगवदगीता में **अर्जुन** को तथा श्रीमद्भागवतगीता में **उद्धव** को दिया। ऐसा भी माना जाता है कि इसी प्राणविद्या को ब्रह्म, विष्णु, महेश, नारद, याज्ञवलक्य आदि ने भी साधन किया था। मत्स्येन्द्र नाथ और गोरखनाथ जी ने इसी शिवप्रोक्त हठयोग की परम्परा को आगे बढ़ाया। गोरखनाथ जी की कृपा प्रसाद स्वरूप प्रेरणा ने ही **स्वात्मारामयोगीन्द्र** से जनकल्याणार्थ इस मोक्षप्राप्तार्थ **हठयोग प्रदीपिका** नामक चार उपदेशों युक्त महनीय ग्रंथ का प्रणायन करवाया।

हठयोगप्रदीपिका योग साधनों का एक लोकप्रिय एवं महनीय ग्रंथ है। इसकी रचना का ठीक–ठीक समय ज्ञात नहीं है। इसका रचना काल विभिन्न स्त्रोतों से उपलब्ध तथ्यों के आधार पर किया जाता है। ऐसा माना जाता है कि योगी स्वात्माराम का काल ऐतिहासिक दृष्टि से मध्यकाल के पहले चरण से दूसरे चरण के बीच का काल हो सकता है। इस हेतु कई विद्वान अपने अपने पृथक मंत्त प्रस्तुत करते है इनमें से कुछ विद्धवानों के मत्त हठयोगप्रदीपिका के रचना काल के संबंध में निम्नानुसार है–

(1) यह सामान्यतः स्वीकार किया जा सकता है कि योगी स्वात्माराम मध्यकाल के पहले चरण से दूसरे चरण की अवधि में ही किसी समय विद्यमान थे।

(2) पी.के. गोड महोदय ने हठयोग प्रदीपिका की रचना का समय सन् 1360 ई0 से 1650 ई0 के मध्य में निश्चित किया है।

कैवल्यधाम लोनावाला (पूना) से 1970 ई0 के प्रकाशित हठयोग प्रदीपिका के प्रथम संस्करण की भूमिका में ऐसा उल्लेख उपलब्ध होता है।

(3) स्ट्डीज इन इण्डियन लिटररी हिस्ट्री के प्रथम भाग में **हठयोगप्रदीपिका** की रचना का समय सन् 1631 ई0 निश्चित किया गया है।

इस सन्दर्भ में डॉक्टर पी.के. गोडे का मत अधिक युक्ति युक्त लगता है क्योकि शिवानंद सरस्वती द्वारा रचित ग्रंथ योगचिन्तामणि में हठयोग प्रदीपिका के श्लोक उद्धृत हैं तथा यह रचना 1500 ई0 से 1860 ई0 के बीच किसी समय की गयी थी। स्वात्माराम ने नित्यनाथ को (हठ्योग प्रं. 1/7) महासिद्धों में से एक माना है। नित्यनाथ को रत्नसमुच्चय नामक एक ग्रंथ का रचनाकार माना जाता है। हिस्ट्री आफ हिन्दु

केमिस्ट्री में श्री पी.सी.राय से पी.के. गोडे द्वारा प्रस्तुत मत कि हठयोग प्रदीपिका का रचनाकाल सन् 1600 ई0 होना चाहिये, अधिक तर्कसंगत बैठता है। इसी प्रकार ब्रिग्स महोदय ने अपनी पुस्तक **'गोरखनाथ एण्ड दि कनफटा योगीज में'** हठयोग प्रदीपिका एक तांत्रिक हठयोग परक रचना का अनुमानित समय ईसा की पन्द्रहवी शताब्दी माना है। उनका कथन है कि हठ्योगप्रदीपिका एक तांत्रिक हठयोग परक रचना है, जिसके रचयिता चिन्तामणि जिनका दूसरा नाम स्वात्माराम योगीन्द्र हैं। इस ग्रंथ में कुल 382 श्लोक और 4 अध्याय हैं। हठ्योग के अनेक श्लोक गोरक्षशतक में भी उपलब्ध होते हैं। गोरक्षपद्वति में भी वे किसी न किसी अंश में उपलब्ध है। इस प्रकार हठयोग प्रदीपिका हठयोग की पूर्व की रचनाओं का एक विवेचनात्मक संकलन मात्र है।

7.3.2 हठयोग प्रदीपिका के प्रकाशित संस्करण

आपने हठयोग प्रदीपिका के अनुमानतः रचनाकाल के संबंध में ज्ञान प्राप्त किया। इस रचना के बाद में प्रकाशित संस्करणों के संबंध में हम यहां अध्ययन करेगें। हठयोग प्रदीपिका के अनेकों मुद्रित संस्करण प्राप्त होते है। इन मुद्रित संस्करणों में प्रायः सभी के नाम हठयोगप्रदीपिका ही हैं, कुल प्रमुख संस्करण निम्नलिखित है –

(1) थियोसोफिकल सोसाइटी अडियार (मद्रास) के अडियार लाइब्रेरी एण्ड रिसर्च सेन्टर द्वारा अड्यार लाइब्रेरी जनरल सीरिज के चौथे वाल्यूम के सामान्य सम्पादक के. कुन्जुनी राजा द्वारा 1972 ई0 में ब्रम्ह्मनंद की संस्कृत में ज्योत्सना टीका सहित मूल के अंग्रेजी अनुवाद के **'हठयोग प्रदीपिका'** संस्करण की भूमिका में राधा बरनियर में लिखा है कि **'ब्रह्मनंद की ज्योत्सना'** संस्कृत टीका सहित मूल ग्रंथ और उसके श्रीनिवास आयंग की कृत को अंग्रेजी भाषान्तर से युक्त 'हठयोग प्रदीपिका ग्रंथ का प्रथम प्रकाशन बम्बई थ्योसोफिकल फन्ड के द्वारा 1893 ई0 में तुकाराम तत्या द्वारा कराया गया था।

(2) थियोसोफिकल पब्लिशिंग हाऊस अडियार (मद्रास) द्वारा 1983 ई0 में उपर्युक्त प्रकाशन का द्वितीय संस्करण मुद्रित किया गया। इस संस्करण में आयगंर कृति अंगेजी अनुवाद का ए.ए. रामनाथन तथा राधा बरनियर द्वारा पुनः संशोधन और संवर्धन किया गया।

(3) लक्ष्मीवेंकटेश्वर प्रेस बुम्बई द्वारा सवत् 1981 वि0 में ज्योत्सना संस्कृति टीकायुक्त मूलपाद का प्रकाशन किया गया।

(4) सन् 1931 ई0 में हठ्योगप्रदीपिका का पंचम सिंह द्वारा रचित अंग्रजी अनुवादसहित एक ग्रंथ का प्रकाशन श्री ललित मोहन बसु ने इलाहाबाद से करवाया।

(5) सन् 1949 ई0 में ब्रम्हानन्द द्वारा रचित ज्योत्सना टीका और अंग्रेजी अनुवाद सहित थियोसोफिकल पब्लिशिंगहाउस, अडियार (मद्रास) ने एक प्रकाशन करवाया।

(6) सन् 1977 ई0 में **हठयोगप्रदीपिका** का **हठप्रदीपिका** नाम से एक संस्करण अंग्रजी व्याख्या सहित स्वामी दिगम्बर जी और पण्डित आर.जी. कोकाजे द्वारा कैवल्यधाम (एस.एम.वाई.एम. समिति) लोनावाला पूना द्वारा प्रकाशित किया गया।

(7) मोतीलाल बनारसीदास प्रकाशन वाराणसी ने 1973 ई0 ब्रम्हचारी याज्ञावल्कय कृत हिन्दी व्याख्या सहित योगप्रदीपका के नाम से एक ग्रंथ प्रकाशित करवाया।

(8) 1973 ई0 में ही संस्कृत संस्थान बरेली द्वारा डॉक्टर चमनलाल गौतम ने हिन्दी व्याख्या सहित **'हठयोगप्रदीपिका''** ग्रंथ का प्रकाशन करवाया।

(9) बिहार स्कूल ऑफ मुंगेर द्वारा स्वामी सत्यानंद के निर्देशन में भी हठयोग प्रदीपिका नाम से अंग्रजी में एक ग्रंथ प्रकाशित किया गया है जिसमें स्वामी मुक्ति बोधानन्द सरस्वती की व्याख्या दी गई है।

(10) सन् 1977 में गोरखनाथ–मंदिर गोरखपुर द्वारा श्री रामलाल श्रीवास्तव द्वारा की गई टीका एवं सम्पादन में हठयोगप्रदीपका ग्रंथ का प्रकाशन किया गया। जिसके अभी तक कई संस्करण प्रकाशित हो चुके है।

उपर्युक्त सभी संस्करणों में हठ्योगप्रदीपिका को चार उपदेशों (अध्यायों) में ही बांटकर हठयोगप्रदीपिका का समापन किया गया है। केवल कैवल्यधाम लोनावाला द्वारा प्रकाशित ग्रंथ में ही एक अन्य उपदेश जो 24 श्लोकों का है, जिसमें विभिन्न रोगों की चिकित्सा जो साधन व्यतिक्रम से साधक के शरीर में उत्पन्न होते है के सम्बंध में समावेशित किया गया है। यहाँ–यह भी स्पष्ट समझ लेना आवश्यक है कि केवल कैवल्यधाम द्वारा प्रकाशित ग्रंथ में ही पांचवें अध्याय का जिक्र है ऐसा नही है। इसके अलावा भी अनेक हस्तलिखित पाण्डुलिपियों मे हठयोगप्रदीपिका के अनेक नाम और चार से अधिक अध्यायों का विवरण प्राप्त होता है। इनमें मुख्यत ये हैः–

(अ) बी. ओ. आर. आई. लाइब्रेरी पूना की हस्तलिखित पुस्तक सं. 631 (1886 ई0 से 1892 ई0) के अन्त में समापन है इति श्री आत्माराम विरचितायां **हठप्रदीपिकां पंचमोपदेशः**। इसी प्रकार हस्तलिखित पुस्तक सं. 263 (सन् 1879 ई0से 1880 ई0) में चार अध्याय हैं और श्लोकानुक्रम प्रत्येक अध्यय के क्रम से 67, 82, 130, और 141 है। इसी प्रकार हस्तलिखित पुस्तक संख्या 665(1883 ई0) में चार अध्याय और उनमें 69, 81, 133, और 134 श्लोक है।

(ब) बी.ओ.आर. आर्ट लाइब्रेरी पूना की ही हस्तलिखित पुस्तक संख्या 615 (1887 से 1891) में ज्योत्सना टीकासहित 4 अध्याय, 67, 79, 132, 113 श्लोक के क्रम से उपलब्ध हैं। लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई तथा अन्य प्रतिष्ठित प्रकाशन संस्थाओं नें इसी हस्तलिखित प्रति को अपने प्रकाशन का आधार माना है।

(स) ऐशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल, कलकत्ता (जी–1052) की हस्तलिखित पुस्तक–संख्या में अन्त समापन–क्रम है इति हठ्प्रदीपिकायां पंचमोपदेशः। इस पांचवे अध्याय को छायापुरूष दर्शन कहा गया है। भारतीय इतिहास संशोधक मंडल पूना की एक हस्तलिखित पुस्तक में छायापुरूष लक्षणम् पंचम पटल का उल्लेख है।

आप इस खण्ड के अर्न्तगत पंचम उपदेश का भी अध्ययन करेगें, जिससे हठयोग चिकित्सा का स्वरूप भी स्पष्ट हो सकें।

बोध प्रश्न :

टिप्पणी क : अपने उत्तर नीचे दिये गये स्थान में लिखें।

ख : इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

प्रश्न 1 हठयोग प्रदीपिका के किन्हीं पाँच संस्करणों को बतलाइयें ?

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

7.4 इकाई 21 हठयोग प्रदीपिका में योग साधना की आवश्कताएँ एवं पूर्व तैयारियां

7.4.1 हठयोग प्रदीपिका में योग साधना की तैयारी

स्वात्माराम योगीन्द्र द्वारा रचित हठयोग प्रदीपिका के प्रथम उपदेश में कुल 69 श्लोक दिये गये है। आपने पूर्व में अध्ययन किया है कि योगी स्वात्माराम की हठयोग के अंगों के विभाजन को लेकर एक मौलिक देन यह है कि उन्होंने हठयोग के **चार अंग** बतलाये है। ये अंग है– (1) आसन (2) प्राणायाम (3) मुद्रा एवं (4) नादानुसंधान।

योगी स्वात्माराम जी ने हठयोग प्रदीपिका के प्रथम उपदेश में आसनों को सिद्ध करने हेतु कुछ मूलभूत नियम बतलायें है जिनके बिना व्यावहारिक रूप से योग साधना संभव नहीं है। हठयोग साधना की ये आवश्यकताएँ निम्नलिखित हैं।

(1) योग साधना हेतु मठ (कुटी) या आदर्श स्थान

स्वात्माराम योगीन्द्र ने हठयोग के साधक के लिए, सर्वप्रथम आवश्यकता योग मठ या कुटी की बतलाई है। जहां निवास कर साधक हठयोग साधना को पूर्ण कर सके तथा राजयोग के मार्ग की ओर बढ़ सके। स्वात्मारामजी के संसार के दैहिक, दैविक और भौतिक तापों (कष्टों या दुःखों) से आकुल मनुष्यों का एक मात्र आधार हठयोग को ही बतलाया है। इस हेतु सर्वप्रथम साधक को स्थान का चयन सावधानी पूर्वक करना चाहिये।

हठयोग के साधक को सात्विक और पुण्यमयी प्रवृत्ति से सम्पन्न शासक के सुशासित राज्य में जो धार्मिक देश हो (जिसमें पुण्यात्मा और सत्कर्म निवास करते हों), जहां फल तथा अन्नादि की सहज प्राप्ति हो सके, जो उपद्रव (आशान्ति और असामयिक द्वन्दों और कलहों से उत्पन्न) उपद्रव से रहित हो, ऐसे शिला (खण्ड या भाग या क्षेत्र) में अग्नि और जल (के सरोवर, कूप, गर्त) से चार हाथ दूर एकान्त स्थान में (जो योग साधना की दृष्टि से अनुकूल हो) एक मठ मे निवास कर योगाभ्यास में तत्पर रहना चाहिये। देखे चित्र क्र.– 10

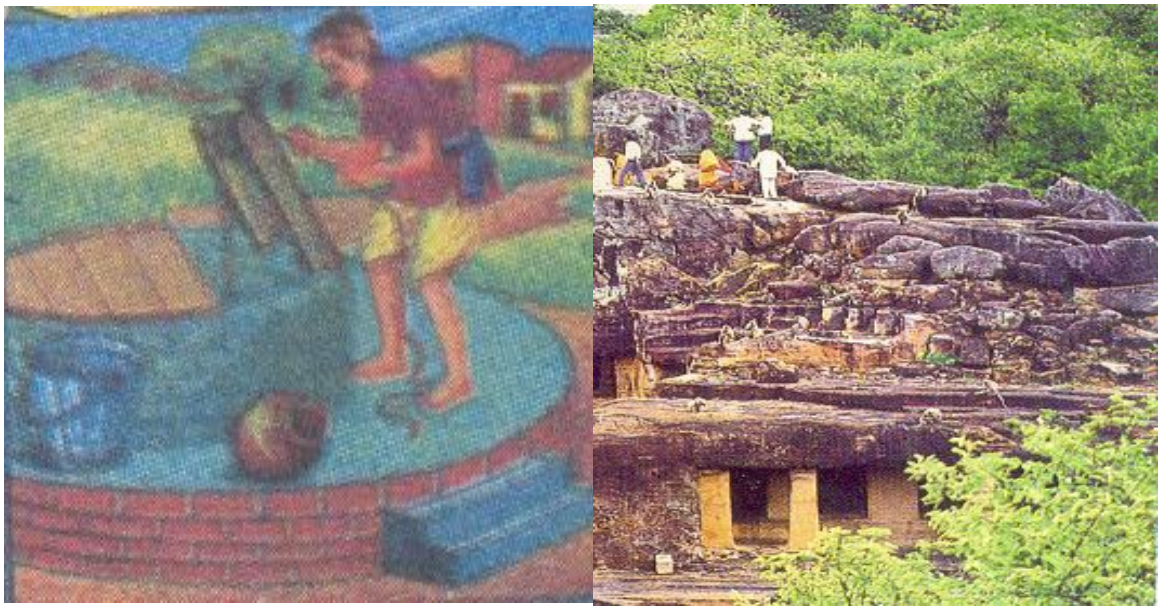

(चित्र क्र.–10)
यौगिक कुआं एवं कुटी

मठ या कुटी का स्वरूप बतलाते हुए स्वात्मारामजी ने कहा है कि मठ या कुटी का द्वार छोटा होना चाहिये जिसमें गवाक्ष आदि रंध्र (छिद्र) न हो और गर्त (गढ़ा) न हो और जिसमें चूहें आदि का विवर (बिल) न हो। स्थान न अत्यन्त ऊंचा हो और न अत्यन्त नीचा हो और न अन्यन्त विस्तार से युक्त हो–क्योंकि अत्यंत ऊंचे पर चढ़ने में अत्यन्त नीचे स्थान से उतरने में अधिक श्रम होता है। और अत्यन्त विस्तार संयुक्त में दूर दृष्टि जाती है इस कारण इस प्रकार के स्थानों का निषेध किया गया है। यह मठ की दीवार में छिद्र न रखने का कारण यह है कि शीतकाल में अधिक ठंड और ग्रीष्मकाल में गर्म हवा तथा वर्षा में जल की बूंदों का प्रवेश न हों। कुटी के अन्दर साधना का स्थान समतल हो न ऊंचा न ही नीचा तथा कीट पंतगों मच्छर मक्खी से रहित होना चाहिये, जिससे ध्यान में व्यावधान न हो। देखे चित्र क्र.–10।

कुटी गोबर से चिकनी तथा अच्छी तरह लिपी पुती हो (क्योंकि गोबर की कृमि–नाशक शक्ति के प्रभाव से वातावरण स्वच्छ रहें) कुटी के बाहर मण्डपयुक्त वेदी हो जिस पर आसनस्थ होकर ध्यान किया जा सकें। कुटी के पास स्वच्छ जल से युक्त कुआँ हो कुटी चारों ओर से परकोटे से घिरीं हो जिससे हिंसक पशु तथा साधना में विघ्नकारी तत्व अन्दर न आ सकें। यही हठयोग साधक के लिये आदर्श कुटी अथवा योगमठ होता है।

इस प्रकार निर्मित मठ में निवास करते हुए समस्त चिन्ताओं से रहित होकर (मन को मुक्त कर) गुरू द्वारा निर्दिष्ट (साधना प्रक्रिया) मार्ग से योगी को केवल योग मार्ग के अनुरूप करते हुऐ योग्य गुरू के ज्ञान प्रदेश में स्थिर होकर साधना (योगाभ्यास) करना चाहिये। साधना के दौरान आने वाले बाधक एवं साधक कारणों का भी योगाभ्यासी को ज्ञान होना चाहिये।

(3) योगाभ्यास में बाधक कारण

योग साधना करने वाले साधक को निम्नलिखित पाँच कारण बाधा उन्पन्न करते है–

(प) अधिक भोजन (आहार):– योगाभ्यास के प्रारभ्भ में स्वाभाविक रूप से जठराग्नि बढ़ती है, जिससे अधिक खाने की इच्छा होती है। अतः यह ध्यान में रखना चाहिये कि अधिक (भरपेट डटकर भोजन) न करें। वैसे तो सामान्य अवस्था में भी अधिक भोजन उचित नहीं कहा गया है क्योंकि अधिक भोजन से **आलस्य, निद्रा, एवं स्थूलता (मोटापा)** आदि उत्पन्न होते है जो बड़े ही विघ्नकारक तत्व हैं। अधिक भोजन **जठराग्नि** को मंद कर देता है जिससे अनेक शरीरिक रोग शुरू हो जाते है।

(पप) प्रयास (श्रम):– अभ्यास करते समय प्रारम्भ में कुछ अभ्यास ठीक से नहीं हो पाते। तब साधक जोर लगाकर अधिक प्रयास से उस अभ्यास को जल्दी से जल्दी कर लेना चाहता है। यह प्रवृत्ति घातक होती है। इस कारण शरीर की क्षमता को ध्यान में रखते हुए अपनी ओर से कभी अधिक प्रयास (जोर अजमाईश) नहीं करना चाहिये। सामर्थ्य के अनुसार साधना करना चाहिये।

(पपप) प्रजल्प (निरर्थक वर्तालाप):– कुछ साधकों की प्रवृति होती है कि अपने अभ्यासों के सम्बन्ध में लोगों को बढ़ा–चढ़ाकर बताने में आत्मसुख महसूस करना। इसे योगाभ्यास में विघ्न माना गया है। क्योंकि इससे अभ्यास से प्राप्त होने वाली सफलता सन्दिग्ध हो जाती है और दिखावेपन की मात्रा बढ़ने लगती है। अतः जो भी अभ्यास किया जावें उसे गुप्त रखा जावे तथा अनाधिकारी व्यक्ति से इस सम्बंध में कभी चर्चा भी नहीं करना चाहिये। इससे मन में क्रोध, लोभ, मोह आदि अनावश्यक प्रवृत्तियाँ उत्पन्न होती हैं तथा मनोविकार पैदा होते है।

(पअ) नियमाग्रह:– किसी भी प्रकार के नियमाग्रह से बचना चाहिये। बहुत से साधक कुछ खास नियम बना लेतो हैं और आग्रह रखते हैं कि उसी के अनुसार चलेंगें। एक अर्थ में यह ठीक हो सकता है लेकिन बहुधा होता है कि ये नियम कठिनाई उत्पन्न करने लगते है उदाहरणार्थ मान ले कि यहां नियम बना लिया गया कि स्नान के बाद ही अभ्यास किया जायेगा या सुबह–सुबह ब्रम्ह मुहर्त में ही करेगें। तथा किसी निशिचित स्थान पर ही करेगें। किन्तु कभी परिस्थितियां इसके अनुकूल न बन सकें जैसे अधिक ठण्ड हो, स्नान करने में कठिनाई हो, तो शरीर पोंछकर या हाथ पैर धोकर स्वच्छ कपड़े पहनकर भी अभ्यास किया जा सकता है। कभी सुबह छूट

जाय तो शाम को किया जा सकता है। नियमित स्थान पर न हो पाया तो दूसरे स्थान पर ही सही इस प्रकार **साधक के लिये नियम है न कि नियमों के लिए साधक** अतः नियमाग्रह नहीं होना चाहिये उनमें लचीलापन साधना हेतु साधक तत्व है।

(अ) जनसंग (अत्याधिक लोक सम्पर्क):– योग साधक को अधिक लोक–सम्पर्क में नहीं रहना चाहिये। इससे अभ्यास में बाधा पहुंचती है। जब अभ्यास का समय हो रहा हो तब भी लोग घेरे रहेगें। उनकी ऋणात्मक ऊर्जा एवं मनोमालिन्य का प्रभाव भी साधक पर होगा। साथ ही अधिक जनसंग से खान–पान की बुरी आदतें भी बनने लगती हैं। इन सब कारणों से जनसंग से दूरी साधना हेतु आवश्यक है।

(अप) लौल्य (चचंलता):– अत्याधिक गतिशीलता से मन चंचल प्रवृति वाला बन जाता है जिससे योगाभ्यास में बाधा उत्पन्न होती है। साधक का मन कभी यहां कभी वहां कभी कुछ, कभी कुछ इस प्रवृति से शारीरिक चचंलता एवं शारीरिक चचंलता से मन की चचंलता ये दोनों अन्योन्याश्रित होती है। अतः अत्याधिक शारीरिक गति अधिक दौड़ भाग आत्यधिक धूप का सेवन अदि से मन अशान्त एवं अस्थिर होता है।

उपरोक्त **छः विघ्न** योगसाधक की साधना में प्रगति में बाधा उत्पन्न करते है। श्रेष्ठ गुरू के निर्देशन में साधनारत साधक इन छः बाधाओं को ठीक प्रकार से समझ कर इनसे सदैव बचा रहता है। और योगसाधना में सफलता प्राप्त करता है।

(4) योगाभ्यास में सहायक कारण

योग साधना करने वाले साधक को निम्नलिखित छः तत्व या कारण ऐसे है जो योगसाधना की प्रगति को निरंतर आगे बढ़ाते रहते है। योग्य गुरू इन पर अत्याधिक जोर देते है ये तत्व निम्नलिखित हैं–

(प) उत्साहः– योग साधना के प्रति सत्कार–बुद्धि अर्थात विघ्न बाधाओं से विचलित न होते हुए निरन्तर योग लक्ष्य हेतु तत्परता बनाये रखना। सतत् मन उत्साह से भरा रहने से साधना का लक्ष्य शीघ्र प्राप्त होता है।

(पप) साहसः– बहुधा ऐसा होता है कि योगसाधना प्रारभ्भ करने पर कुछ लोग तरह–तरह की बाते कहकर भयभीत का देते हैं या अभ्यास बढ़ने पर कुछ चित्र–विचित्र अनुभव होने पर भी भय का निर्माण होने लगता है। अतः ऐसी स्थिति उत्पन्न होने पर निर्भय होकर साहस के साथ योगाभ्यास में लगे रहना चाहिये। तभी साधना सफल होती है।

(पपप) धैर्यः– योग साधना दीर्घ कालीन सतत् अभ्यास की माँग करती है अतः सफलता हेतु धैर्य एक अनिवार्य तत्व है। स्वेच्छा या कुछ विशिष्ट अपेक्षाओं में साथ योगसाधना शुरू कर उनके शीघ्र परिणाम प्राप्त न होते देख अनेक साधकों का धैर्य टूट जाता है, तथा वे साधना से विरत होने लगते है। अतः कोई मनोकामना लेकर योग साधना एवं परिणाम न मिलने पर धैर्य छोड़ना ये दोनों विघ्न है। क्योंकि पूर्वसंस्कार, अभ्यास की उपयुक्तता तथा परिस्थितियां कभी–कभी शीघ्र परिणाम नहीं आने देते अतः धैर्य धारण साधक तत्व है।

(पअ) तत्वज्ञानः– योग साधना में तत्वज्ञान सर्वाधिक सहायक तत्व है। अधिकतर साधक बिना गुरू के किताबें पढ़कर अभ्यास आरंभ कर देते है इससे आपेक्षित परिणाम नहीं प्राप्त होते। जीव एवं ईश्वर या आत्मा एवं परमात्मा तत्व को ठीक से जान समझकर वास्तविक लक्ष्य के प्रयोजन से योगसाधना करना साधना में सहायक होता है।

(अ) निश्चयः– योग साधक को अपने साधन में विश्वास और दृढ़ता रखना चाहिये। अनिश्चय की स्थिति में कोई भी कार्य प्रारभ्भ करना उचित नहीं है। विशेषतः योगाभ्यास। सभी प्रकार से अपनी क्षमताओं को परख कर दृढ़ निश्चय के साथ ही साधना शुरू करने पर सफलता प्राप्त होती है। यह तत्व भी अत्याधिक महत्वपूर्ण है।

(अप) जनसंगपरित्याग (एकान्त–सेवन):– योग साधना में अधिक लोगों का किसी भी प्रकार का सम्पर्क विघ्न ही उन्पन्न करता है। अतः योग साधना की सफलता हेतु यह आवश्यक है कि धीरे–धीरे लोगों से सम्पर्क त्यागते हुए एकान्त सेवन की आदत बनाना चाहिये, इससे अभ्यास की तीव्रता बढ़ जाती है।

इस प्रकार यदि योगसाधक इन छः तत्वों को ठीक से समझ कर अपनी साधना में इनका पालन करता है तो उसे अवश्य योग सिद्धि की प्राप्ती संभव होती है।

(5) स्वात्माराम निर्देशित यम–नियम

स्वात्माराम जी की एक मौलिक विशेषता यम नियमों की संख्या को लेकर भी है। सामान्यतः महर्षि पंतजलि के अनुसार पाँच–पाँच यम और नियम को माना जाता है किन्तु स्वात्माराम जी ने वशिष्ट संहिता योगकाण्ड के अनुरूप दस–दस यम और नियमों की संख्या बतलाई है। ये निम्नलिखित है–

(प) यमः– अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, क्षभा, धृति, दया, ऋजुता, मिताहार और शौच ये दस यम है।

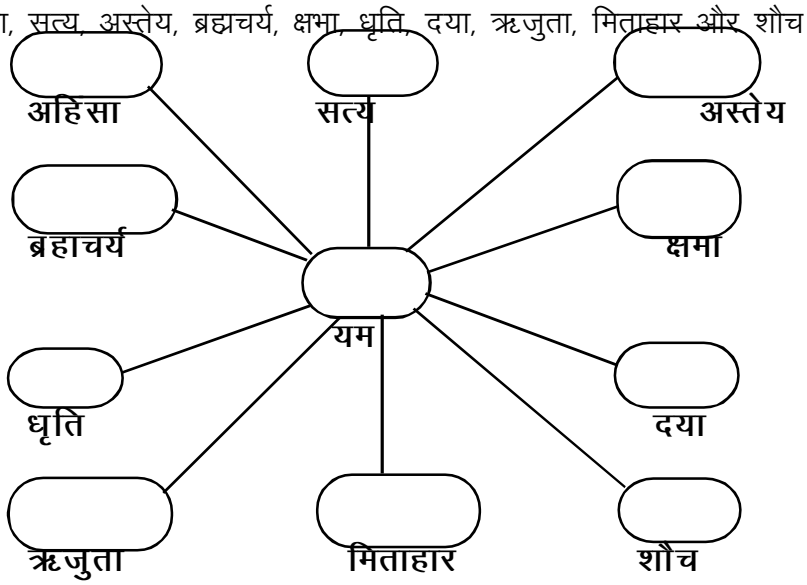

(तालिका क्र. 7)

(पप) नियमः– तप, सन्तोष, आस्तिकता, दान, ईश्वर–पूजन, सिद्धांत–श्रवण, दृढ़मति, जाप और हवन ये दस नियम है।

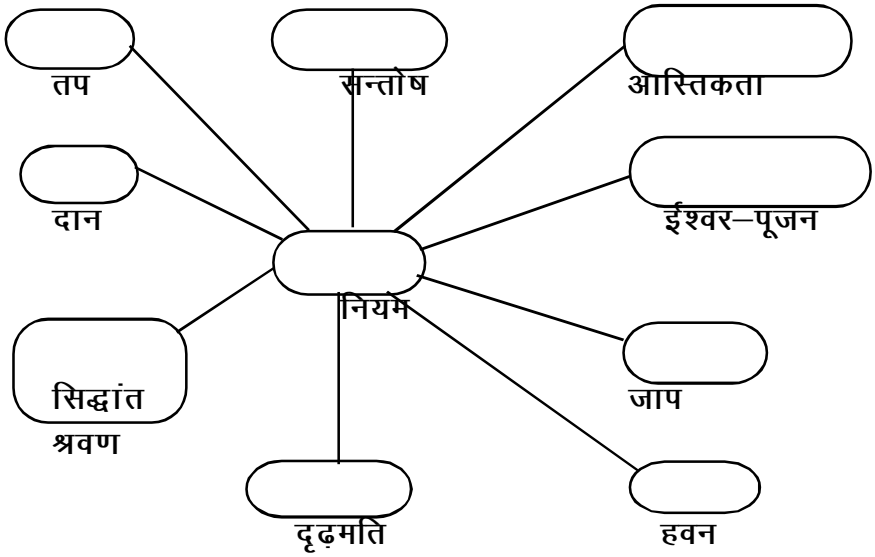

(तालिका क्र. 8)

नोटः– हठयोग प्रदीपिका की अनेक प्रतियों में उपर्युक्त यम और नियम के दो श्लोक प्राप्त नहीं होते है। इन्हें प्रक्षिप्त माना गया है। यद्यपि षडांगयोग में योग का प्रथम अंग आसन ही लिया जाता है किन्तु अष्टांग योग में प्रथम और द्वितीय अंग के रूप में यम और नियम आते है फिर तीसरा अंग आसन आता है। यहां यह भी ध्यान रखना है कि यम और नियम के पालन के नियमाग्रह में न पड़कर योगआसनों का अभ्यास शुरूकर देने से शरीर और मन की साम्यता धीरे–धीरे यम और नियम के पालन की ओर स्वतः प्रेरित करने लगती है।

(6) स्वात्माराम के अनुसार सिद्धि की अवधि एवं आहार का स्वरूप

(प) योग सिद्धि की अवधि :– स्वात्माराम जी के अनुसार योगांगों आसन, प्राणायम, मुद्रा एवं नादानुसंधान के क्रम से हठयोग का अभ्यास करने पर तथा इस अभ्यास के दौरान ब्रम्हाचरण करने वाला तथा मिताहारी अर्थात प्रमितभोजी सतत् अभ्यास रखता है तो एक वर्ष की अवधि में योग सिद्धि निश्चय ही प्राप्त हो जाती है।

(पप) आहार का स्वरूप :– स्वात्मारामजी ने आहार का स्वरूप बतलाया है कि आहार **मिताहार** होना चाहिये। मित से अशय सीमित या परिमित आहार अर्थात भोजन। एक व्यक्ति की जितनी भोजन लेने की क्षमता है, उससे कुछ कम मात्रा में ही भोजन ग्रहण करना मिताहार है। इस मिताहार के स्वरूप को स्वात्माराम जी ने बड़े व्यवहारिक रूप में स्पष्ट किया है। इनके अनुसार भोजन स्निग्ध (घी से चुपड़ा हुआ) होना चाहिये। मसाले आदि का प्रयोग इतना कम किया जाय कि भोजन की स्वाभाविक मधुरता बनी रहे। व्यक्ति की भोजन ग्रहण करने की अधिकतम मात्रा (पूर्ण खुराक) में से **पेट को आधा भोजन** से भरे **एक चौथाई जल** से एवं शेष **एक चौथाई वायु** के लिये खाली छोड़ दे। भोजन स्वाद के लिये नहीं बल्कि ईश्वर–प्रीत्यर्थ करना चाहिये यही मिताहार का स्वरूप है। मिताहार से योगाभ्यास में स्पूर्ति बनी रहती है और उत्साह से परिपूर्ण साधक को अभ्यास में शीघ्र सफलता प्राप्त होने लगती है।

(पपप) मिताहार के अपथ्यकारक घटक :– मिताहार के अर्न्तगत निम्नलिखित प्रकार के भोज्य पदार्थो को साधना में बाधक मानते हुऐ स्वात्माराम जी ने इन्हें निषिद्ध (अपथ्यकारक) कहा है। इनके ग्रहण करने पर अभ्यास में बाधा उपस्थित होने की संभावना बनी रहती है। ये निम्नलिखित है– कड़वा (करेला जैसा), खट्टा (इमली जैसा), तीखा (लाल मिर्च), नमकीन, गुड़, गरम चीजें, हरी शाक, सलगम, गाजर, खट्टी भाजी, तेल, तिल, सरसों की भाजी, मद्य (शराब), मांस इनमें मछली, बकरे इत्यादि का। दही, छाछ कुलथी (एक दाल) वेर, खल्ली, हींग तथा लहसुन। ये सभी वस्तुयें अपथ्य कारक हैं। इनके आलावा दुर्गन्धित बने हुए बासी खाना की फिर से गरम करके नहीं खाना चाहिये। अधिक नमक, खटाई तथा उत्कट शाक आदि भी त्याज्य है। साथ ही योगाभ्यास की शुरूयात में ही दुर्जन अग्नि, स्त्री और अनावश्यक तीर्थ यात्रा अदि यात्रा का सेवन सर्वथा त्याग देना आवश्यक है। प्रातः काल स्नान, और उपवास आदि, काया कलेश **सूर्यनमस्कार, अधिकभार** ले जाना आदि ये मिताहार के अवश्यकारक (अहितकर) घटक है।

(पअ) मिताहार के पथ्यकारक घटक :– योगाभ्यासकाल में यदि निम्नलिखित प्रकार के भोजन लिए जाएँ तो योगसाधना की सफलता में ये सहायक होते है। ये निम्नलिखित है। सुस्वाद और सहजता से पच जाने वाले अन्न जैसे– गेहूँ, चावल, जौ, साठी चावल, आदि सात्विक अन्न। दूध, घी, खाँड, मक्खन, मिश्री, मधु, सूँठ, परवल की सब्जी, ऋतु फल, शाक (प्रमुखतः) पंचशाक जीवन्ती, बथुआ (वास्तु), चौलाई (मूल्याक्षी), मेधनाद एवं पुनर्नवा) मूंग तथा मूंग की दाल, हरा चना तथा निर्मल जल (वर्षाजल) सेवनीय है। इनके साथ ही साथ यह भी ध्यातव्य है कि भोजन पुष्टिकारक हो, सुमधुर हो, स्निग्ध हो, दूध में गाय के दूध से बनी चीजें हो, सुपाच्य तथा मन के अनुकूल भी हो। शरीर की सप्तधातुओं को पोषण प्रदान करने वाला हो। ये घटक साधना मार्ग को अग्रेषित करने में सहायक तत्व या घटक के रूप में प्रयुक्त होता है।

(अ) अभ्यास की दृढ़ता के अन्य घटक :– योग साधना का साधक बाल, युवा, वृद्ध या अतिवृद्ध हो, रोगी हो, क्षीण काया (दुर्बल) हो, आदि योगांगों के अभ्यास को आलस्यरहित होकर सतत् अभ्यास शुरू कर देता है तो सिद्धि निश्चित प्राप्त होती है। अभ्यास में चित्त की वृत्तियों के निरोध के उपाय सतत् करते रहना चाहिये। केवल शास्त्र पढ़ लेने से योगासाधना में सफलता नहीं मिल जाती। सफलता हेतु अभ्यास और वैराग्य की निरंतर आवश्यकता होती है। शास्त्रीय ज्ञान आवश्यक है विशेष वेश, भूषा बनाने या सिद्धयोगियों की कथा कहानियों के ज्ञान से सफलता नहीं प्राप्त होती। सफलता अभ्यास पर ही निर्भर करती है।

7.4.2 हठयोग साधना का प्रथम अंग एवं उसकी विवेचना

स्वात्माराम जी के अनुसार हठसाधना (प्राणसाधना) की शुरूआत का **प्रथम अंग आसन** हैं। आसनों का अभ्यास साधक में निम्नलिखित तीन परिणाम उत्पन्न करता है–

(1) स्थिरता
(2) आरोग्य एवं
(3) शारीरिक स्फूर्ति

योग ज्ञान में पारंगत एवं योगसिद्ध वशिष्ट आदि मुनियों तथा मत्येन्द्रनाथ आदि श्रेष्ठ योगियों ने जिन योगासनों को अभ्यास हेतु आवश्यक बतलाया था उन्हीं पंद्रह आसनों का स्वात्माराम जी ने भी अनुसरण किया है। इन आसनों एवं उनके लाभों का वर्णन निम्नलिखित प्रकार से है। यहां यह भी ध्यान रखने योग्य बात है कि इन आसनों को तीन प्रमुख प्रकारों में वर्गीकृत किया जा सकता है।

स्वात्माराम के अनुसार आसनों का वर्गीकरण

1. शरीर संवर्धनात्मक आसन	**2. विश्रामात्मक**	**3. ध्यानात्मक**
(प) गोमुखासन	(अ) उत्तानकूर्मासन	(पग) मयूरासन
(प) शवआसन	(प) स्वास्तिक आसन	
(पप) वीरासन	(अप) धनुरासन	(ग) सिंहासन
(पप) सिद्धासन		
(पपप) कूर्मासन	(अपप) मत्स्येन्द्रासन	
(पपप) पद्मासन		
(पअ) कुक्कुटासन	(अपपप) पश्चिमोत्तानासन	

(सारणी क्र. 9)

(1) शरीर संवर्धनात्मक आसन :– जिन योगासनों के अभ्यास से शरीर अंगों के रोग दूर हों, अंग स्वास्थ्य बनें तथा सतत् स्वास्थ्य संवर्धन होता रहे वे शरीर संवर्धनात्मक आसन कहलाते है। स्वात्माराम जी के अनुसार निम्नलिखित दस शरीर संवर्धनात्मक आसन है–

(प) गोमुखासन (पप) वीरासन (पपप) कूर्मासन (पअ) कुक्कुटासन (अ) उत्तानकूर्मासन (अप) धनुरासन (अपप) मत्स्येन्द्रासन (अपपप) पश्चिमोत्तान आसन (पग) मयूरासन (ग) सिंहासन । इन आसनों के अभ्यास की **प्रक्रिया, समय** इनके **लाभ** तथा इन्हें **लगाने** में रखने वाली सावधानियों के क्रम में इनका विवेचन निम्नानुसार है।

(प) गोमुखासन (Cow's face Pose)

सव्ये दक्षिणगुल्फं तु पृष्ठपार्श्वे नियोजयेत्।
दक्षिणेअपि तथा सव्यं गोमुखं गोमुखाकृतिः।।

(ह. प्र. 1/20)

नामकरणः— कमर के बायीं ओर दाहिने टखने (गुल्फ) के रखकर दाहिने भाग में बायें टखने को रखने से दोनों घूटने एक के ऊपर एक हो जाते है तथा इस स्थिति में आकृति गोमुख के समान बनती है इस कारण इसे गामुखासन कहते है।

विधिः—

(अ) सर्वप्रथम दोनों पैर फैलाकर बैठ जाते है।

(ब) बायें पैर की एड़ी को दाहिने नितम्ब (कूल्हे) के नीचे रखते है।

(स) दाहिने पैर की एड़ी को बायें नितम्ब के नीचे रखते है। इस प्रकार बायें घुटने के ठीक उपर दाहिना घुटना हो जाता है।

(द) दाहिने हाथ को मोड़कर कोहिनी दायें कान के ऊपर हाथ को कान से सटाकर हथेली को पीठ की ओर लाते है।

(इ) बायें हाथ को मोड़कर कोहनी नीचे पीठ से सटाकर रखते हुऐ, बायें हाथ से दाहिने हाथ की अंगुलियों को पकड़कर फांस हुक बनाते है। मेरूदंड, ग्रीवा एवं सिर एक सीध में रखते है। ध्यान अज्ञाचक्र पर होना चाहिये।

(ई) यही प्रक्रिया दूसरे पैर एवं हाथ को ठीक विपरीत तरीके से बदलकर दोहराते है। यह पाँच से दस बार एवं रोग निवारण हेतु आधा घन्टे तक के अभ्यास की आवश्यकता गुरू के निर्देशन में होना चाहिये।

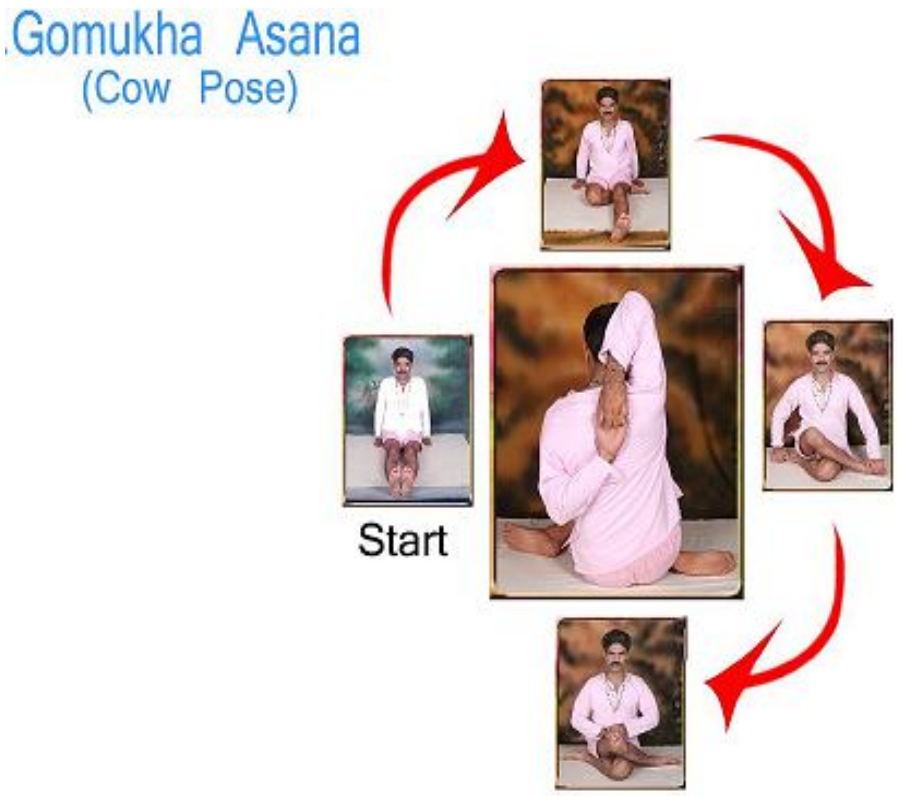

चित्र क्र. 11

लाभः–

- साधना में यह आसन मन को एकाग्र रखने में सहायक है।
- जप स्वाध्याय ध्यान एवं त्राटक के लिए उपयुक्त आसन है।
- स्नायुओं की निर्बलता दूर करने में उपयोगी है।
- वात रोगों के शमन में सहायक है।
- हाइड्रसिल (अण्डकोश का बढ़ना) रूक जाता है। एवं वीर्य पुष्ट होता है।
- पेट एवं आँतों के विकार दूर होते है। अपच नष्ट होता है। हर्निया ठीक होता जठराग्नि बढ़ती है। तथा लैंगिक विकार दूर होते है।
- किडनी (गुर्दे या वृक्क) के रोग दूर होते है। रक्तचाप नियंत्रित होता है।
- मधुमेह रोग से छुटकारा मिलता है। टी.वी. एवं दमा दूर होते है।
- स्त्रियों के मासिक धर्म सम्बन्धी अनियमितताओं में बहुत उययोगी है।

सावधानियाँ :–

- रोगों की तीब्र स्थिति में, ज्वर की स्थिति में तथा भोजन के तुरन्त बाद इसे नहीं करना चाहिये।
- अत्याधिक पैदल चलने या दौड़ने तथा घाव इत्यादि की स्थिति में भी नहीं करना चाहिये।

बोध प्रश्न :

टिप्पणी क : अपने उत्तर नीचे दिये गये स्थान में लिखें।

ख : इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

प्रश्न 2. स्वात्माराम जी के अनुसार आहार का स्वरूप स्पष्ट कीजिये ?

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

(पप) वीरासन (Hero's Pose)

एकं पादं तथैकस्मिन्विन्य से दुरूणि स्थितम्।
इतर स्मिंस्तथा चोरूं वीरासनमितीरितम्।।

(ह.प्र. 1/23)

नामकरणः— वीरों के बैठने अथवा चलने की स्थिति (मुद्रा) के सादृश्य स्थिति होने के कारण इसे **वीरासन** कहते है।

इसमें एक पैर बायीं जाँघ पर और दूसरा पैर दायीं जाँघ पर रख कर **बैठना** ही वीरासन कहा जाता है

विधिः—

(अ) सर्व प्रथम पैरों के तलवें के बल उकडू बैठते है। इस स्थिति में दोनों पैरों के अगूठे एक दूसरे को स्पर्श करेगें। तथा कूल्हें एड़ियों के ऊपर होंगे। अथवा

(ब) दूसरी विधि में वज्रासन में बैठकर शुरू किया जा सकता है।

(स) बाये पैर के घुटने को मोढ़कर जमीन में रखते हुये बायें पैर की ऐड़ी पर बैठते है।

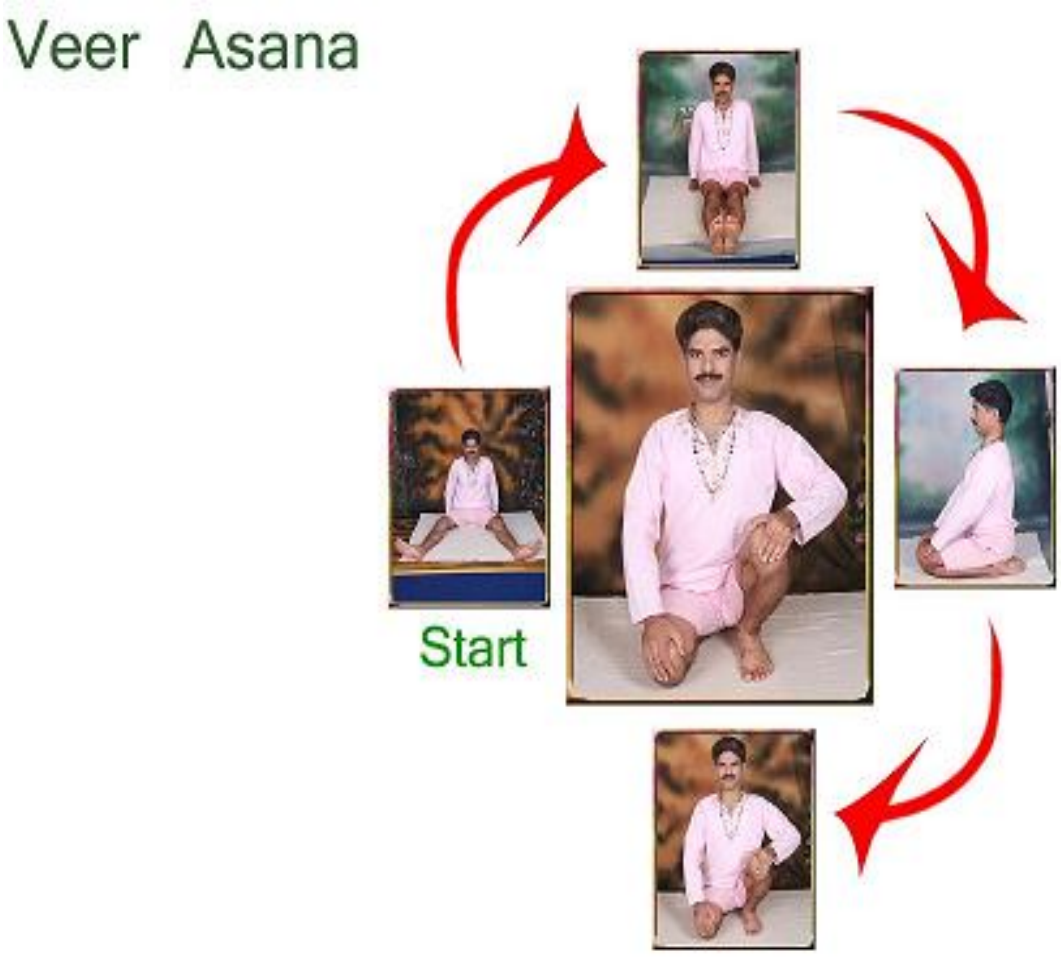

चित्र क्र 12

(द) दाहिने पैर के अगूठें को बायें पैर के जमीन में रखें घुटने के पास रख देते है।

(इ) दाहिने पैर के घुटने पर दाहिने हाथ की कोहनी रखते हुऐ हथेली को ठुड्डी पर रख देते है।

(ई) बायें हाथ की हथेली को बायें पैर के घुटने पर रख देते है।

लाभः–

- चिन्तन ध्यान अथवा विश्राम के लिए उपयुक्त आसन है।
- मन में शान्ति, चैतन्यता का भाव आता है तथा चंचलता दूर होती है।
- वीर्य भावना जागती है।
- छाती पुष्ट एवं फेफड़े सबल होते है।
- श्वास रोग, खाँसी, जुकाम, तथा कफ विकार शांत होते है। टी.वी. क्षय रोग में भी सहायक है।
- स्वप्न दोष और दुःस्वप्न निदान में सहायक है। आलस्य, निद्रा, खुमारी एवं भय की भावना नाश होती है।
- मन में वीर भाव आता है। शक्ति एवं स्फूर्ति प्राप्त होती है।
- पोलियों ग्रस्त या गठिया ग्रस्त पैर को मोढ़कर आसन करने से मन की एकाग्रता बनती है। तथा धीरे–धीरे विकार दूर होता है।
- यह आसन तनाव मुक्ति, चिन्ता, निराशा एवं भय का हरण करने वाला है।

सावधानियाँ

- सरल सहज होने के कारण विशेष सावधानी की आवश्यकता नहीं है। फिर भी योगासन करने के सामान्य नियमों का पालन करना अनिवार्य है।
- कम समय या अत्याधिक गतिशीलता की स्थिति में यह संभव नहीं है।

(पपप) कूर्मासन (Tortoise Pose)

गुदं निरूध्य गुल्फाभ्यां व्युत्क्रमेण समाहितः।
कूर्मासनं भवेदेतदिति योगविदो विदुः।।

(ह.प्र. 1/24)

नामकरण

कूर्म संस्कृत शब्द है जिसका अर्थ **कछुआ** होता है। इस आसन को लगाने पर शरीर आकृति कूर्म या कच्छप के समान बनती है इस कारण इसे कूर्म या कच्छपासन कहते है।

विधि

(अ) सर्वप्रथम दोनों पैरो को सामने फैलाकर बैठते है। इस स्थिति में दोनों पैर अलग–अलग रहते है।

(ब) मेरूदण्ड को सीधे खींचते हुऐ धीरे–धीरे सामने झुकातें है। और हाथों के घुटनों के नीचे ले जाते है। हथेलियों को खुली रखते हुऐ जमीन पर रखते हैं।

(स) मेरूदण्ड को इतना झुकाते है कि मस्तक जमीन को छूने लगें।

(द) दोनों हाथों को पैरों के नीचे से ले जाकर कमर के पीछे फाँस (हुक) आकृति में पकड़ लेते है।

लाभ

- इस आसन से आयु बढ़ती है। मन शान्त एवं चित्त की वृत्तियां निरूद्ध होती है।
- पैरों के पंजे, घुटने, कोहनी, जंघामूल, नाभि देश, मेरूदंड, ग्रीवा मस्तक कोहनी और हाथों की अंगुलियों पर वक्षस्थल पर, फेफड़ों पर गुदा पर तथा थायराइड तथा पैराथाइराइड ग्रन्थि पर विशेष दबाव पड़ने से ये अंग स्वस्थ्य एवं निरोग बनते है। दबाब पड़ने ये अंग स्वस्थ एवं निरोग बनते है।
- हार्निया, पैक्रियांज, मधुमेह, आंन्नावृद्धि तथा क्षयरोग में विशेषलाभकारी है।

Kurma Asana
(Tortoise Pose)

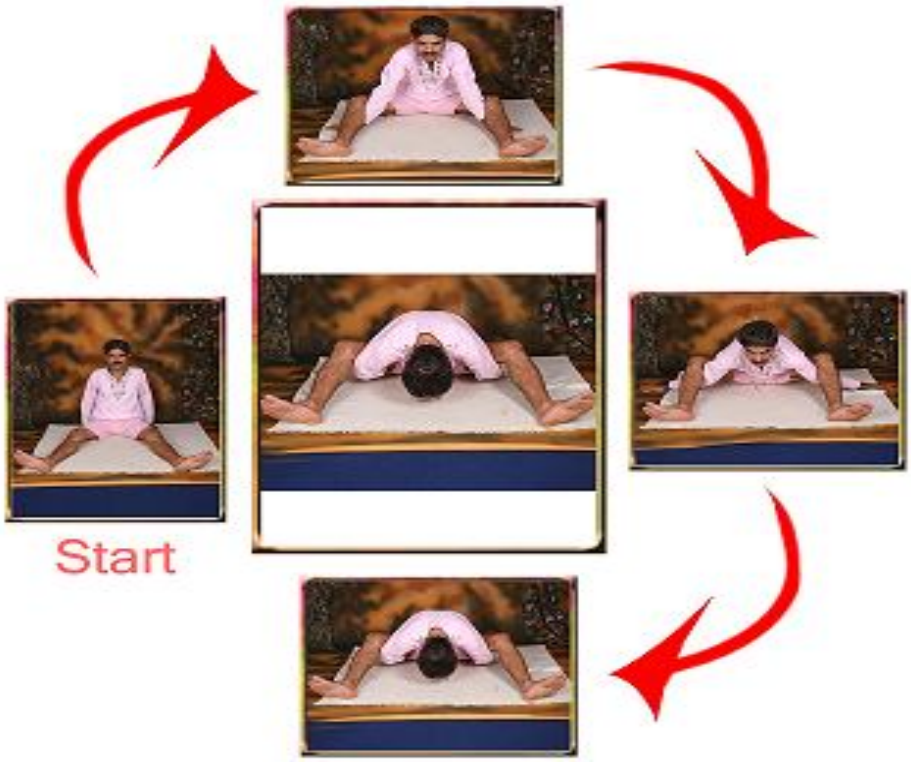

- गलगंड, कंडमाला, टांसिल, हकलाने, तुतलाने की आदत दूर होती है।
- यह शीत नाशक एवं उष्मावर्धक आसन है।
- मूलबन्ध के साथ बवासीर और भगन्दर में अत्यन्त लाभकारी है।
- मेरूदंड कों लचीला बनाता है। यकृत, आमाशय, ग्रहणी, श्रुद्रान्त, वृतदंत्र, क्लोमादि के रोगों में लाभकारी है। रजोविकार, प्रमेह अण्डकोषवृद्धि का रोगशमक है।
- स्नायुमंडल को स्वस्थ मन को एकाग्र, अर्न्तमुखी तथा कुण्डलिनी जागरण में सहायक आसन है। इत्यादि अनेक लाभ है।

सावधानियाँ

- मेरूदण्ड के रोग जैसे– स्लिप डिस्क, साइटिका, स्पोडेलाइटिस, के विकार में नहीं किया जाता है।
- हड्डियों के दीर्घकालीन दर्द में वर्जित है।

(पअ) कुक्कुटासन (Cocker Pose)

पद्मासनं तु संस्थाप्य जानूर्वोरन्तरे करौ।
निवेश्य भूमौ संस्थाप्य व्यामस्थं कुक्कुटासनम्।।

(ह.प्र. 1/25)

नामकरण

इस आसन को लगाने पर शरीर की आकृति कुक्कुट (मुर्गे) के समान दिखाई पड़ती है। इस कारण इसे कुक्कुटाआसन कहते है।

विधि

(अ) सर्वप्रथम दोनों पैर फैलाकर बैठ जावें फिर ठीक प्रकार से पद्मासन (दहिने पैर की ऐड़ी हिप बोन के बाये किनारे पर एवं बायें पैर की ऐड़ी हिप बोन के दायें किनारे पर सटाकर रखना)

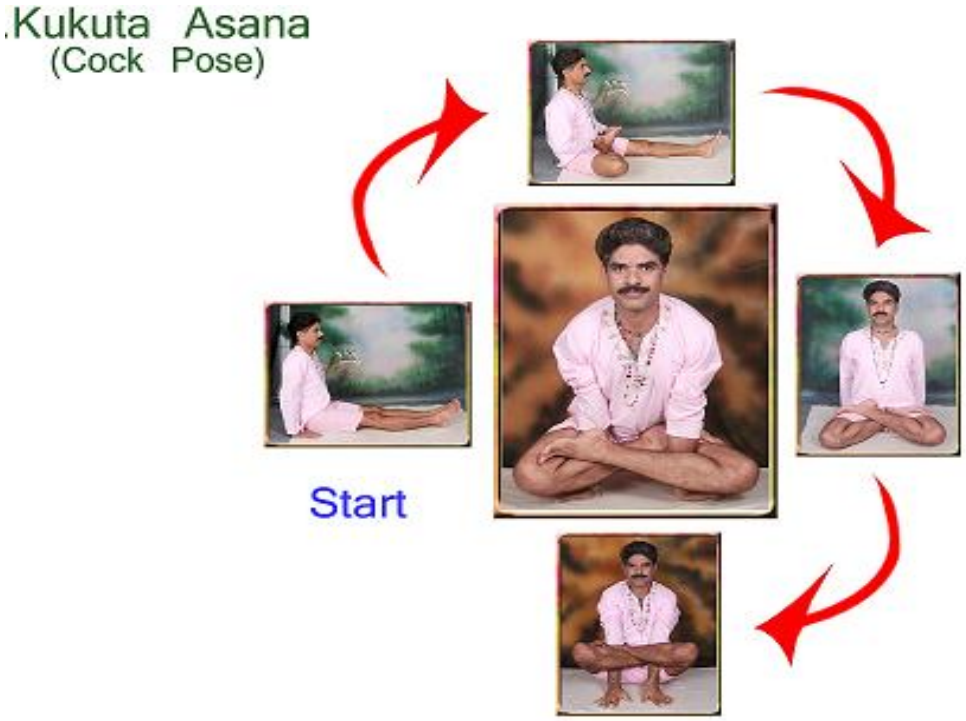

लगाते है।

(ब) पद्मासन में दाहिने हाथ को दहिने पैर की जानु और पिंडली के बीच में कोहनी तक ले जाना चाहिये और इसी प्रकार दायें हाथ को बायें पैर की जानु और पिंडली के बीच में ले जाना चाहिये।

(स) अब दोनों हाथों के पंजों को जमीन पर टिकाकर हाथों के ऊपर शरीर को संतुलित करते हुए ऊपर उठाते हैं।

(द) इस क्रिया को पद्मासन के पैर बदल कर भी किया जाना चाहिये।

लाभ

- पेट में कृमि (कीड़े) की शिकायत वालों हेतु बहुत लाभकारी है।
- जठराग्नि तीव्र होती है भूख बढ़ती है। थकान मिटाने में भी लाभकारी है।
- नाड़ी शुद्धि होने से शरीर में स्फूर्ति आती है तथा मूलबन्ध लगाने छोड़ने से वीर्य का स्तम्भन होता है।
- हाथों कंधों और सीने को पुष्ट एवं स्वस्थ्य बनाता है।
- वस्ति प्रदेश यौनग्रन्थि, शुक्राशय और शुक्रवाहिनियां भी सक्रिय होती हैं। उनके अवरोध दूर होते हैं, वीर्य शुद्ध और गाढ़ा होता है। जिससे स्वप्न दोष, शीघ्रपतन प्रमेह, धातुदौर्बल्य और नपुंसकतादि उपषमान में बड़ी सहायता प्राप्त होती है।

सावधानियाँ

- जिन व्यक्तियों के पैरों में बहुत अधिक बाल हैं, उन्हें पिंडलियों और जांघों के बीच से हाथ अन्दर डालने में कठिनाई होती है। अतः इसका अभ्यास तेल लगाकर या स्नान कर लगाना चाहिये।

(अ) उत्तानकूर्मासन (Stretching tortoise Pose)

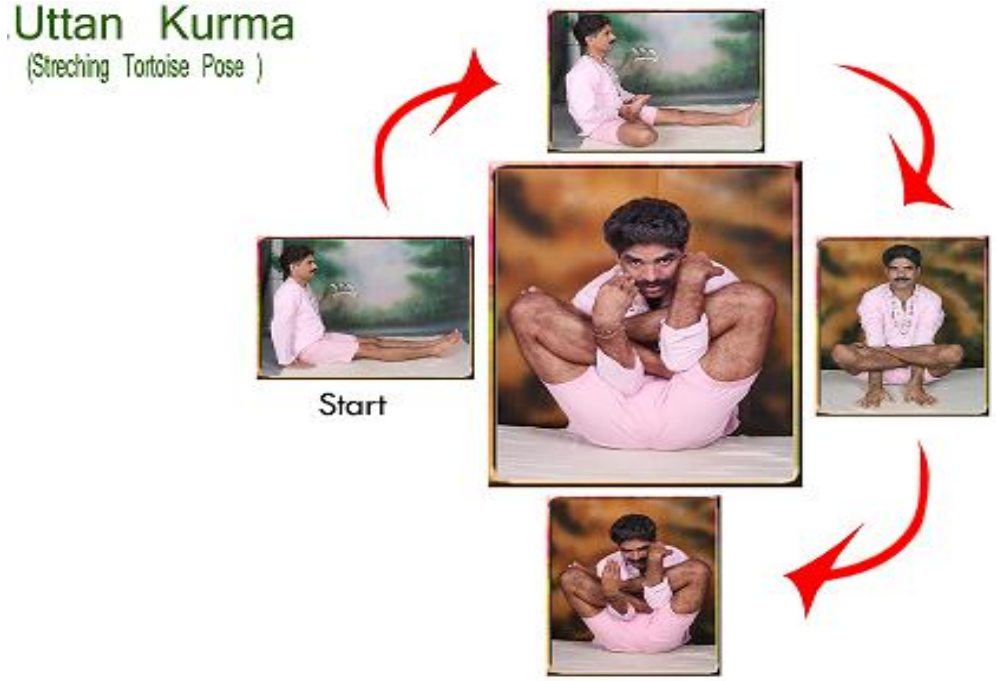

चित्र क्र. 15

कुक्कुटासन बन्धस्थौ दोभ्यां सबध्य कन्धराम्।
भवेत्कूर्मपदुत्तान एतदुत्तान कूर्मकम्।।

(ह.प्र. 1/26)

नामकरण

कूर्मासन की ही एक स्थिति जो उतान (खिची हुई) अवस्था में होने के कारण इसे **उत्तानकूर्मासन** नाम से जानते है।

विधि

(अ) पद्मासन में बैठकर कुक्कुटासन की तरह दोनों हाथों को दोनों पैरों की जंघा एवं पिण्डलियों के मध्य से निकाल लेते है।

(ब) दोनों निकले हुऐ हाथों को मोड़कर ग्रीवा के पीछे फांस (हुक) कर पकड़ लेते है।

(स) इस अवस्था में पूरा सन्तुलन कूल्हों पर होता है।

नोटः—उत्तान कूर्मासन की आकृति के आधार पर इसे **गर्भासन** और **प्रसारित मत्स्य आसन** भी कहा जाता है।

लाभ

- पद्मासन के सभी लाभ मिलते है।
- इसके सम्यक अभ्यास से पाकाशय, ग्रहणी, प्लीहा, वृक्क, क्लोम, वस्तिगुहा, गर्भाशय, शुक्राशय, मूत्राशय आदि अंग सक्रिय होते है।
- गैस, उदर वायु, गुल्फ, कब्ज, आदि दूर हो जाते है।
- हार्निया रोग में यह आसन बेल्ट बांधने के समान लाभ करता है।
- महिलाओं के गर्भाशय पुष्ट होते है। कष्ट रहित प्रसव हेतु उपयोगी है। मासिक स्त्राव की

अनियमितता दूर होती है।

सावधानियाँ

- गर्भवती स्त्रियां इसका अभ्यास गर्भाधान के दो माह बाद बंद कर देवे। गर्भस्त्राव की शिकायत होने पर गर्भाधान में तुरन्त बाद इसे बंद कर देवें।
- प्रसव के दो माह बाद आसन सतत् करने से भविष्य में इसके लाभ प्राप्त होगें, तथा गर्भस्त्राव से मुक्ति प्राप्त होगी।

(अप) धनुरासन (Bow Pose)

पादाडगुष्ठौ तु पाणिभ्यां गृहीत्वा श्रवणावधि।
धनुराकर्षणं कुर्याद् धनुरासनमुच्यते।।

(ह.प्र. 1/27)

नामकरण

इस आसन में शरीराकृति धनुषाकार प्रतीत होती है। इस कारण इसे धनुरासन कहते है।

विधि

(अ) सर्वप्रथम आसन पर पेट के बल लेट जाना चाहिये।

(ब) लेटकर दोनों हाथों से दोनों पैरों को मोड़कर टखनों पर दोनों पैरों को पकड़ना चाहिये।

(स) श्वास भरते हुऐ, छाती, और जांघ को पृथ्वी से जितना ऊपर सभ्भव हो उठाना चाहिये।

(द) इस खिचीं हुई अवस्था में पूरा शरीर नाभि के ऊपर संतुलित हो जाता है। श्वास छोड़ते हुऐ धीरे–

धीरे पूर्व स्थिति में आ जाते है।

लाभ

- श्वास रोग, कंठरोग एवं फेफड़ों के रोग दूर होत है।
- छाती एवं पसलियां सशक्त होती है।
- रीढ़ की हड्डी विपरीत दिशा में मुड़ने के कारण लचीली बनती है।
- रीढ़ की हड्डी से निकलने वाली सेन्सरी नर्व एवं मोटर नर्व दृढ़ (ट्यून) होते है।
- भुजदण्डों, जंघाओं, पिण्डलियों पर अनुकूल तनाव रहता है तथा शुद्ध रक्त प्राप्त होता है।
- पाचन संस्थान के समस्त रोगों के लाभ हेतु यह सर्वश्रेष्ठ आसन है।
- इसे मेदोनाशन भी कहते है अर्थात मुटापा दूर करने वाला।
- पिट्यूटरी ग्रंथि कों छोड़कर शेष ग्रथियों का परिशोधन होकर पुष्ट स्त्राव करने में सक्षम होती है।
- क्लोम ग्रंथि का नियमन मधुमेह रोगियों हेतु लाभकारी है।
- स्नायुमंडल पुष्ट करता है। स्नायु रोगों की श्रेष्ठ चिकित्सा विधि है।
- इससे सम्पूर्ण स्नायु मण्डल पुष्ट होता है। वात रोग नाशक है।
- स्त्रियों के गर्भाशय और जरायु के संपोषण तथा विकास में सहायक है।
- सभी आयु वर्ग हेतु हितकारी आसन है।
- चिरस्थायी यौवन, एवं बुढ़ापा नहीं आता है।

सावधानियाँ

- शरीर लचीला होने तक दोनों घुटनों का अन्दर डेढ़ फुट की दूरी पर रखना चाहिये। तथा

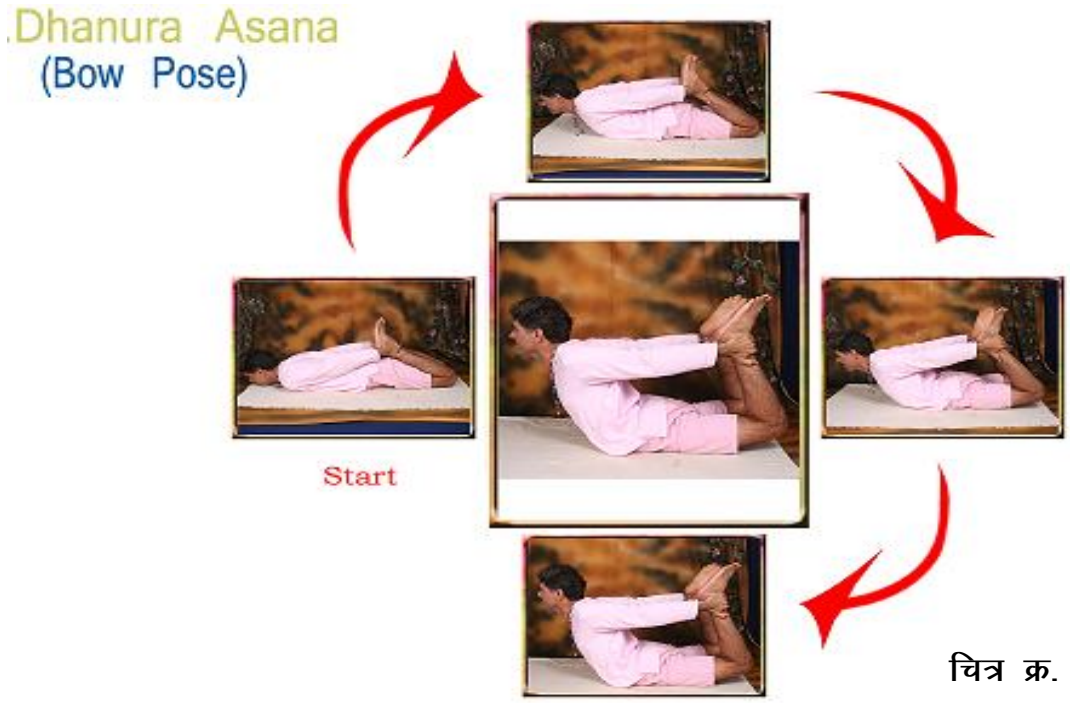

चित्र क्र. 16

लचीलापन के साथ दूरी कम करते जाना चाहियें।

- हृदय की धड़कन और उच्च रक्त चाप के उग्र रोग वाले इसका अभ्यास नहीं करें।
- पेप्टिक अल्सर और हार्नियां से पीड़ितों हेतु वर्जित है।
- कण्ठमाला के प्रकोप में, पकने फूटने के दौरान तथा बढ़े हुए घेघें में भी धनुरासन उचित नहीं है।

(अपप) मत्स्येन्द्रासन (Spinal twist Pose)

वामोरूमूलार्पितद क्षपादं जानोर्बहिर्वेष्टित वामपादम्।
प्रगृह्य तिष्ठेत् परिवर्तितांड श्री मत्स्यनाथोदितमासनं स्यात्।।
(ह.प्र. 1/28)

नामकरण

योगी गोरखनाथ जी नें अपने गुरू मत्स्येन्द्रनाथ के प्रति असीम श्रद्धा व्यक्त करने हेतु इसका यह नामकरण किया।

विधि

(अ) बायी जाँघ (वामोरू) के मूल में दहिने पैर को रखकर बायें पैर को जानू से बाहर ले जाकर रखते है।

(ब) हाथ को घुटने के ऊपर से लपेटते हुए अंगूठे को पकड़ कर नीचे वाले पैर के विपरीत और कमर से ऊपर के सम्पूर्ण भाग को मरोड़ते है।

(स) इस आसन को दोनों पैरों से बदल–बदल कर करना चाहिये।

Ardha Matsyendra Asana
(Half Matsyandra Pose)

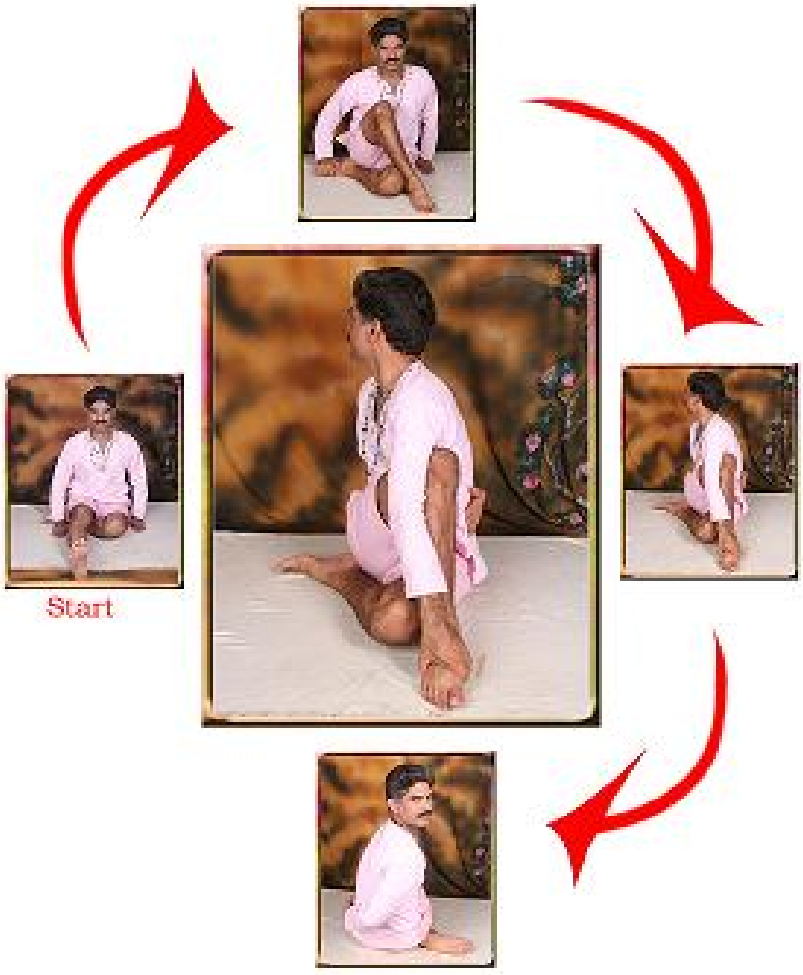

चित्र क्र. 17

लाभ

- प्राणशक्ति स्थिर होती है तथा साधक मृत्यु पर विजय प्राप्त करता है।
- इस आसन का सर्वाधिक प्रभाव बड़ी आंत, छोटी आंत, लीवर, प्लीहा, आमाशय, मूत्राशय और क्लोम ग्रन्थियों पर पड़ता है। इस कारण ये अंग परिपुष्ट एवं स्वस्थ्य बनते है।
- मन्दाग्नि, अपचन, कोष्ठवद्धता, गैस उठना, तथा अन्यान्य उदर रोगों से मुक्ति मिलती है।
- किडनी, मूत्र नलिकाएँ और मूत्राशय मजबूत एवं व्यवस्थित क्रियाशील बनते है। शुक्राशय पुष्ट होता है अतः मूत्ररोग एवं धातु रोग दूर होते है।
- हार्नियाँ एवं मधुमेह रोगियों को यह आसन योग्य योग शिक्षक के निर्देशन में करना चाहिये। इससे शीघ्र लाभ होता है।
- कमर रोग एवं वात दर्द को दूर करता है। मेरूदंड को लचीला बनाता है।

साँवधानियां

- शरीर को मोड़ते समय रेचक कर वायु बाहर करें तथा पूर्णता की स्थिति में सांस सामान्य रखें। तथा आसन छोड़ते समय पूरक करें।
- हृदय रोगी, उच्चरक्त चाप के रोगी, आमाशय वण या पक्वाशय व्रण के रोगीं यह आसन नही करें अन्यथा रोग बढ़ सकता है।

(अपपप) पश्चिमतानासन (Back stretching Pose)

प्रसार्य पादौ भुवि दंडरूपौ दोभ्याँ पदाग्रद्वितयं गृहीत्वा।
जानूपरि न्यस्तललाटदेशो वसेदिदं पश्चिमतानमाहुः।।

(ह.प्र. 1/28)

नामकरण

पश्च अर्थात पीछे का तथा उत्तान आर्थात रिंवचाव जिस आसन से शरीर के पीछे एड़ी से चेथी तक सम्पूर्ण शरीर में खिंचाव (तान) होने से इसे पश्चिमतान आसन कहते है।

विधि

(अ) सर्व प्रथम दोनों पैरो को सीधे फैलाकर बैठ जाते है।

(ब) दोनों हाथों को ऊपर पर्वतासन के समान खींचकर रेचक करते हुए धीरे धीरे दोनों हाथों से दोनों अंगूठों को पकड़ते है।

(स) पैर घुटनों से मुड़े नहीं तथा माथा घुटनों के ऊपर लगाने का प्रयास करते है।

(द) पूरक करते हुए हाथों को पुनः ऊपर उठाते हुऐ आसन को धीरे धीरे छोड़ते है।

लाभ

- कुण्डलिनी शक्ति विकास हेतु इसका अभ्यास महत्वपूर्ण है।
- प्राणवायु को पश्चिमदाहिनी (सुषुम्ना में स्थापित) कर देता है।
- जठराग्नि तीव्र करता है। तथा पेट के समस्त विकारों का शमन करता है। पाचन शक्ति बढ़ाता है। तोंद कम करता है।
- शरीर के पृष्ठवशं की मांसपेशियाँ स्वस्थ एवं लचीली बनती है। तथा मोटापा कम होता है। मधुमेह नाशक है।
- शरीर में स्फूर्ति मानसिक सन्तुलन एवं आध्यात्मिक शक्ति के विकास में सहायक है।

Paschimottana Asana
(Posterior Stretching Pose)

चित्र क्र. 18

सावधानियाँ

- गर्भवती स्त्रियाँ तीन माह बाद इसे नहीं करें।
- आन्त्रवृद्धि, तिल्ली विकार, अल्सर आदि पेट के रोग तथा मेरूदण्ड से संबधित रोगों की स्थिति में इसका अभ्यास वर्जित है।
- जोड़ों में दर्द, सायटिका इत्यादि में वर्जित है।

(पग) मयूरासन (Peacock Pose)

धरामवष्टम्य करद्वयेन तत्कूर्पर स्थापितनाभि पार्श्वः
उच्चासनो दण्डवदुत्थितः स्यान मायूरमेतत् प्रवदन्ति पीठ्म।।

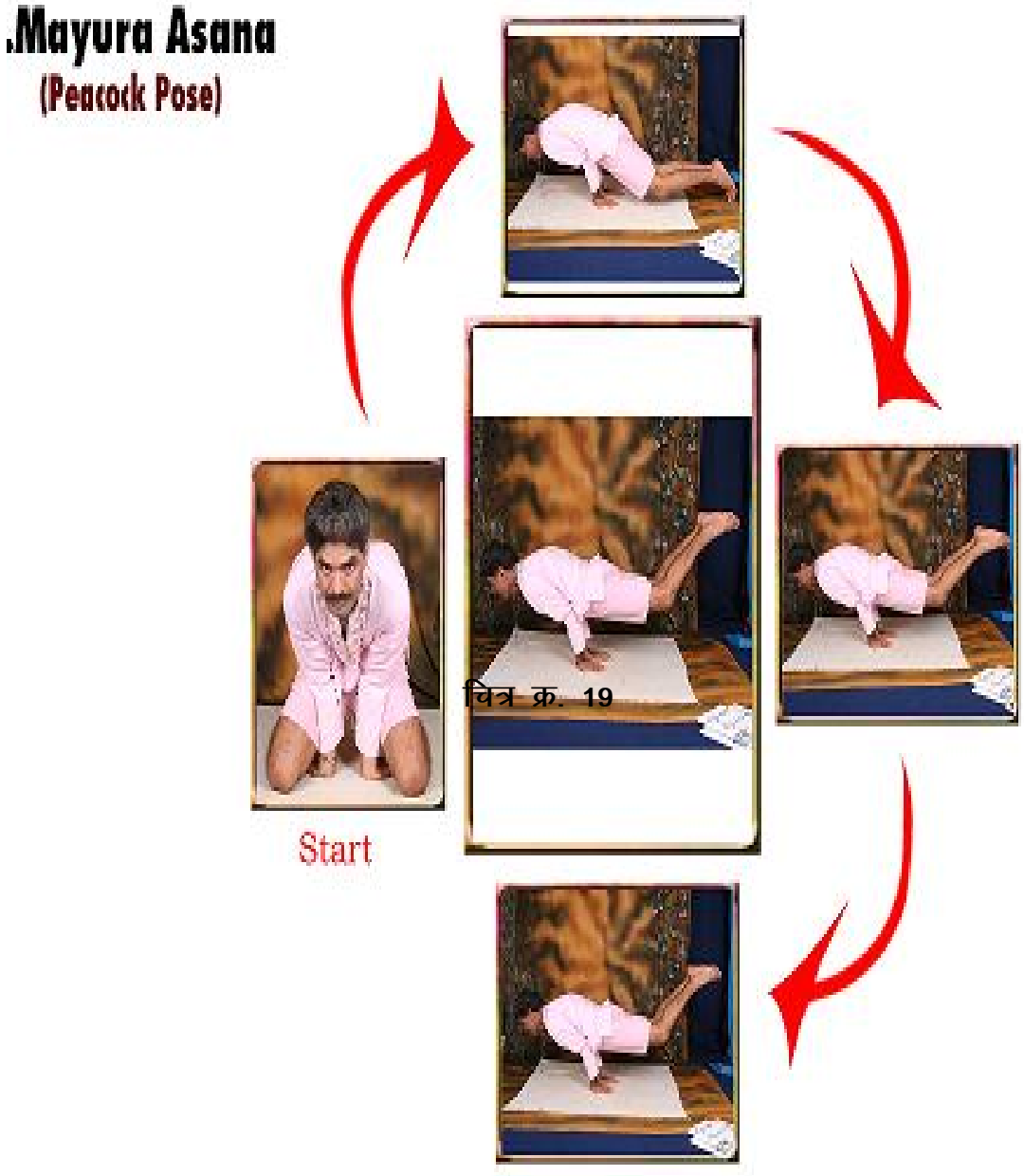

चित्र क्र. 19

(ह.प्र. 1/32)

नामकरण

इस आसन को लगाने पर शरीर की आकृति मयूर के समान दिखाई देती है इस कारण इसे मयूरासन कहते है।

विधि

(अ) सर्वप्रथम उकंडू बैठकर दोनों हाथों को हथेलियों के पीछे की तरफ मोड़कर जमीन पर रख देते है।

(ब) दोनों हाथों की कोहनियाँ नाभी के अगल–बगल रखते है।

(स) सिर को आगे की तरफ झुकाते हुऐ पैरों एवं सिर को एक ही सम रेखा पर लाते है।

(द) इस अवस्था में शरीर हस्त दण्ड पर झूलता है जैसे मयूर का शरीर दोनों पैरो पर सन्तुलित होता है।

(इ) शरीर को ऊपर उठाते समय रेचक तथा शरीर को नीचे लाते समय पूरक करना चाहिये।

लाभ

- इस आसन से सर्वाधिक जोर उदर पर पड़ता है अतः उदर (पेट) के समस्त रोगों को दूर करने में सहायक है।
- उदरशूल, जलोदर, प्लीहा आदि तथा कफ, वात, पित्त, (त्रिदोष) के विकृत होने से उत्पन्न दोष दूर करता है।
- जठराग्नि इतनी तीव्र हो जाती है कि जहरीला पदार्थ भी पच (भस्म) जाता है।
- कमर तथा नितम्बों की मांसपेशियों को मजबूत करता है।
- रीढ़ प्रदेश की मांसपेशियों को मजबूत करता है। तथा पार्श्वभाग के शूलों (दर्द) को दूर करताहै।
- मस्तिष्क की नाड़ियों पर प्रभावडालता है तनाव दूर करता है। तथा शारीरिक सन्तुलन की क्षमता बढ़ाता है।
- आध्यात्मिक लाभ हेतु श्रेष्ठ आसन है सभी योग के ग्रंथों में इसका संदर्भ प्राप्त होता है।
- यह एक रक्त शोधक आसन है। अतः त्वचा रोग दूर करता है। शरीर के अंगों में रक्तस्त्राव की वृद्धि करता है।
- मधुमेह में उपयोगी आसन है।

सावधानियां

- इस आसन को करने के बाद **सिर के बल** कीये जाने वाले आसन नहीं करना चाहिये।
- उच्च रक्तचाप, ह्दयरोग, हार्निया या पेट के घाव आदि के रोगी इसका अभ्यास नही करें।

(ग) सिंहासन (Lion's Pose)

गुल्फौ च वृषणस्याधः सोवन्याः पार्श्वयोः क्षिपेत्।
दक्षिणे सव्यगुल्फं तु दक्षगुल्फं तु सव्यके।।
हस्तौ तु जान्वोः संस्थाप्य स्वाङ्गुली संप्रसार्य च।
सिंहासनं भवेदेत त्यूजितं योगपुङ्गवै।।
बन्धत्रियसंधानं कुरूते चासनोत्तमम्।।

(ह.प्र. 1/52, 53, 54)

नामकरण

इस आसन को लगाने पर सिंह के समान आकृति दृष्टव्य होती है। इसी कारण इसे सिंहासन कहते है।

विधि

(अ) सर्वप्रथम सीवनों के दोनों पार्श्वो में टखनों को लगायें।

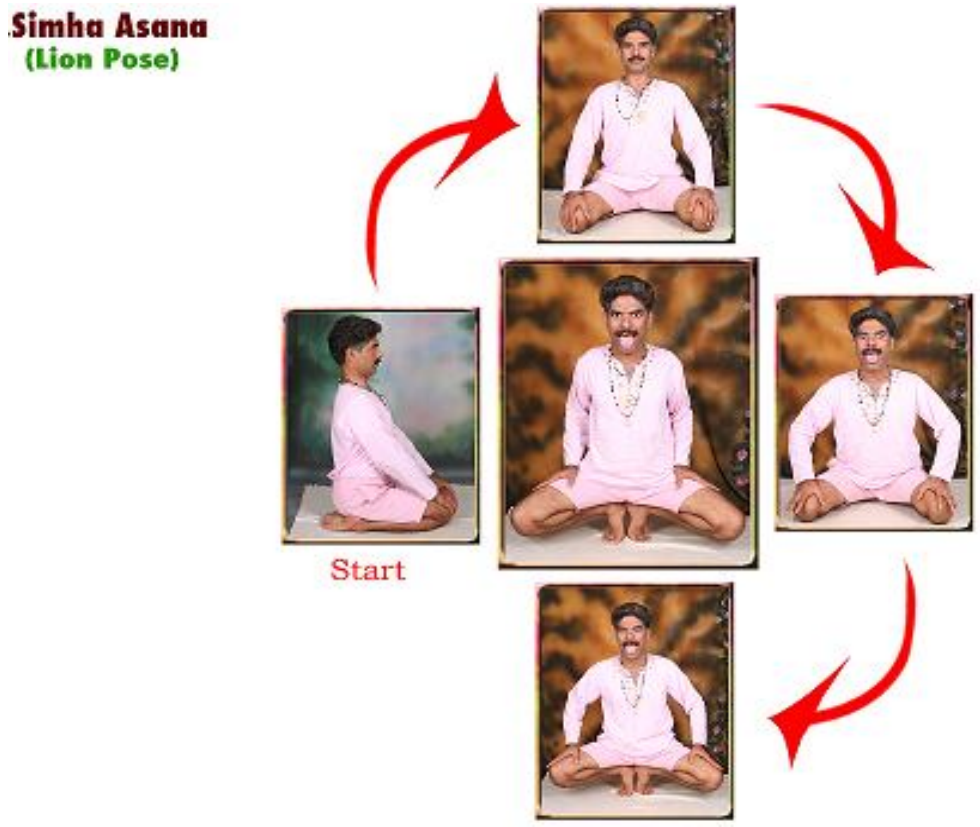

चित्र क्र. 20

(ब) बाये पार्श्व में दाया टखना लगाये।

(स) जानुओं के ऊपर हाथों के तलवें ठीक तरह से लगाकर हाथों की अंगुलियों के फैलाये मुख दहाड़ते हुऐ फैलाकर दृष्टि नासाग्र रखते है।

(द) सिंहासन के साथ तीनों बंधों को लगाया जाता है।

लाभ

- इस आसन से थायराइड एवं पैराथाइराड की कार्य क्षमता में वृद्धि होती है गले के नाक, कान के और मुंह के रोगों का शमन होता है।
- हकलाकर बोलने वालों के लिए एक श्रेष्ठ आसन है।
- इससे आवाज सुरीली एवं स्वास्थ्य कांतिमय बनता है।
- मूलबंध से अपानवायु को ऊपर खींचने से और उड्डियान तथा कुण्डलिनी का जागरण होता है।
- अण्डकोशों का बढ़ना रूक जाता है।
- मुंह पर पड़ी झुर्रियां नष्ट होती है।
- नेत्र ज्योति बढ़ती है।
- जालन्धर बंध लगाने से मन एकाग्र होता है भूख लगती है, पेट सम्बन्धी, वायुविकार नष्ट होते हैं।

सावधानियाँ

- इस आसन को सूर्य की ओर मुंह करके करना चाहिये।
- दोनों भुजाओं को सीधे रख थोड़ा आगे झुका रहना चाहिये।

- सिर पीछे की ओर उठाये रखकर ऊपर की ओर देखना चाहिये।

(2) विश्रामात्मक आसन

योगासनों के अभ्यास के दौरान अथवा सामान्य थकान की अवस्था में विश्राम के लिए जिन आसनों का अभ्यास किया जाता है उन्हें विश्रामात्मक आसन कहते है। स्वात्माराम जी ने हठयोग प्रदीपिका में इस श्रेणी का केवल एक आसन रख है जिसे शवासन कहा जाता है।

(प) शवासन (Corpse Pose)

उत्तानं शववद् भूमौ शयनं तच्छवासनम्।
शवासनं श्रान्तिहर चित्तविश्रान्तिकारकम्।।

(ह.प्र. 1/34)

नामकरण

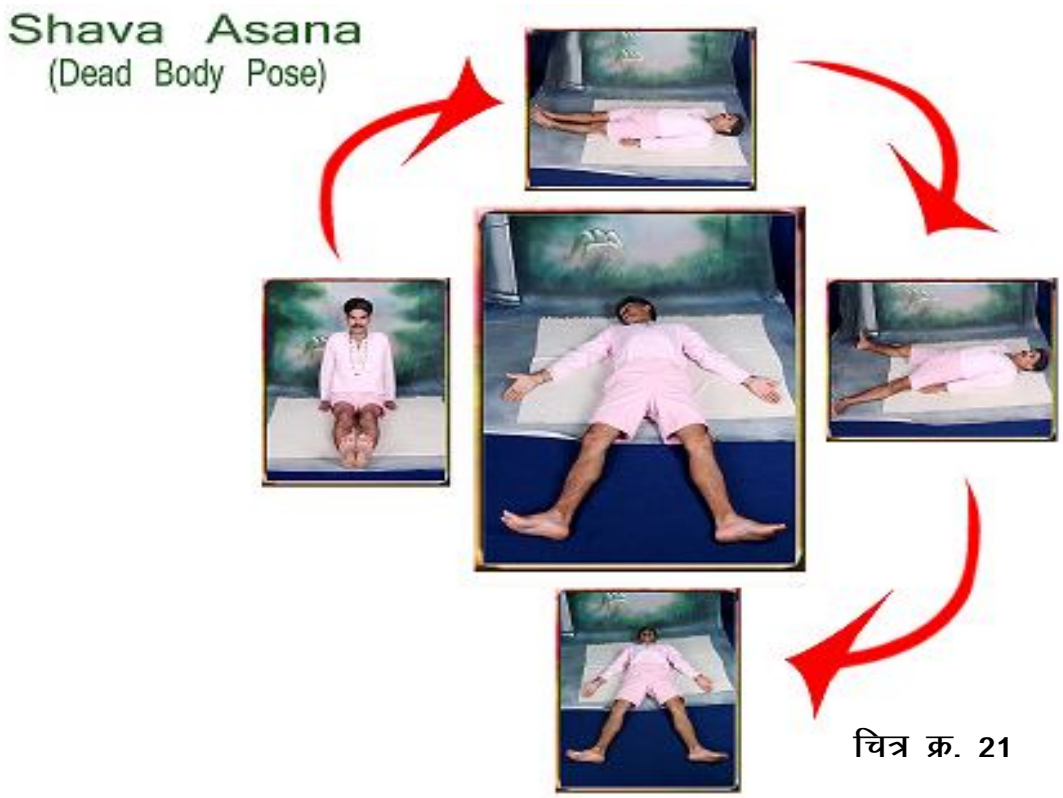

चित्र क्र. 21

निश्चल शव के समान देहाकृति के कारण इसे शवासन नाम दिया गया है।

विधि

(अ) पीठ के बल आसन पर चित्त लेटकर शरीर अंगों को निश्चल छोड़ देते हैं।
(ब) किसी भी अंग में तनाव नही होता तथा शरीर सीधा रहता है।
(स) क्रमशः शरीर अंगों को ध्यान देते हुऐ उन्हें ढीला छोड़ते जाते है।
(द) शरीर की मांसपेशियों को शिथिल अनुभव करते हुए ढीला छोड़ते जाते है।
(इ) विचार शून्य आंखें, स्थिर तथा धीमा श्वसन करते है।

लाभ

- श्वासन का अभ्यास सभी आसनों के बाद करने से उन आसनों से उत्पन्न थकान दूर होती है।
- उत्साह, कार्यशक्ति विकास, ऊर्जा का संचय नवजीवन प्राप्त होता है।
- तनाव तथा तनाव जनित रोग दूर होते है। जैसे– उच्च रक्तचाप, हृदय रोग, मधुमेह, अनिद्रा इत्यादि।
- स्वास्थ्य रक्षक आसन के रूप में श्रेष्ठतम आसन है।
- आमवात, पीठ की अकड़न, पीठ और कमर के दर्द को दूर करने हेतु सबसे सरल सहज आसन है।

सावधानियाँ

- इसे करने हेतु किसी विशेष सावधानी की जरूरत नहीं है।
- चिन्तन का प्रवाह नहीं होने देना चाहिये। भाव हीन निर्विचार स्थिति ही शवआसन है। अन्यथा लेटना मात्र रह जाता है।

(3) ध्यानात्मक आसन

ध्यानात्मक आसनों से हमारा तात्पर्य उन आसनों से है जिन्हें –

(प) बैठकर लगाया जाता है।

(पप) आसनों के साथ सुगमतापूर्ण त्रिबंध लगाये जा सकते हो।

(पपप) शरीर स्थिर एवं सुखमय स्थिति में लम्बे समय तक बना रहें।

(पअ) कमर के ऊपर के समस्त अंगों को अधिकाधिक रक्त प्रवाह मिलता रहें।

(अ) इनमें बैठकर लम्बे समय तक स्थिरता पूर्वक एवं आनंद पूर्वक लम्बे समय तक **मन** की चंचलता को बांधें रखा जा सके और घ्यान की गहराईयों में शारीरिक आवश्यकताएँ ही न हो।

स्वात्माराम जी ने हठप्रदीपिका में ऐसे चार ध्यानात्मक आसनों का वर्णन किया है। ये निम्नांकित है–

(प) स्वास्तिक आसन

(पप) सिद्धासन

(पपप) पद्मासन

(पअ) भद्रासन

(प) स्वास्तिक आसन (Auspicious Pose)

जानूर्वोरन्तरे सम्यककृत्वा पादतले उभे।
ऋजुकायः समासीनः स्वास्तिकंतत् प्रचक्षते।।

(ह.प्र. 1/21)

नामकरण

इस आसन को लगाने पर शरीर की आकृति चिन्ह के समान बनती है इस कारण इसे स्वास्तिकासन कहते है। जानु और उरू (जंघाओं) के मध्य में पैरों के तलबों को अच्छी तरह लगाकर समान अवस्था में शरीर एकसीध में रखकर बैठ जाय यही स्वास्तिक आसन कहलाता है।

विधि

(अ) दोनो पैरों को फैलाकर बैठ जाय।

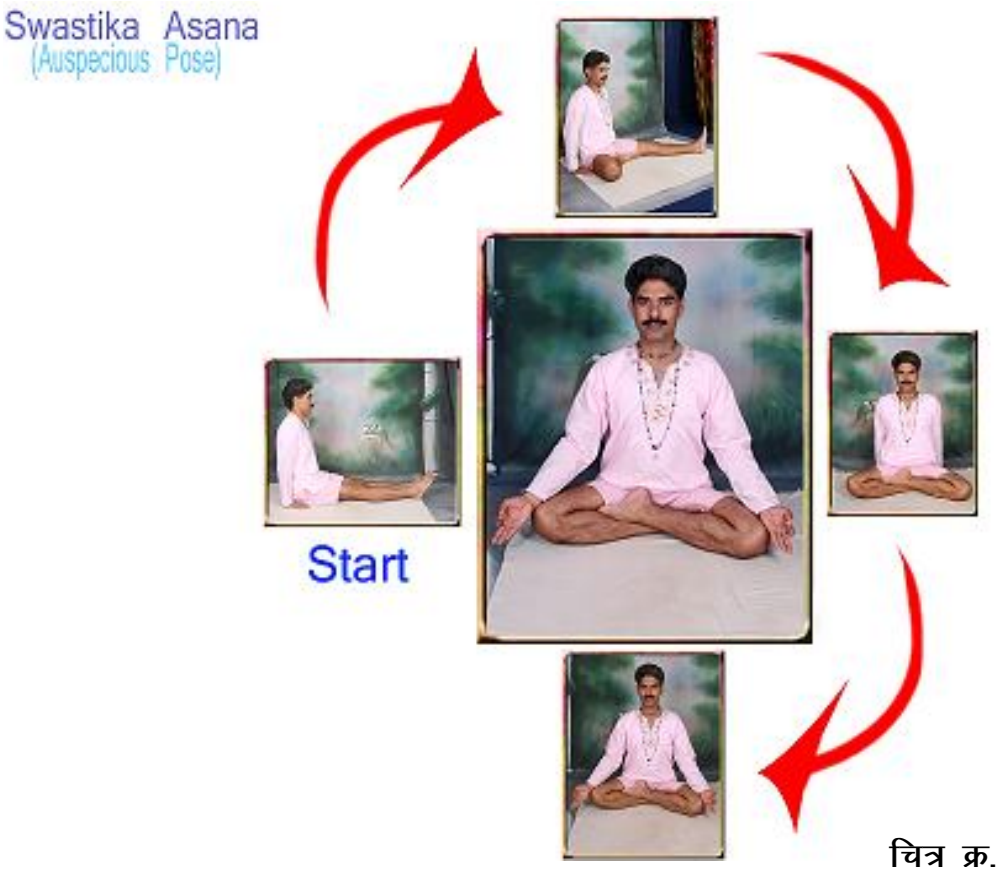

चित्र क्र. 22

(ब) दायें पैर के अँगूठे और शेष चार अँगुलियों को कैंची की तरह फैलाकर उसके अन्दर बायें पैर और जंघा के जोड़ वाले निचले भाग को दबाये।

(स) दाहिने पैर का तलवा बायी जंघा के साथ लगाये, इसी तरह बायें पैर को दाये पैर के नीचे ले जाकर अँगूठे और अंगुलियों की कैची में दायां पैर और जंघा को जोड़ने वाले भाग को दबाये और बायें पैर का तलबा दाहिनी जांघ के साथ लगाये।

लाभ

- इस आसन से साधक वायु का साधन यथाशीघ्र करने में सफल होता है।
- यह सुखकारक आसन है राजयोग साधना हेतु सामान्य आसन है।
- मन स्थिरता प्राप्त करता है और प्राणायाम की सिद्धि शीघ्र होती है।
- मेरूदण्ड सीधा एवं स्थिर होने से ध्यान शीघ्र लगता है।
- वीर्य उर्ध्व मुखी होता है, तथा ब्रह्मचर्य की शक्ति बढ़ती है।

सावधानी

- यह आसन मेरूदण्ड के निचले हिस्से में दर्द या पीड़ा होने पर नहीं करना चाहिये।
- साइटिका की शिकायत में भी इस आसन को नहीं करना चाहिये।

(ii) सिद्धासन (Adept's Pose)

योनिस्थानकमङ्घ्रिमूलधटितं कृत्वा हठ़ बिन्यसे।
न्येद्रे पादमथैकमेव हद्रये कृत्वा हनुं सुस्थिरम्।।

स्थाणुः संयमितेन्द्रियोचलदृशापश्येद् भ्रूवोरन्तरम्।
हयेतन्मोक्षकपाटभेदजनकं सिद्धासनं प्रोच्यते।। (ह.प्र. 36,37)

नामकरण

अनेक सिद्धों ने इस आसन में सिद्धि प्राप्त की है। साधकों को शीघ्र सिद्धि प्रदान करवाने में सहायक इस प्रकार का सहज आसन होने से इसे सिद्धासन नाम से जाना जाता है। इसकी सिद्धि का महत्व इस आसन के गोरक्षसंहिता और धरेण्डसंहिता से शब्दशः सामान वर्णन से स्वयं ही सिद्ध हो जाता है। योनिस्थान में बायें पैर की एड़ी को मिलाये तथा दायें पैर को लिंगन्द्रिय के ऊपर दृढ़तापूर्वक स्थिर कर तथा ह्दय के निकट ठोढ़ी को अच्छी तरह स्थिर कर निश्चित होकर इन्द्रियों को संयमित कर दृष्टि दोनों भौहों के मध्य में स्थापित करे।

विधि

(अ) सर्वप्रथम दौनों पैर फैलाकर बैठ जाते है।

(ब) अब बाये पैर की एड़ी को गुदा और अंडकोश के मध्य सीवन–स्थल पर सटा लेते है। ऐसा करने पर पाव का तलवा जाँघ को स्पर्श करना चाहिये।

(स) इसके बाद दाहिनें पैर की एड़ी को शिशन के ऊपर के भाग में दृढ़ता से लगाते है। हाथ ज्ञान मुद्रा में रखते है।

(इ) इसके बाद रीढ़, गर्दन और सिर को सीधा करके नेत्र दृष्टि को नासिका के अग्र भाग पर स्थिर करते है। ठोढ़ी लगाकर ह्दय के ऊपर स्थिर करते हैं।

(ई) दोनों हाथों की तर्जनी अंगुलि को मोड़कर अंगुठे मूल में लगाते है और शेष तीन अंगुलियों को परस्पर मिलाकर दोनों घुटनों पर स्थापित करते है।

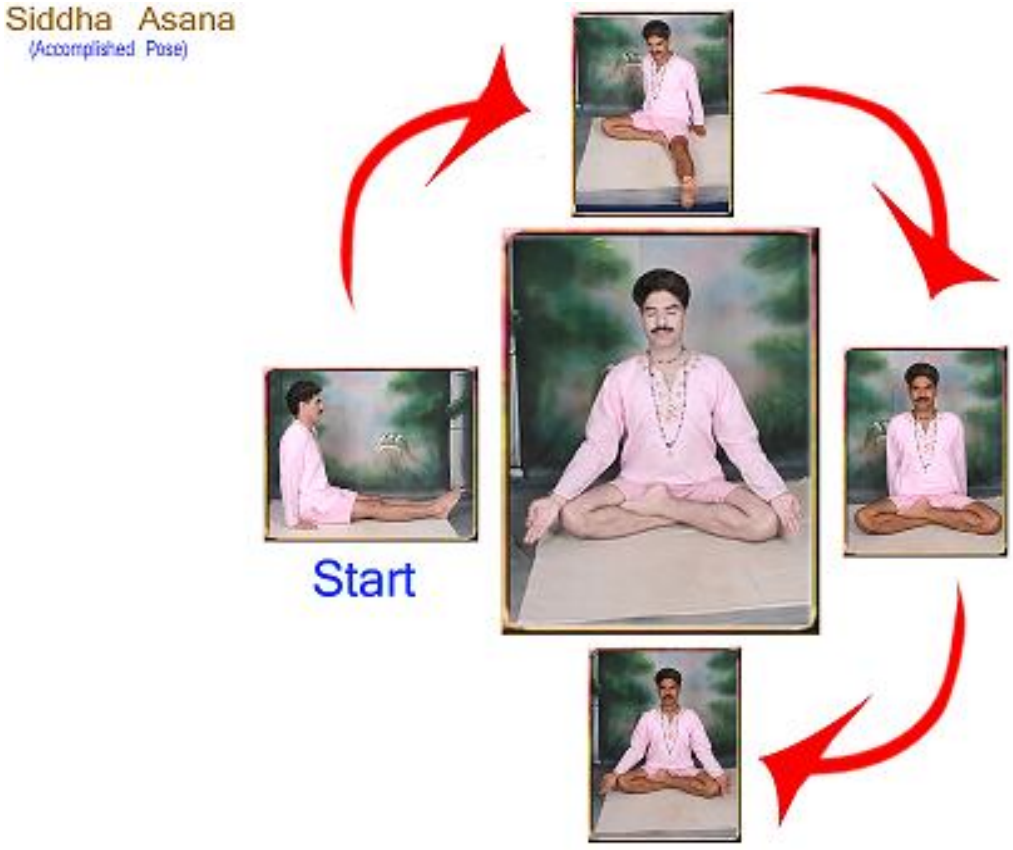

चित्र क्र. 23

इसमें ध्यान यह रखना होता है कि दोनों एड़ियां ठीक एक के ऊपर एक रहें।

लाभ

- इसे मोक्ष मार्ग के कपाट (द्वार) खोलने वाला आसन कहा गया है। यह स्मृति विकास कि लिए एक श्रेष्ठ आसन है।
- यह आसन शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक शक्ति बढ़ाने में सहायक महत्वपूर्ण सरल आसन है।
- सिद्धासन के सिद्ध हो जाने पर अन्य आसनों को सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं रह जाती है।
- सीवनी नाड़ी पर दबाब पड़ने से कामवासना शांत होती हैं तथा ब्रम्हचर्य बना रहता है।
- स्नायु संस्थान को शान्त स्थिर और सशक्त बनाता है तथा प्राण और मन पर संयम रखता है।
- इसके द्वारा कास, श्वास, प्रतिश्याय (जुकाम) ह्दय–रोग, अतिसार, पेचिस, स्वप्न दोष आदि नष्ट होते हैं।

सावधानियाँ

- यह आसन स्त्रियों के लिए विर्जित है।
- इसके अभ्यास काल में मिताहार तथा गौ दुग्धपान करना चाहिये।
- साइटिका और रीढ़ के नीचे के विकारों से ग्रस्त व्यक्ति को यह आसन वर्जित है।
- बच्चों तथा नवविवाहित युवाओं को यह आसन वर्जित है।

(पपप) पद्यमासन (Lotus Pose)

वामोरूपरिदक्षिणं च चरणं संस्थाप्य वाम तथा, दक्षोरूपरिपश्चिमेन विधिना धृत्वा कराभ्यां दृढ़म्।
अड्.गुष्ठौ ह्द्रये निधाय चिबुकं नासाग्रमालोक्ये, देतद्वयाधिविनाशकारि यमिनां पद्यासनं प्रोच्यते।।

(ह.प्र./46)

नामकरण

इस आसन को लगाने के बाद साधक की शरीर स्थिति पद्य अर्थात कमल के पुष्प के समान दिखाई देने से इसे पद्यासन कहा जाता है।

विधि

(अ) सर्वप्रथम दोनों पैंरों को फैलाकर बैठ जाते है, मेरूदण्ड सीधा रखते है।

(ब) दाहिने पैर को उठाकर दाहिनी जांघ पर रखते है। दोनों पैरों की एड़िया कूल्हें की हड्डी के किनारे पर स्पर्श करती रहें।

(स) हाथ अंजलि बनाकर या ज्ञान मुद्रा या चिन मुद्रा में रखते है। दृष्टि भूमध्य या नासाग्र रखते है।

(द) पद्यमासन के कई प्रभेद है जैसे– (1) अर्द्धपद्मासन् (2) बद्धपद्मासन (3) उत्थितपद्मासन (4) गुप्तपद्मासन आदि।

लाभ

- पैरों की नस नाड़िया शुद्ध होती है।
- यह आसन प्राणशक्ति को मूलाधार चक्र (गुदा एवं जाननेन्द्रिय के मध्य) से सहस्त्रारचक (सिर के ऊपरी भाग में) तक उचित रूप से प्रवाहित करता है। कुण्डलिनी जागरण में सहायक है।
- रीढ़ के निचले भाग एवं आमाशय में फैले स्नायु–जाल को अतिरिक्त रक्त पहुंचाकर पुष्ट करता

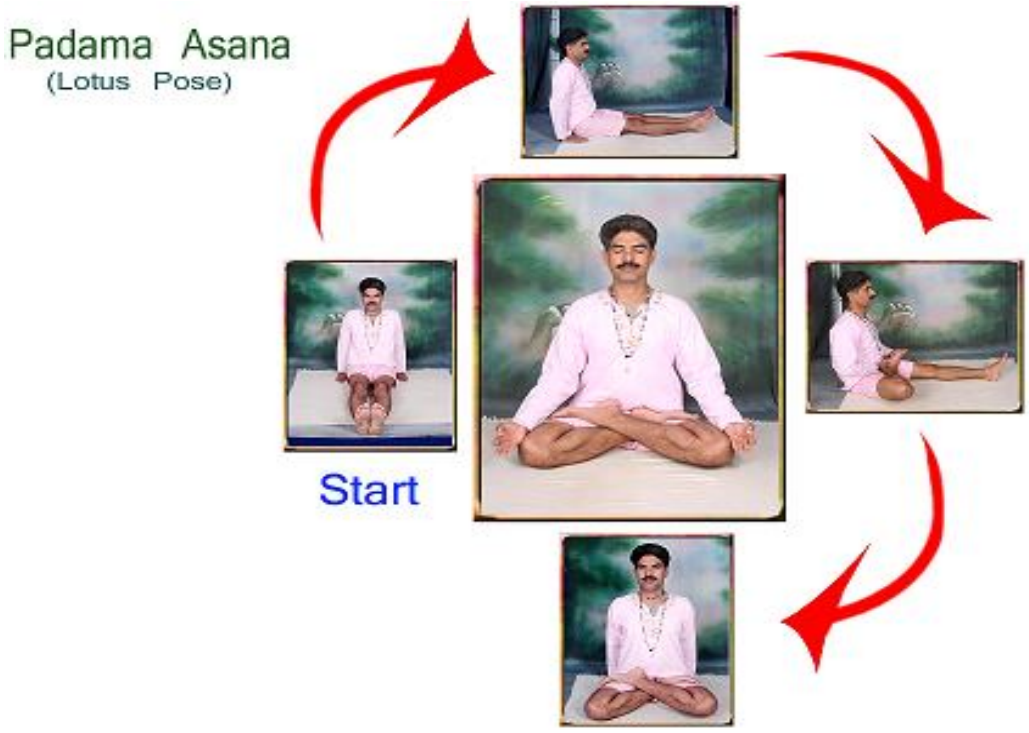

है।

- यह आसन आमाशय को खून की अतिरिक्त आपूर्ति करता है।
- यह आसन शारीरिक, स्नायविक, एवं भावनात्मक विकारों के सामंज्य हेतु सहायक है।
- इसके अभ्यास से जठराग्नि तीव्र होती है तथा भूख बढ़ती है।
- फाइलेरिया, गठिया, आमवात तथा जनन रोगों को ठीक कर देता है। दमा एवं मिर्गी रोग दूर हो जाते है।
- सुषुम्ना को सक्रिय करने मन को स्थिर एवं एकाग्र करने में सहायक आसन है।

सावधानियाँ

- पैरों पर पर्याप्त लोच आने के बाद करना चाहिये।
- साइटिका, मेरू रज्जु के पास दर्द या अन्य रोगों की स्थिति में नहीं करना चाहिये।
- इसका अभ्यास धीरे–धीरे बढ़ाना चाहिये।

(पअ) भद्रासन या गोरक्षासन (Gracious Pose)

गुल्फौ च वृषणस्याधः सीवन्याः पार्श्वयोः क्षिपेत्।
सव्यगुल्फं तथा सव्ये दक्षगुल्फ तु दक्षिणे।।
पार्श्वपादौ च पाणिभ्यां दृढ़ं वद्धवा सुनिश्चिलेम्।
भद्रासन भवेदेतत्सर्व व्याधिविनाशनम्।।

(ह.प्र. 55, 56)

नामकरण

इस आसन में शरीर की स्थिति भद्र पुरूष के समान दिखाई देती है इस कारण इसे भद्रासन कहते हैं।योगी एवं सिद्धसाधक इसे **गोरक्षासन** भी कहते है।

विधि

चित्र क्र. 24

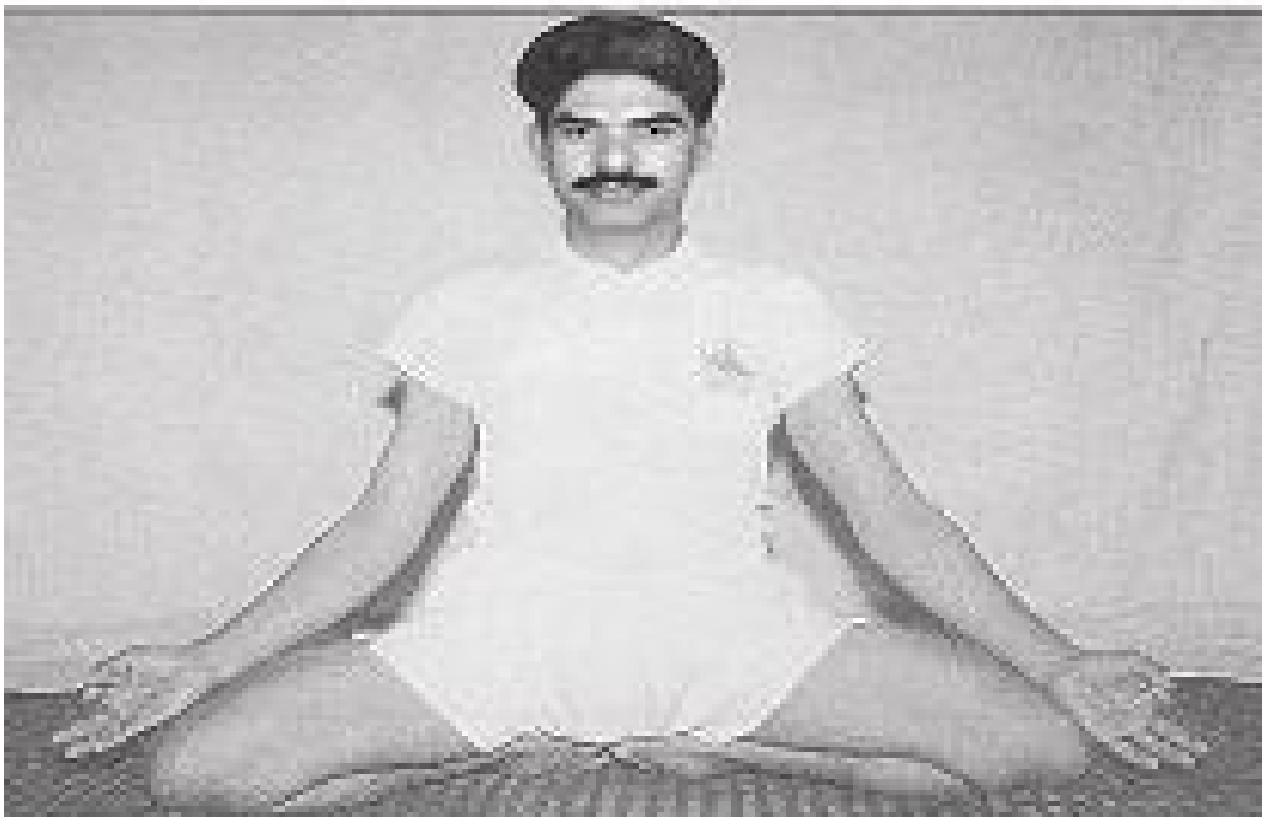

गोरक्षासन (चित्र क्र. 25)

(अ) सर्वप्रथम दोनों पैरों को सामने फैलाकर बैठ जाते है।

(ब) पैरों के पंजों को जमीन छूते हुये दोनों हाथों से पकड़कर दोनों एड़ियां मिलाते हुए सीवनी नाड़ी से स्पर्श करवाते है।

(स) दोनों हाथों से पैरों को पकड़कर घुटनों को जमीन में लगाकर आसन को दृढ़ करने का प्रयास करते है।

लाभ

- यह आध्यात्मिक विकास का आसन है। इससे मूलाधार चक्र उत्तेजित होता है।
- सभी प्रकार की ब्याधियों का नाश करने वाला है।
- ब्रम्हचर्य व्रत पालन में सहायक। वीर्यवाहिनी नाड़ियों के आवांछनीय क्षोभ को दूर करता है।
- समस्त प्रमेह रोगों, स्वप्नदोषों, तथा वीर्य रक्षा और शुक्र के कष्ट करने में सहायक आसन है।
- स्त्रियो के गर्भाशय को पुष्ट करता है। बुढ़ापा दूर करता है। मासिक धर्म की अनियमितताये, कष्टार्तव अत्यातव, ल्यूकोरिया, कटिशूल आदि कष्टदायी रोगों को दूर करता है।
- काम तरंगों के नियंत्रण एवं जननांगों के विकास में सहायक है।
- आत्मबल, आत्मचेतना, और इच्छा शक्ति को बढ़ाता है। आत्मनिर्भरता एवं सक्रियता बढ़ाता है।
- विद्यार्थीयों के लिए अत्यंत लाभदायी है। उर्ध्वरेता बनता है। वातनाशक है।
- इसे लगाकर आभा चक्र पर ब्रह्य ज्योति का ध्यान करने से सहज ही **मनोलय** प्राप्त होता है।

सावधानियाँ

- गोरखनाथ जी भद्रासन का अभ्यास करते थे। इस कारण इसे गोरक्षासन भी कहा गया है।

घेरण्डमहर्षि इसे और गोरक्षासन को पृथक पृथक बतलाते है।

- पर्याप्त लचीले पैर होने पर लम्बा अभ्यास करना चाहिये।
- मिताहार एवं नियमित दिनचर्या से 1 वर्ष में आसन सिद्ध हो जाता है।

7.5 ईकाई 22 हठयोग प्रदीपिका में वायु एवं नाड़ी शुद्धि

7.5.1 हठयोग प्रदीपिका में वायु

हठयोग साधना का मूल आधार प्राण साधना है। अतः हठयोग के अर्थ में वायु शब्द के अर्थ को स्पष्ट समझ लेना अत्यावश्यक होता है। यहाँ हम वायु शब्द के विविध अर्थ एवं उनके प्रयुक्त अर्थो की जानकारी प्राप्त करेगें, जिससे प्राण साधना के लिए वायु की स्पष्ट संकल्पना का ज्ञान हमें हो सके। समान्यतया **वायु** से हम पंच तत्वों में एक तत्व हवा (गैसों का सम्मिश्रण) के अर्थ को ग्रहण करते है। किन्तु हठयोग प्रदीपिका एवं योगविज्ञान के अर्न्तगत **वायु** शब्द का प्रयोग उस हवा के लिए किया जाता है, जो **श्वास–प्रश्वास** के रूप में शरीर के भीतर–बाहर आती–जाती है। इतना ही नहीं, कहीं–कहीं तो इससे भी आगे शरीर के अर्न्तगत स्थायी रूप से विद्यमान एवं शरीर संचालन में प्रमुख तत्व **प्राण** के लिए भी वायु शब्द का प्रयोग होता है। योग विज्ञान में यह सिद्धांत सुस्थापित है कि इस प्रत्यक्ष जीवन क्रिया के पीछे एक अति महत्वपूर्ण परोक्ष जीवन क्रिया है। योग विज्ञान में प्राण अथवा इसके पर्यायवाची वायु, वात, समीर, मारूत आदि शब्द का प्रयोग बाह्य श्वसन क्रिया के विषय में जब भी किया जाता है। तब उससे सदैव जैविक क्रिया का भी ध्यान रखा जाता है।

हठप्रदीपिका के द्वितीय उपदेश में प्राणायाम प्रकरण के अर्न्तगत इसी **''वायु''** के बारे विशद् विवेचना उपदेशित की गई है जो निम्नलिखित है।

चले वाते चलं चितं निश्चले निश्चलं भवेत्।
योगी स्थाणुत्वमाप्नोति ततो वायुं निरोधयेत्।।

(ह.प्र. 2/2)

हठप्रदीपिका में वायु का अर्थ प्राण तत्व से लिया गया है उपरोक्त उपदेश के अनुसार जब तक प्राणवायु चंचल बनी रहती है अर्थात अस्थिर रहती है तब चित भी चंचल बना रहता है। प्राणवायु के स्थिर हो जाने पर चित्त भी निश्चल अर्थात चंचल गति के स्थिर होने पर स्थिर या निश्चल हो जाता है। और साधक चित स्थिर होने से एकाग्रता से युक्त होकर व्यक्ति स्थिरता को प्राप्त करता है। इसलिये वायु का निरोध (श्वास–प्रश्वास का भौतिक संयमन या नियमन) करना चाहिये। वायु के निरोध से चित्त स्थाणुरूप को प्राप्त होता है। जब तक वायु (प्राण) इस शरीर में है, तभी तक जीवन भी है, अतः इस प्राण को निकलने न देकर कुम्भक का अभ्यास बढ़ाना चाहिये, जिससे जीवन बना रहे और जीवन में स्थिरता बनी रहें।

यावद् वायुः स्थितो देहे तावज्जीवनमुच्यते।
मरणं तस्य निष्क्रान्तिस्तता वायुं निरोधयेत्।।

(ह.प्र. 2/3)

7.5.1.1 वायु एवं उन्मनीभाव

जन्म के बाद मनुष्य जैसे–जैसे मनोआवेगों एवं संवेगो से ग्रसित होता जाता है वैसे–वैसे ही असावधानी के कारण या स्वयं ही अपने आप श्वास–प्रश्वास लेने छोड़ने की आदत के कारण प्रत्येक व्यक्ति का श्वास–प्रश्वास जितने समय में होना चाहिए उससे कम समय में होता है। इस प्रकार श्वास–प्रश्वास की गति बढ़ने से चित्त या मन भी चंचल रहा ही करता है। इसी कारण **'आयु'** का भी क्षय शीघ्रता से होता रहता है। इस प्रकार योग विज्ञान ने यह सिद्वांत प्रतिपादित किया कि यदि सावधानी से धीरे–धीरे श्वास–प्रश्वास का

अभ्यास बढ़ाया जाय और उसे नियंत्रित तरीके से रोकने का अभ्यास किया जाये, तो परिणाम स्वरूप श्वास–प्रश्वास धीरे–धीरे (मन्द मन्द) लेने–छोड़ने की आदत बनने लगती है। श्वसन क्रिया जितनी गहरी एवं मंद होगी उतना ही जीवन क्रम भी लम्बा होगा अर्थात जीवन क्रिया क्षय होने का क्रम मन्द होगा। इसी सिद्धांत के आधार में श्वास–प्रश्वास का नियन्त्रण करने तथा पर्याप्त समय तक उसको रोक रखने (कुम्भक) से आयु के भी बढ़ने की सम्भावना बनी रहती है। इसी कारण योग में कुम्भक (प्राणायाम) का महत्व वायु निरोध (नियमन) के लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारक माना जाता है।

जब तक शरीर की नाड़ियों में मल (विकार) उपस्थित है तब तक सुषुम्ना अर्थात मध्यनाड़ी में वायु का संचार नहीं हो पाता है और तब तक वायु (प्राण) ऊपर की ओर (सुषुम्ना नाड़ी में) संचारित नहीं होते है। इसलिए मन का **उन्मनीकरण** (उन्मनीभाव) नहीं हो सकता और तब तक साधक हठयोग की प्राप्ति भी नहीं कर पायेगा। आर्थात उसकी योगसाधना (मनोन्मनीभाव) का कार्य सिद्ध नहीं हो सकेगा।

मलाकुलासु नाडीषु मारूतो नैव मध्यगः।
कथं स्यादुन्मनीभावः कर्मसिद्धिः कथं भवेत्।।

(ह.प्र. 4/2)

यहाँ यह बात भी साधकों को विशेष ध्यान देने की है कि शरीर या शरीरस्थ नाड़ियों में यदि पहले से विकार या अपद्रव्य या गन्दगी भरी है तब तक कुम्भंक का अभ्यास लाभ के बदले हानि भी कर सकता है। अतः सभी नाड़ियों सहित शरीर की शुद्धि होकर शरीर शुद्ध होता है और साथ–साथ अनेक प्रकार के शारीरिक रोग भी दूर होते हैं। किन्तु कदाचित् किसी प्रकार की गलती इस अभ्यास में हुई तो परिणाम स्वरूप अनेकों बिमारियां उत्पन्न होने की सम्भावना भी रहती है। इस कारण नाड़ियों की शुद्धि अत्यन्त आवश्यक है।

7.5.2 हठयोग प्रदीपिका में नाड़ी शुद्धि

7.5.2.1 प्राणसंग्रहण

हठयोग में नाड़ी शुद्धि का साधना की दृष्टि से अत्यन्त महत्व है। नाड़ी के अनेक अर्थ है। नाड़ी शब्द स्त्रीलिंग का वाचक है। नाड़ी (नद + णिच् + इन) आर्थात् धमनी या शिरा की भांति वाहिकाओं के आकार का शरीर का अंग या हाथ पैर की नब्ज से लिया जाता है।

गव्यर्थक **नद** या नाद् धातु के सन्दर्भ में नाड़ी शब्द का अर्थ है गतिशील होना या प्रवहनशील होना। योगविज्ञान के ग्रन्थों में नाड़ी शब्द का प्रयोग ऐसे अंगों के लिए हुआ है, जो खाद्यपदार्थ, पेय, रक्त, लसिका, वायु और नाड़ी संवेगों के परिवहन के लिए बड़े या छोटे मार्ग के रूप में कार्यशील होते हैं। शरीर में इस प्रकार के नाड़ी जालों की संख्या अनन्त मानी गई है किन्तु इन्हें मौटे तौर पर बहत्तर हजार की संख्या में सीमित किया गया हैः–

द्वासप्ततिसहस्त्राणां नडीनां मलशोभने।
कुतः प्रक्षालनोपायः कुंडल्यभ्यसनादृते।।

(ह.प्र. 3/123)

उपरोक्त वर्णित 72 हजार नाड़ियों के द्वारा वायु (प्राण) के धक्के से शरीर में से सभी पदार्थ प्रवाहित होते रहते है। यदि शरीर में मल या अशुद्धियां होगी तो इन प्रवाहों के साथ वे भी प्रावाहित होकर शरीर के दूरस्थ अंगों में विकार या रोग उत्पन्न करेगें। विशेषकर योग साधना में कुम्भक (प्राणायाम) के अभ्यास के समय शरीर एवं नाड़ी समूह पूर्णतः शुद्ध रहना आवश्यक है अन्यथा कुम्भक (प्राणायाम) की स्थिति में शरीर के अन्दर धुमड़ते हुए आन्तरिक प्रवाहों के साथ मिलकर जिन अंगों की ओर गति करेंगे उनमें विकार उत्पन्न करेंगे। इस कारण स्वात्माराम जी **प्राणसंग्रह** की बात करते है।

शुद्धिमेति यदा सर्व नाड़ीचक्र मलाकुलम्।
तदैव जायते योगी प्राणसंग्रहणे क्षमः।।

(ह.प्र.2/5)

अर्थात जब शरीर के मलों (शारीरिक दोषों और विकारों) का पूरी तरह शोधन हो जाता है इस स्थिति में सम्पूर्ण नाड़ीचक्र जब विकार एवं दोष रहित हो जाता है तब साधक **प्राण संग्रह** करने (प्राणो को एक जगह रोकने) योग्य हो जाता है। वायु (प्राण) इसके नियंत्रण में हो जाते है अतः ऐसा उपदेश है कि प्राणसंग्रह के लिये नियमित वायुनियमन (प्राणायाम) करने से ही सम्पूर्ण नाड़ी मंडल शुद्ध हो जाता है और बिना रूकावट (अवरोध) के प्राणों की गति सम्पूर्ण शरीर में होने लगती है यही प्राण संग्रह की स्थिति होती है। जिसमें सम्पूर्ण शरीर प्राणायाम हो जाता है। पूर्ण प्राण मय स्थिर चित साधक योग की उच्च स्तरीय साधना (राजयोग) के लिये सक्षम हो जाता है।

7.5.2.2 नाड़ियों का अन्तः शोधन

हठयोग प्रदीपिका में नाड़ियों के शोधन की व्यवहारिक प्रक्रिया बड़े विस्तार पूर्वक वर्णित की गई है। श्लोक 2 + 6 से 2/20 तक नाड़ी शोधन की आन्तरिक प्रक्रिया का वर्णन है। प्राण संग्रह हेतु साधक को सात्विक (निर्मल,पवित्र) बुद्धि से नित्य प्राणों को आयाम (विस्तार) देना चाहिये, ऐसा करने से 72 हजार नाड़ियों में से प्रमुख इडा पिंगला एवं सुषुम्ना है। ये नाड़ियाँ शुद्ध होकर मध्यनाड़ी (सुषुम्ना में) में प्राण प्रवाहित कर सकने के करीब जब साधक पहुंचता है तब तक शरीर के समस्त विकार दूर हो जाते है सुषुम्ना में प्रवाहित **प्राण** अर्न्तनाद की ओर बढ़ने लगता है।

नाड़ी शोधन प्रक्रिया

(1) योगी (साधक) को पद्मासन में बैठकर प्राणवायु को चन्द्रनाड़ी (बायी नासिका से, इडानाड़ी) द्वारा भीतर खींचकर यथाशक्ति अन्दर रोककर (खींचकर) उसे सूर्यनाड़ी (दाहिनी नासिका से, पिंगला नाड़ी) के द्वारा

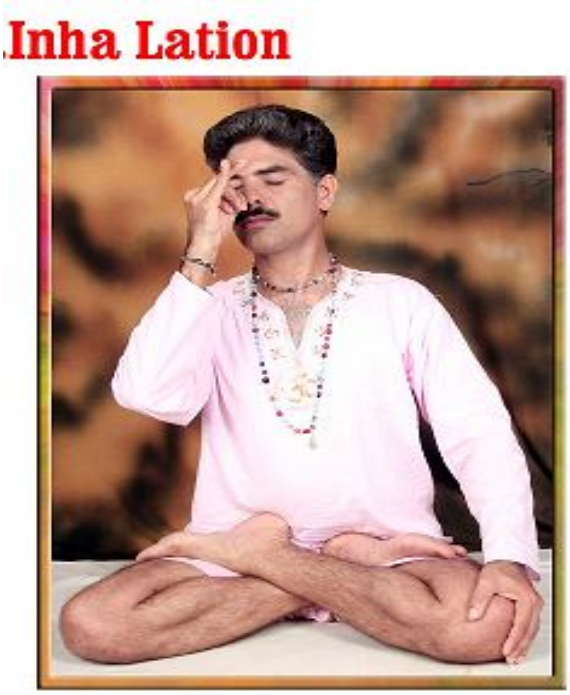

(R.H.)

चित्र क्र. 26

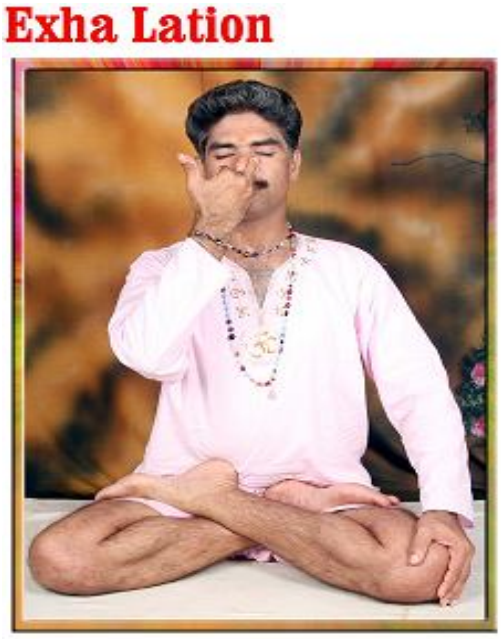

(L.H.)

चित्र क्र. 27

धीरे–धीरे बाहर निकाल देना चाहिये। देखे चित्र क्र. 26 एवं 27।

नोटः– बन्धों के माध्यम से प्राण का भीतर निरोध करना कुंभक (पूरक) कहलाता है। और इस निरोधित वायु (प्राण) को बाहर निकालना रेचक कहलाता है। इस प्रकार नाड़ी शोधन प्राणायाम स्वात्मारामजी की अपनी विशिष्टता है।

(2) सूर्य नाड़ी (पिंगला, दहिनी नासिका से) से प्राण वायु को धीरे–धीरे खींच कर उदर (पेट) को उससे भरना चाहिये। इसके बाद विधिवत् कुम्भक कर चन्द्रनाड़ी (इडा, बांयी नासिका सें) रेचक (बाहर) करना चाहिये।

(3) जिस नाड़ी (इडा या पिंगला) से प्राणवायु बाहर निकाले उसी से फिर प्राणवायु भीतर खींचकर धीरे–धीरे धारण कर उसे दूसरी नासिका से बाहर निकालना चाहिये। इसकी विधि यह है कि जिस नसिका से वायु बाहर निकाली जाय, उसी नसिका से वायु–भीतर खींचकर दूसरी नासिका से बाहर निकालना चाहिये। संक्षेप में इसकी विधि यह है कि जिस नसिका से वायु बाहर निकाली जाय, उसी नसिका से वायु भीतर खींचकर दूसरी नसिका से बाहर निकालना चाहिये।

(4) पद्मासन लगाकर योगी जब इडा नाड़ी –बायीं नासिका से प्राणवायु को भीतर (पेट के अन्दर खींचकर) भरता (पूरक) है उस नियमित (भीतर स्थित) वायु को दायीं नाड़ी (पिंगला) से बाहर निकालना चाहिये। यदि सूर्य नाड़ी–दाँयीं नासिका से उस वायु का पान (पूरक) करता है तो उस स्थिति में वायु को बायीं नासिका से बाहर निकाल देना चाहिये, इस तरह सूर्य और चन्द्र नाड़ी (दांयी–बांयी नासिका के अनुक्रम सें) विधि पूर्वक प्राणायाम का अभ्यास करते हुये साधक की नाड़ियां **तीन माह** में कुछ (निर्मल) या मलरहित हो जाती है।

(5) योगी (साधक) को दिन एवं रात की सम्पूर्ण अवधि (24 घन्टें में) चार बार क्रमशः प्रातः मध्यान्ह (दोपहर) सांयकाल एवं अर्धरात्रि के समय धीरे–धीरे (प्रत्येक बार में) 80–80 कुम्भक प्राणायाम करना चाहिये।

(6) प्राणायाम के अभ्यास के अनुसार इसे स्वात्माराम जी ने तीन श्रेणियों में विभाजित किया है।

(प) **कनिष्टः**– अल्पकालीन साधारण कोटि के प्राणायाम का अभ्यास करते समय योगी (साधक) के शरीर में **पसीना** आ जाता है।

(पप) **मध्यमः**– कनिष्ट से कुछ ज्यादा समय के प्राणायाम के अभ्यास से साधक को **कम्प** का अनुभव होता है।

(पपप) **उत्तमः**– मध्यम से कुछ ज्यादा समय के प्राणायाम के अभ्यास से साधक ब्रम्हरन्ध्र में प्राण स्थिर कर उत्तम स्थान प्राप्त कर सकने में सक्षम हो पाता है। इस कारण प्राणवायु को स्थिर करने का प्रयास सतत् करना चाहिये।

(7) प्राणायाम के अभ्यास से उत्पन्न स्वेद (पसीना) को शरीर में मलना चाहिये। जिस प्रकार तेल से मालिश की जाती है। इससे शरीर में दृढ़ता, शक्ति और लघुता (जड़ता का अभाव) स्फूर्ति पैदा होती है।

(8) प्राणायाम की साधना के दौरान अभ्यासी को दूध और घी आदि से युक्त (पौष्टिक) भोजन करना चाहिये। जब अभ्यास उत्तम कोटि में आ जाय तब ऐसे नियम पालन की आवश्यकता शेष नहीं रह जाती है।

(9) प्राणायाम धीरे–धीरे उसी प्रकार वश में हो पाता है जिस प्रकार वन के सिंह, हाथी, बाघ (पालने वाले के वश में) धीरे–धीरे वश में आते है। शीघ्रता करने पर पाँलने वाले को ही मार डालते है। ठीक इसी प्रकार प्राणायाम के) क्रमशः धीरे–धीरे अभ्यास से प्राणवायु वश में हो जाती है। शीघ्रता या नियम विरूद्ध प्राणायाम करने से साधक का प्राणन्त भी इससे संभव है। अतः इसका सदैव ध्यान रखना चाहिये।

(10) विधि पूर्वक किये गये प्राणयाम से सभी रोगों का शमन–नाश हो जाता है यदि अभ्यास में सही प्रक्रिया (आवश्यक बन्धादि तथा मिताहार अदि के घटकों आदि) का पालन नहीं किया जाता तो इस तरह के विधिरहित अभ्यास से सभी प्रकार के रोग उत्पन्न होने की संभावना रहती है सही विधि या प्रक्रिया के

बिना प्राणायाम करने से वायु कुपित हो उठती है और इससे हिक्का–हिचकी, खांसी, श्वास, कानों, आंखों और सिर में दर्द जैसे अनेक रोग उत्पन्न हो जाते है।

(11) विधिपूर्वक धीरे–धीरे वायु का रेचन करना आवश्यक है। वायु को यथाक्रम नासिका छिद्रों से निकालना चाहिये। इसी प्रकार युक्ति पूर्वक समान रूप से वायु को पेट में भरना (पूरक) चाहिये। सांवधानी रखना चाहिये कि ऐसा न होनें पावे की एक बार ज्यादा वायु ले दूसरी बार कम या और ज्यादा ले ले। साथ ही कुम्भक के साथ बन्ध का प्रयोग भी करना चाहिये। इस प्रक्रिया से सही सतत् अभ्यास हठ् सिद्ध प्राप्त करवाता है।

(12) विधि पूर्वक प्राणायाम से जब नाड़ियों का शोधन होता है तो नाड़ियां निर्मल हो जाती है। और योगी के शरीर में स्फूर्ति और चेहरे में कान्ति उत्पन्न हो जाती है। शरीर हल्का एवं लावण्य युक्त हो जाता है। यह निश्चित बात है कि नाड़ीशुद्धि के परिणाम स्वरूप वायु (प्राण) का भीतर देर तक रोके रख सकने की क्षमता बढ़ती है। इससे मन्दाग्नि नष्ट होकर जठराग्नि तीव्र होती है। धीरे–धीरे साधक आरोग्य लाभ कर नादश्रवण की ओर उन्मुख होता है।

7.5.2.3 नाड़ियों का बर्हिःशोधन (षट्कर्म)

नाड़ियों के बार्हिः शोधन का तात्पर्य स्थूल शरीर की शुद्धि से है। जिस साधक में भेद (चर्बी) और कफ (दोष) की अधिकता हो, उसे प्राणायाम के अभ्यास (अन्तः नाड़ी शोधन के पूर्व) के पूर्व नाड़ियों का बर्हिः शोधन करना आवश्यक हो जाता है। जिससे शरीर के त्रिदोष वात–पित्त–कफ एवं मोटापा का नियमन हो जाता है।

हठयोग प्रदीपिका में स्वात्माराम जी ने निम्नलिखित षट्कर्मो का विधान बतलाया है। ये निम्नलिखित है–

हठयोगप्रदीपिका में षट्कर्म

1	2	3	4	5	6
धौती	वास्ति	नेत्ति	त्राटक	नौली	कपालभाति

(सारणी क्र.–10)

जिस हठ्योग के साधक में मोटापा ज्यादा हो (चर्बी या मेद) और उसमें त्रिदोष (वात – पित –कफ) की अधिकता हों, ऐसे साधक को प्राणायाम के अभ्यास के पहले षट्कर्मो धौती, वास्ति, नेत्ति, त्राटक, नौली कपालभति आदि हठयोगिक बर्हिः शोधन (षट्कर्म) अवश्य कर लेना चाहिये। इससे शरीर का शोधन और नाड़ियों के मल की शुद्धि हो जाती है। जिस साधक में त्रिदोष, (वात–पित्त और कफ) तथा मेद समभाव में हों उन साधकों को इन षट्कर्मो को नहीं करना चाहिये।

धौतिर्वस्तिस्तथा नेतिस्त्राटकं नौलिकं तथा।
कपालभाँतिश्चैतानि षट्कर्माणि प्रचक्षते।।

(ह.प्र. 2/22)

इन षट्कर्मो धौति, वास्ति, नेति, त्राटक नौली एवं कपालभाति से शरीर का शोधन करने वाले ये षट्कर्म गुप्त रूप से साधन करने योग्य हैं, ये षट् कर्म विचित्र प्रभाव गुण करने वाले हैं, इसलिए श्रेष्ठ (योगाभ्यास में निपुण साधकों) योगियों द्वारा अत्यन्त पूज्यभाव से श्रद्धा युक्त होकर सावधानीपूर्वक करना चाहिये। इन षट्कर्मो का पृथक–पृथक विस्तृत वर्णन निम्नोक्त प्रकार से हैः–

DHAUTI चित्र

(1) धौति क्रियाः— हठ्योगप्रदीपिका के अनुसार धौति कर्म हेतु चार अंगुल चौड़े और पन्द्रह हाथ लम्बे वस्त्र को जल में अच्छी तरह भिगोकर गुरूर्निदिष्ट विधि से साधक धीरे–धीरे मुख से पूरा निगलकर पुनः धीरे–धीरे बाहर निकालना चाहिये। यही धौति कर्म है।

प्रयुक्त किया गया वस्त्र नवीन पतला (बारीक धागे से बना) और थोड़े–थोड़े गर्म जल में भिगोया होना चाहिये। प्रत्येक दिन थोड़ा–थोड़ा निगलते हुए ही वस्त्र को पूर्ण रूप से निगलने का अभ्यास करना चाहिये। जब तक वस्त्र धीरे–धीरे उदर में जाकर ठहर न जाय तब उसका पेट के अन्दर नौली सादृश्य धीरे– धीरे चालन कर बाहर निकालना चाहिये। देखें चित्र क्र. 28 एवं 29।

वस्त्र धौति

चित्र क्र. 28

धौति कर्म के लाभः— हठयोग प्रदीपिका के अनुसार धौति कर्म के प्रभाव से श्वास, प्लीहा (तिल्ली) और कुष्ठ आदि रोग एवं बीस प्रकार के कफजन्य रोग दूर होते हैं। इसके इन लाभों में किसी प्रकार का कोई संशयः नहीं होना चाहियें।

(2) वास्तिक्रियाः— हठयोगप्रदीपिका के अनुसार वस्ति कर्म के लिए नाभि (पेट का मध्यभाग) के स्तर तक साधक को जल में स्थित होकर (कनिष्ठिका अंगुली की मोटाई के बराबर प्रवेश योग्य) पोली (छेदवाली) बाँस की नली गुदा प्रदेश में प्रविष्ट कर उत्कटासन में स्थित होकर गुदा का आकुंञ्चन करना चाहिये, जल का उदर में संचालन कर उदर को धोना चाहिये यही स्वात्माराम निर्दिष्ट वास्तिकर्म है।

वास्तिकर्म के लाभः— वास्तिकर्म के प्रभाव के गुल्म, प्लीहा, जलोदर, वातपित्तकफ (त्रिदोष) से उत्पन्न सभी रोग नष्ट हो जाते हैं। जलवस्ति का अभ्यास करते रहने से धातु (रक्त, मांस, अस्थि, रस, शुक्र, मज्जा) पुष्ट होते हैं, इन्द्रियों कर्मेन्द्रियों (वाणी, हाथ, पाव, गुदा एवं लिंग ये पांच कर्मेन्द्रिय है) तथा ज्ञानेन्द्रियों (कान, नेत्र, त्वचा, जिव्हा, तथा नासिका) में स्फूर्ति और शक्ति आती है। अन्तः करण (मन, बुद्धि, चित्त, अहंकाररूप करण) में धुति (कान्ति या चमक) आती है जठरानल प्रदीप्ति होता है। खुलकर भूख लगती है, वात–पित्त–कफ से उत्पन्न समस्त दोषों, मदाग्नि (आदि विकारों) का शमन होता है।

(3) नेतिक्रियाः— हठयोग प्रदीपिका के अनुसार नेति कर्म के लिए एक बीता (करीब 9 इंच का) सूत्र (डोरा) लेकर उसे अच्छी तरह चिकना कर नासारन्ध्र में प्रविष्ट कर (साधक को) मुखद्वारा बाहर निकालना चाहिये।सूत्र उतना लम्बा लिया जा सकता है, जितना नेति–कर्म के लिए आवश्यक हो। इस क्रिया को साधक (योगी) नेति–कर्म कहते हैं। देखें चित्र क्र. 30।

(i) Sutra Neti

सूत्रनेति चित्र क्र. 30

नेतिकर्म के लाभः— नेति क्रिया करने से कपाल के विकारों का शोधन होता है। दिव्य दृष्टि प्राप्त होती है दृष्टि सूक्ष्म पदार्थो के निरीक्षण में समर्थ होती है। कंधे के ऊपर के भागों के (जत्रु) रोगों को यह तत्काल नष्ट करती है।

नोटः— जत्रु से तात्पर्य भुजा, सिर और कंधे को मिलाकर सन्धि स्थान, **जत्रु** कहा गया है।

(4) त्राटक क्रियाः— हठयोग प्रदीपिका के अनुसार त्राटक कर्म के लिए साधक (योगी) को एकाग्रचित (समाहित चित) होकर दृष्टि सूक्ष्मलक्ष्य (पदार्थ) पर स्थिर कर उसे तब तक देखते रहना चाहिए, जब तक नेत्रों में अश्रु की धारा न आ जाय। ऐसी स्मृति (आचार्यो मत्स्येन्द्रनाथ आदि योगीन्द्रों) इसे त्राटक कर्म कहते है। देखे चित्र क्र. 31।

Tratka

त्राटकक्रिया चित्र क्र. 31

त्राटक कर्म के लाभः— त्राटक कर्म नेत्रों के रोगों को नष्ट कर देता है तन्द्रा, आलस्य आदि कि लिए कपाटरूप है जिस तरह दरवाजा खुलने पर कमरे का अन्धकार दूर हो जाता है, उसी तरह त्राटक कर्म के अभ्यास से आलस्य नष्ट होता है। इसे स्वर्ण–पेटी के समान छिपाकर करना चाहिये। जिस तरह स्वर्ण की पेटी को गुप्त रखा जाता है कि कहीं कोई देख न लें उसी तरह आचरणहीन, प्रमादी, व्यक्ति के समक्ष इसका अभ्यास करने से लाभ के स्थान पर हानि हो सकती है। यह यत्न पूर्वक गोपनीय षट्कर्म है। इससे दिव्य दृष्टि भी प्राप्त होती है।

(5) नौलिक्रियाः— हठयोग प्रदीपिका के अनुसार नौलिकर्म में साधक को कन्धा सामने की ओर झुकाकर अपने पेट को दायें–बायें और तेज आवर्त वेग से (जिस प्रकार जल का भौंर बड़े वेग से आवर्तित–धूमता रहता उसी तरह के वेग से) इधर–उधर धुमाना चाहिऐ। सिद्धों द्वारा यह नौलिकर्म कहा गया है। देखें चित्र 32।

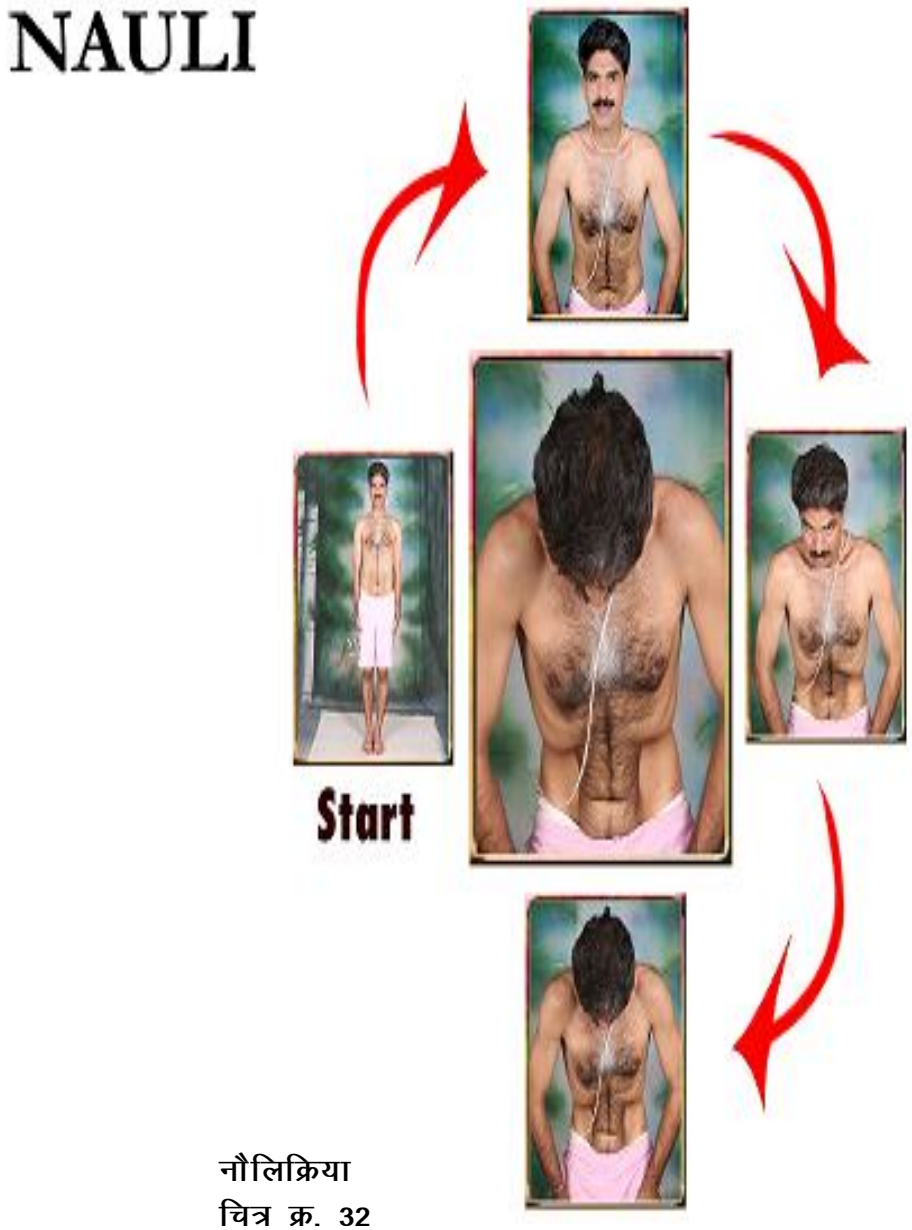

नौलिक्रिया
चित्र क्र. 32

नैलिकर्म के लाभः— नौलि हठयोग क्रिया में सर्वोत्तम क्रिया कही गयी है। इस नौलिक्रिया के अभ्यास से मन्दाग्नि नष्ट होती है, पाचन–शक्ति आनन्दायिनी होती है । अर्थात खाये अन्न का पूर्ण पाचन होता है।यह सभी **वात** विकार जनित रोगों को दूर करने में सक्षम है।

(6) कपालभाति क्रियाः— हठ्योग प्रदीपिका के अनुसार कपालभाति क्रिया षट्कर्मों में एक कर्म है। लोहार की धौंकनी के चलने के समान (वेगपूर्वक) रेचक और पूरक प्राणायाम अर्थात् एक नासा रन्ध्र से वायु बाहर निकालकर उसी से भीतर खींचना और दूसरे से बाहर निकाल कर उसी से भीतर खींचना ही कपालभाति कर्म के नाम से जाना जाता हैं। देखें चित्र क्र. 33।

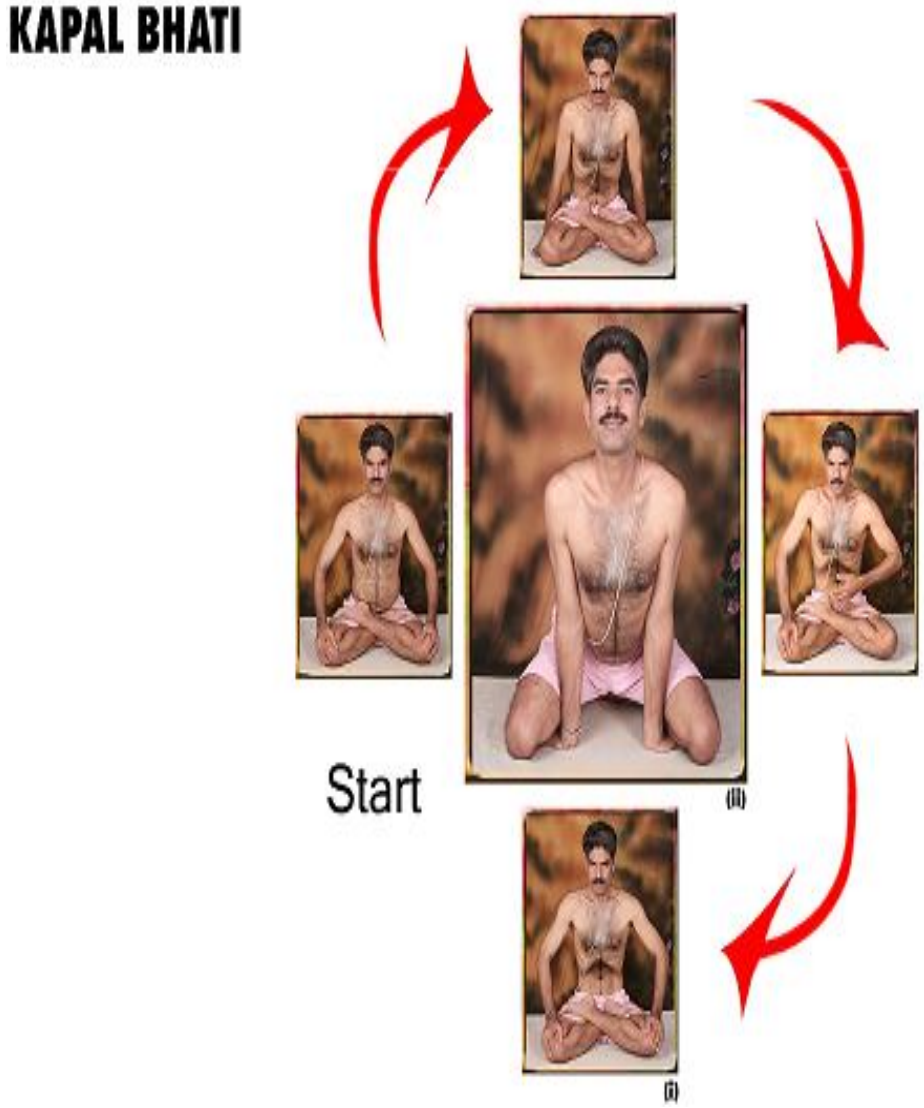

कपालभाति
चित्र क्र. 33

कपालभाति के लाभः— कपालभाति कफ के विकारों को नष्ट करने वाली क्रिया हैं। इस क्रिया से बीस प्रकार के कफ दोषों का निवारण किया जा सकता हैं।

(7) गजकरणी क्रियाः— हठयोग प्रदीपिका में षटकर्मों के अंतर्गत धौती क्रिया के अर्न्तभूत गजकरणी क्रिया को लिया गया हैं। स्वात्मारामजी के अनुसार अपानवायु को ऊपर कण्ठनाल में (शंखिनी—नाड़ी द्वारा जिसका मार्ग कण्ठ तक है) पहुँचा कर उदर में स्थिर (खाये—पीये हुए अन्न—जल आदि) पदार्थों का उद्‌वमन (साधन) करते हैं। उसके क्रमपूर्वक अभ्यास से नाड़ी—समूह का वशीभूत होना हठयोग के विद्वानों द्वारा गजकरणी क्रिया के रूप में जाना जाता हैं। देखें चित्र क्र. 34।

KUNJALA KRIYA

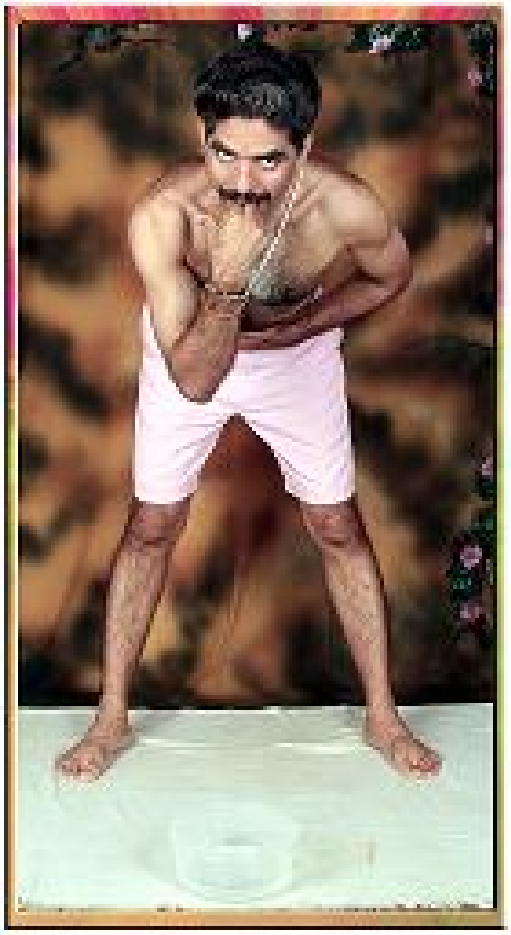

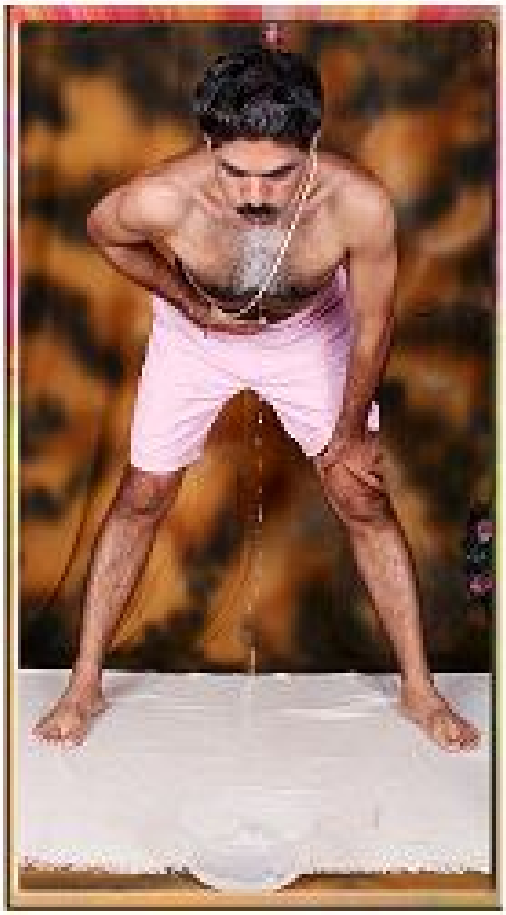

गजकरणी के लाभः— धौती क्रिया के लाभों के अनुसार ही गजकरणी क्रिया के लाभ होते हैं। इससे भी कफजन्य समस्त प्रकार के रोग शांत होते हैं। श्वास,प्लीहा (तिल्ली) कुष्ठ आदि रोग में यह प्रभावकारी शुद्धि क्रिया हैं।

बोध प्रश्न :

टिप्पणी क : अपने उत्तर नीचे दिये गये स्थान में लिखें।

ख : इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

प्रश्न 3. नाड़ियों के बर्हिशोधन हेतु हठप्रदीपिका में बताये विधान पर प्रकाश डालिये ?

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

गजकरणी क्रिया

चित्र क्र. 34

7.6 इकाई 23 हठयोग प्रदीपिका में प्राणायाम, मुद्रा–बन्ध ग्रन्थियाँ एवं कुण्डलिनी

7.6.1 प्राणायाम

हठयोग प्रदीपिका का या यो समझ सकते है कि हठयोग की मूल साधना का आधार प्राण साधना ही है **हं** और **ठं** को मिलाकर प्राण को सुषुम्ना में प्रवाहित करना ही हठयोग का लक्ष्य है।

ब्रह्म आदि देवता भी मृत्यू के भय से (शरीर को अजर–अमर रखने के लिये) प्राणायाम के अभ्यास में तत्पर रहते हैं, इस लिये प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिये। जब तक शरीर में प्राणवायु स्थिर है, जब जक चित्त (अन्तः करण की वृत्ति) समाहित–शान्त है, जब तक साधक की दृष्टि दोनों भौहों के बीच में भूमध्य में स्थिर है, तब तक मृत्यु का भय नहीं रहता। साधक दीर्घजीवी हो जाता है।

विधिपूर्वक अर्थात आसन् एवं बन्धों से युक्त होकर प्राणायाम का अभ्यास करने से नाड़ी–समूह (के मल) का शोधन होने पर प्राणवायु सुषुम्ना नाड़ी के मुख का भेदन कर उसमें सुखपूर्वक प्रविष्ट होती है। प्राणवायु का मध्यनाड़ी (सुषुम्ना) में संचार से मन स्थिर होता है और साधक की **उन्मनी** अवस्था हो जाती है। यहां मनोन्मनी शब्द उन्मनी का पर्याय है। उन्मनी अवस्था मन के स्थिर हो जाने पर अर्थात ध्यान करने योग्य वस्तु के आकार की वृत्तियों का प्रवाह हो जाता है वह जो मन का भलीप्रकार स्थिर हो जाना है उसको ही मनोन्मनी अवस्था कहते हैं। इस अवस्था की सिद्धि के लिए स्वात्माराम जी ने निम्नलिखित श्लोक उपदेशित करते हुऐ बतलाया है। कि **कुंभक के** भी आवान्तर भेद है।

तत्सिद्धये विद्यानज्ञश्चित्रान्कुर्वंति कुंभकात्।
विचित्र कुंभकाभ्यासाद्विचित्रां सिद्धिमाप्नुयात्।।

(ह.प्र. 2/43)

अर्थात उन्मनी अवस्था की सिद्धि के लिये अनेक प्रकार के अर्थात सूर्यभेदन आदि से भिन्न–भिन्न प्राणायामों को करते हैं, क्योंकि विचित्र कुंभक प्राणायामों के अभ्यास से विचित्र ही सिद्धि को प्राप्त हो जाता है।

7.6.1.1 कुंभक (प्राणायाम) के प्रकार

हठयोग प्रदीपिका कुंभक (प्राणायाम) को आठ प्रकारों में वर्गीकृत करती है।

कुंभक (प्राणायाम)

1	2	3	4	5	6	7	8
सूर्यभेदन	उज्जायी	सीत्कारी	शीतली	भस्त्रिका	भ्रामरी	मूर्च्छा	प्लाविनी

सारणी क्र. 11

सूर्यभेदनमुज्जायी सीत्कारी शीतली तथा।
भस्त्रिका भ्रामरी मूर्च्छा प्लाविनीत्यष्टकुंभकाः।। (ह.प्र. 2/44)

7.6.1.2 प्राणायाम एवं बन्ध की प्रक्रिया

हठ्योग प्रदीपिका के अनुसार प्राणायाम के अभ्यास की प्रक्रिया इस प्रकार है। प्राणायाम का अभ्यास करते समय **पूरक** (वायु को भीतर खींचने के बाद) के पूर्ण होने पर **जालन्धर बन्ध** और कुंभक (वायु को बाहर निकालते समय) के अन्त में **रेचक** के पूर्व **उड्डियान बन्ध** लगाना चाहिये।

त्रिबन्धों की प्रक्रिया

(प) मूलबन्ध :– नीचे के प्रदेश (गुदा प्रदेश) के आकुंचन (सिकोड़ने–फैलाने) से मूलबंध लगता है।

(पप) जालन्धर बन्ध :– कण्ठ को सिकोड़ कर हृदयादेश में लगाने से जालन्धर बन्ध लगता है।

(पपप) उड्डियान बन्ध :– नाभि प्रदेश को पीठ की ओर आकृष्ट कर पश्चिमतान से उड्डियान बन्ध लगता है।

इन बन्धों के अभ्यास से वायु (प्राण) बह्मनाड़ी (सुषुम्ना) में प्रवेश करता है। योगी (साधक) अपानवायु को ऊपर उठाते हुए अर्थात प्राणवायु को ऊपर खींच कर कंठ के नीचे हृदयप्रदेश की ओर ले जाना चाहिये। इससे योगी बुढ़ापा से छुटकारा पा जाता है और वह सोलह साल का युवक सदृश बन जाता है। उपरोक्त वर्णित प्राणायाम की प्रक्रिया एवं बन्धों की प्रक्रिया से निम्नलिखित आठ कुंभकों की प्रक्रिया एवं लाभ निम्नानुसार है।

(1) सूर्यभेदन कुंभक

हठयोग प्रदीपिका में सूर्यभेदन प्राणायाम (कुंभक) की निम्नलिखित प्रक्रिया बतलाई गई है। सर्वप्रथम सुखासन में बैठकर साधक (योगी) को धीरे–धीरे दाहिने नासारन्ध्र से बाहर स्थित वायु को भीतर खींचकर सम्पूर्ण शरीर (नख से शिख तक) में यथा शक्ति सुखपूर्वक धारण करना चाहिये तथा इस दौरान विधि अनुरूप बन्धों जालन्धरबंध का प्रयोग करते हुऐ बायें नासारन्ध्र से धीरे–धीरे रेचक (बाहर निकालना) करना चाहियें। यही **सूर्यभेदन कुंभक** कहलाता है। देखे चित्र क्र. 35।

Surya Bhedan

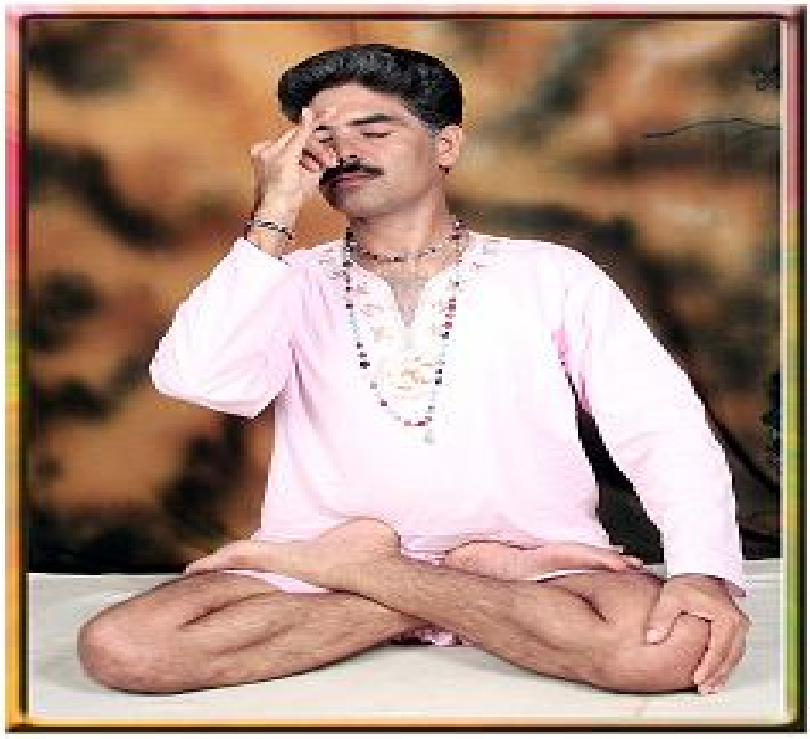

चित्र क्र. 35

सावधानियाँ

(प) वायु सदैव दाहिनी नासिका से पूरक की जाती है। तथा दहिनी नासिका से रेचक की जाती है।

(पप) पूरक और रेचक सदैव धीरे–धीरे करना चाहिये अन्यथा शरीर विकार ग्रस्त हो सकता है। तथा बल व स्फूर्ति कम हो सकते है।

(पपप) अभ्यास की अवधि धीरे–धीरे बढ़ना चाहिये तथा 80 प्राणायाम तक बढ़ाना चाहिये।

(पअ) अभ्यास, प्रातः मध्याह अपरान्ह एवं सायंकाल। चारबार अवश्य करना चाहिये।

(अ) पित्त प्रकृति तथा उष्णता ग्रस्त साधक इसे न करें।

लाभ

सूर्यभेदन प्राणायाम (कुंभक) बार–बार करना चाहिये। इससे कपाल (मस्तिष्क) के विकार नष्ट होते है, वातदोष नष्ट होता है और पेट में कीड़े से होने वाले दोष नष्ट होते हैं।

(2) उज्जायी कुंभक

हठयोग प्रदीपिका में उज्जायी कुम्भक की प्रक्रिया निम्नलिखित प्रकार से वर्णित की गई है। मुख को बन्दकर दोंनों नाड़ियों (इडा–बायी नासिका तथा पिगंला दाहिनी नसिका) से वायु को धीरे–धीरे भीतर खींचकर जिससे वह गले से हृदय प्रदेश तक शब्द करती हुई भर जाय, योगी को सूर्यभेदन कुम्भक का अभ्यास कर प्राणवायु को बायीं नाड़ी इड़ा (बायीं नसिका से) से बाहर निकाल देना चाहिये। यह कुम्भक सदैव करना चाहिये यहां तक कि चलते–फिरते, बैठे हुये सदा करते रहना चाहिये। देखे चित्र क्र. 36।

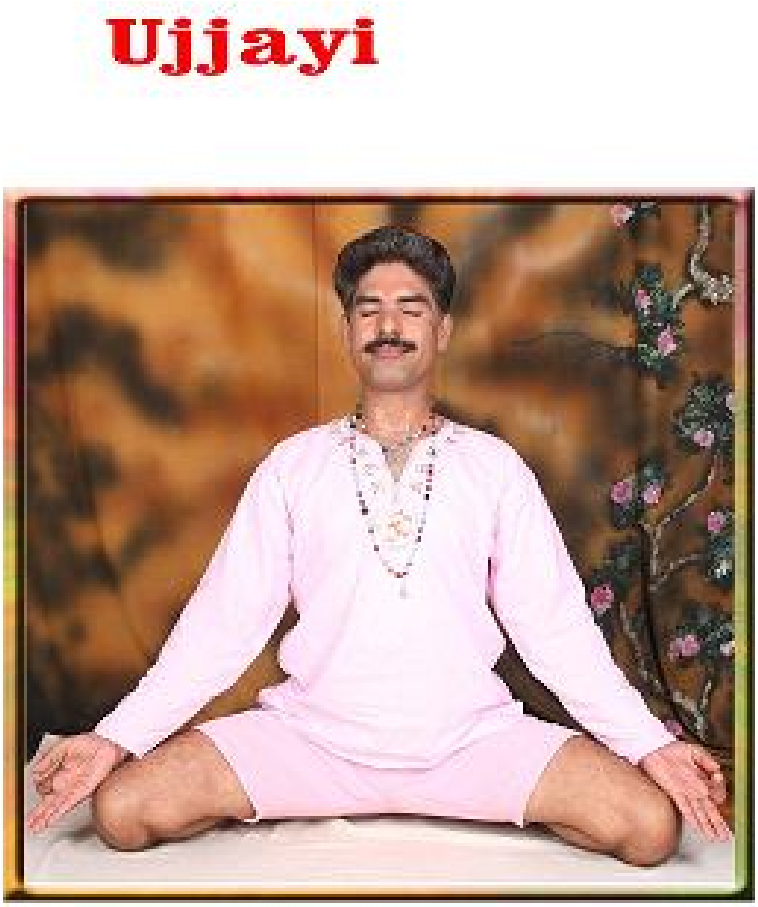

उज्जायी कुंभक

चित्र क्र. 36

सावधानियाँ

(प) निर्दिष्ट प्रक्रिया के अनुरूप सदैव करना चाहिये।

(पप) अत्याधिक चंचल स्थिति को छोड़कर सभी स्थितियों में हितकारी है।

लाभ

(प) उज्जायी प्राणायाम के अभ्यास से कंठ में होने वाले कफ के दोष (विकार) नष्ट हो जाते है।

(पप) जठराग्नि प्रदीप्त होती है।

(पपप) नाड़ी की शिराओं में स्थित सभी विकार, कफोदर रोग तथा धातु सम्बन्धी रोग भी नष्ट हो जाते हैं।

(3) सीत्कारी कुम्भक

सीत्कारी कुम्भक की प्रक्रिया मुख से सीत्कार (सी, सी की आवाज) करते हुए (मुख से ही–जीभ को थोड़ा दोनों होठों के बाहर स्थित कर) वायु को भीतर खींचकर (कुम्भक की विधि से) स्थिर करना चाहिये और नासिका छिद्र से बाहर निकालना चाहिये। देखे चित्र क्र. 37।

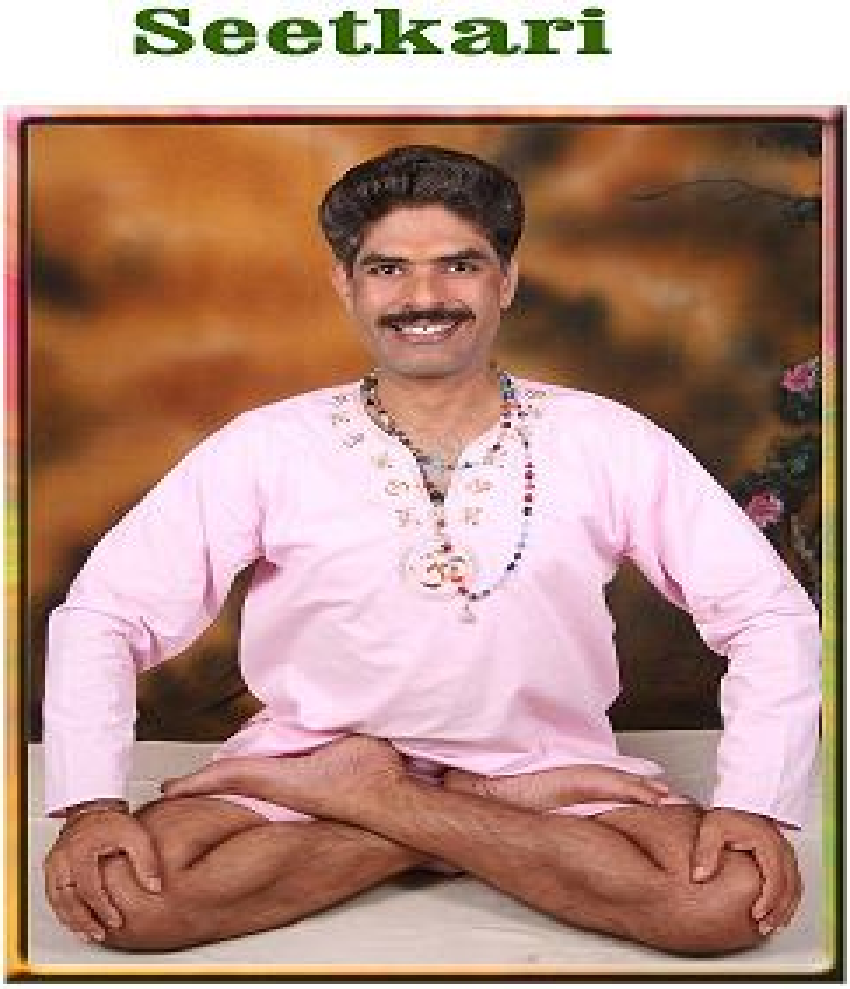

सीत्कारी कुंभक
चित्र क्र. 37

सावधानियाँ :–

(प) सीत्कारी कुम्भक का अभ्यास सिद्ध हो जाने पर भी वायु को कभी मुख से बाहर नहीं निकालना चाहिए, नासारन्ध्र से ही रेचक करना चाहिये अन्यथा बल क्षीण होता है।

(पप) जीभ को ओठों से बाहर निकालकर उसका अगला भाग दांतों की पंक्ति और ओठों से थोड़ा–थोड़ा दबाकर सीत्कार करते हुए वायु भीतर भरना चाहिये।

लाभः–

(प) इस सीत्कारी कुम्भक के अभ्यास से साधक (योगी) कामदेव के समान रूप लावण्य से युक्त हो जात है। वह योगी योगियों (साधकों) के समूह द्वारा सेवित (सम्मानित) होता है।

(पप) वह सृष्टि संहार करने में समर्थ होता है। तथा भूख–प्यास निद्रा और आलस्य से अभिभूत नहीं

होता है।

(पपप) साधक का बल बढ़ जाता है। तथा सभी शारीरिक उपद्रव शान्त हो जाते हैं, इसके अभ्यास से योगी योगीश्वर तक बन सकता है।

(4) शीतली कुम्भक

शीतली कुम्भक की प्रक्रिया में जिव्हा से वायु खींच कर सीत्कारी कुम्भक के समान विधि से कुम्भक का अभ्यास कर धीरे–धीरे नासारन्ध्रों से साधक (योगी को) वायु का रेचन (बाहर) करना चाहिये। देखे चित्र क्र. 38।

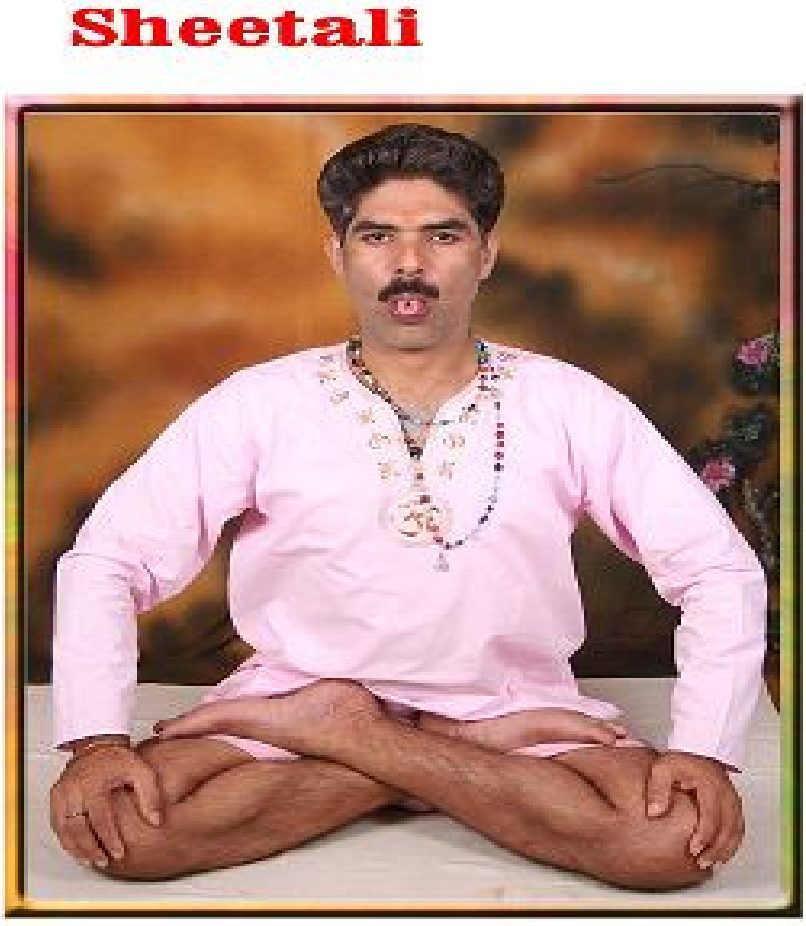

शीतली कुंभक
चित्र क्र. 38

सावधानियाँ

(प) होठों को सीटी बजाने की (पक्षी की चोंच) आकृति से धीरे–धीरे धैर्यपूर्वक जिव्हा के अग्रभाग से ही वायु को भीतर खींच कर स्थिर कर दोनों नासिका रन्ध्रों से बाहर निकालना चाहिये।

(पप) शीतकाल में इस कुम्भक का अभ्यास वर्जित है। कफ प्रकृति के साधक को इसका अभ्यास नहीं करना चाहिये।

लाभ

(प) शीतली कुम्भक, गुल्म, प्लीहा, ज्वर, पित्त के विकार, क्षुधा तृषा तथा समस्त सर्पादि के विषों तथा विकारों को दूर कर देता है।

(पप) इससे अजीर्ण ,पेचिस, अम्लपित्त ठीक होते है।

(5) भास्त्रिका कुम्भक

भस्त्रिका कुम्भक की प्रक्रिया को हठप्रदीपिका में स्वात्माराम जी ने आसन का वर्णन कर विस्तार से विधि को बतलाया है। भस्त्रिका कुम्भक पद्मासन लगाकर करना चाहिये, इस हेतु दोनों पैरों के तलवों को दोनों जाघों के ऊपर स्थापित करना पद्मासन है। यह सभी प्रकार के पापों को नष्ट करता है। ग्रीवा और पेट को एक सीध में रखते हुए साधक को पद्मासन में मुख को शांत (संयम) कर नसिका के किसी एक रन्ध्र से अन्दर उपस्थित वायु को बाहर निकाल देना चाहिये। देखे चित्र क्र. 39।

Bhastrika

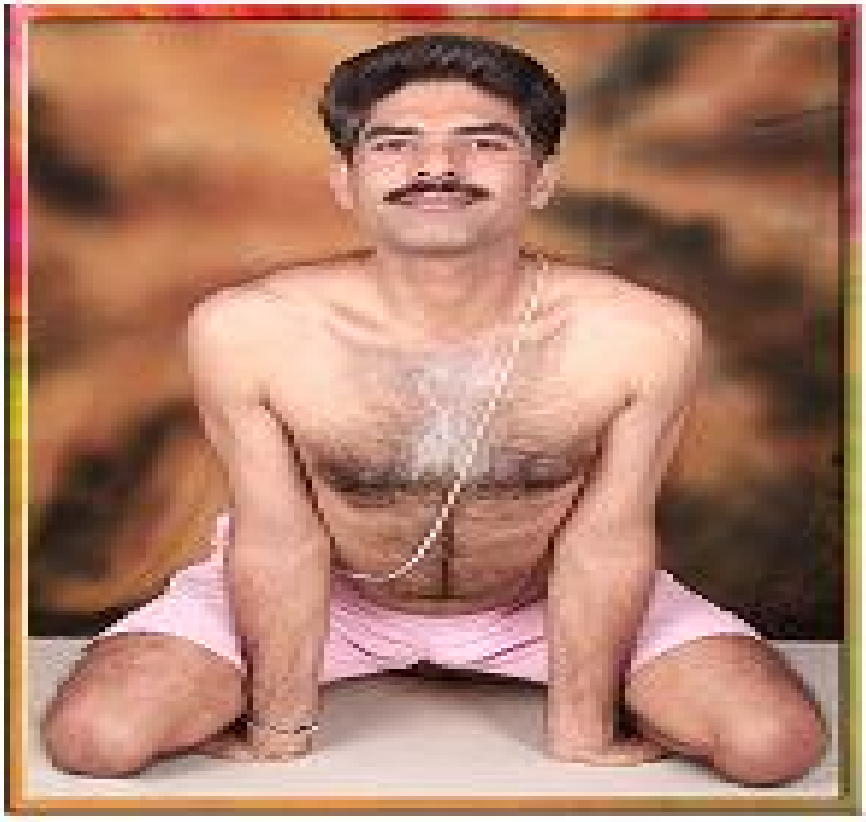

भास्त्रिका कुंभक
चित्र क्र. 39

इसके बाद शब्द करता हुआ प्राण (वायु) ह्दय, कंठ और कपाल तक लगे, तब वेगपूर्वक ह्दय–कमल तक वायु को भीतर भरना चाहिये। इस प्रक्रिया से बार–बार वायु को बाहर निकालना और भरना चाहिये। जिस तरह लोहार धौंकनी को चलाता है इसी प्रकार साधक को (योगाभ्यास में निपुण अभ्यासी) को अपने शरीर में स्थित वायु (पूरक रेचक द्वारा) का चालन करना चाहिये। जब **थकावट जान** पड़े तब **सूर्यनाड़ी** (दाहिने नासापुट) से वायु को भीतर भरना चाहिये। मध्यमा और तर्जनी अंगुलि को छोड़कर अन्य तीन अंगुलियों से नासिका को मध्य से दृढ़तापूर्वक पकड़ कर कुम्भक करना चाहिये और बायीं नासिका (इड़ा नाड़ी) से रेचक करना चाहिये।

सावधानियाँ

(प) भस्त्रिका प्राणायाम के चार भेद है– (1) मध्यम भस्त्रिका (2) वाम भस्त्रिका (3) दक्षिण भस्त्रिका (4) अनुलोम–विलोम भस्त्रिका प्रत्येक को विधि पूर्वक भेदो के अनुरूप अभ्यास करना चाहिये।

(पप) वाम भस्त्रिका एवं दक्षिण भस्त्रिका मिलाकर करने में पहले वाम भस्त्रिका करना चाहिये। एवं संख्या का ध्यान रखना चाहिये।

(पपप) कुम्भक के समय नाभि–स्थान के मणि पूरक चक्र पर ध्यान लगाया जाता है।

लाभ

(प) भस्त्रिका प्राणायाम से त्रिधातु–विकार (वात–पित्त–कफ दोष) से उत्पन्न रोग नष्ट होते है।

(पप) जठराग्नि प्रदीप्त होती है।

(पपप) कुण्डलिनी साधना हेतु यह एक श्रेष्ठ प्राणायाम है।

(6) भ्रामरी कुम्भक

भ्रामरी कुम्भक में बाहर से वायु को वेग से भौरे के गुजंन से समान शब्द करते हुए पूरक करना चाहिये, और इसके बाद भ्रमरी के नाद के समान मन्द–मन्द आवाज करते हुए रेचक करना चाहिये। इस क्रिया में साधक (योगी) के चित्र में आनन्द की अभिव्यक्ति होती है। चूंकि इस प्राणायाम में रेचक ज्यादा महत्वपूर्ण है इस कारण इसे भ्रामरी प्राणायाम कहते है। देखे चित्र क्र.–40।

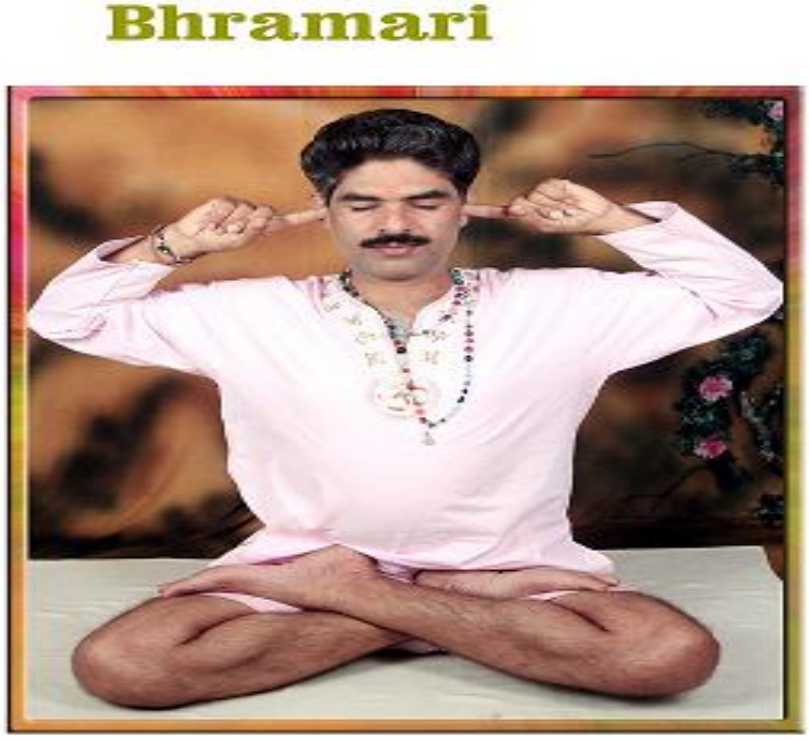

चित्र क्र. 40
भ्रामरी कुंभक

सावधानियाँ

(प) पूरक वेग पूर्वक एवं रेचक मन्द–मन्द करने का विशेष ध्यान रखना चाहिये।

(पप) रेचक के साथ मूल और उड्डियानबन्ध लगाना चाहिये। तथा पूरक के साथ जालन्धरबन्ध लगाना चाहिये।

लाभ

भ्रामरी कुम्भक से चित्त में योगाभ्यास के दौरान आनन्द की अभिव्यक्ति होती है चित्त शांत होता है। चित्त

के शांत होने से उच्चतर योग लक्ष्यों का साधन संभव होता है।

(7) मूर्च्छा कुम्भक

मूर्च्छा कुम्भक की प्रक्रिया में श्वास को अन्दर लेते हुये (पूरक) के अन्त में जालन्धर–बन्ध अच्छी तरह लगाकर धीरे–धीरे रेचन करना चाहिये। ऐसा करने पर चित्त बाह्य कारणों से ऐसा पृथक हो जाता है मानो साधक मूर्च्छा में चला गया हो। देखे चित्र क्र. 41।

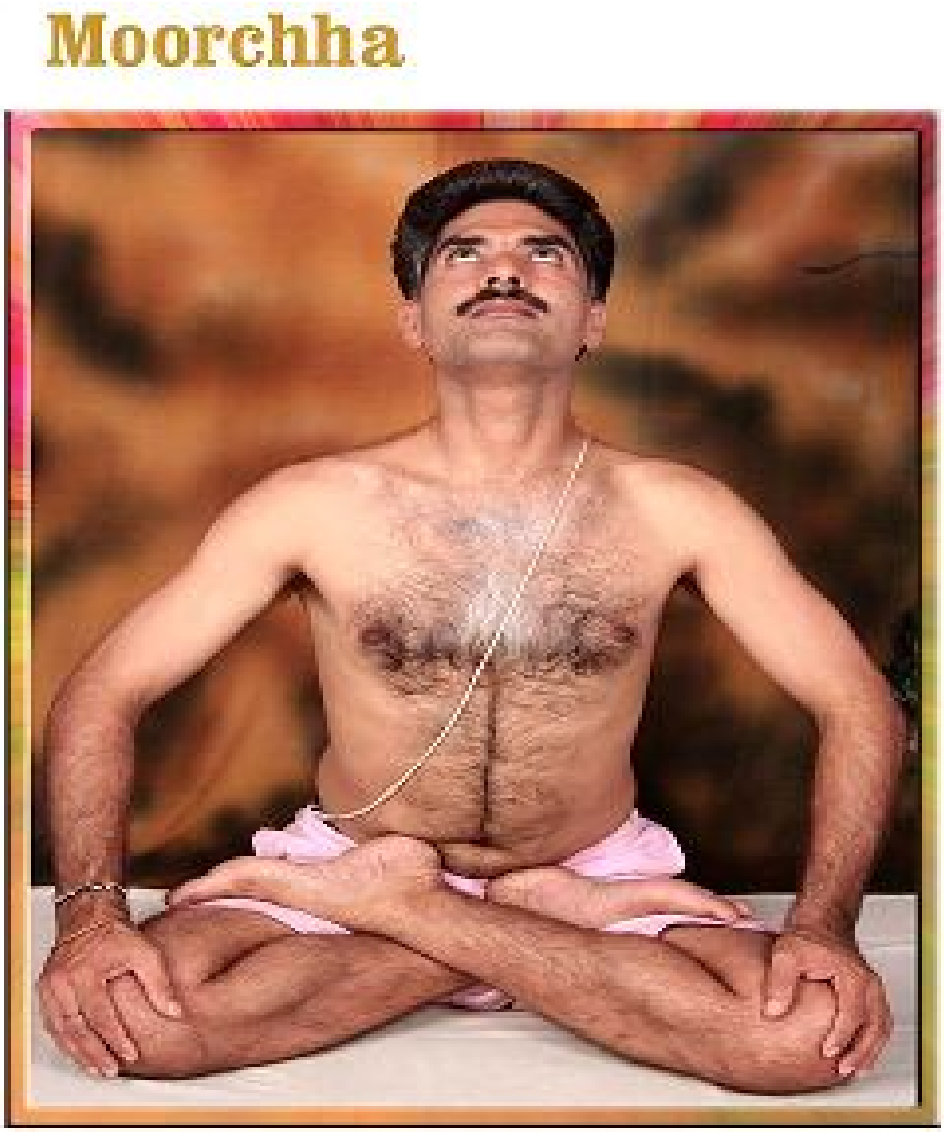

मूर्च्छा कुंभक

चित्र क्र. 41

सावधानियाँ

(प) पूरक एवं रेचक भ्रामरी प्राणायाम के सादृश्य करना चाहिये।

लाभ

(प) मूर्छा कुम्भक का अभ्यास सुख प्रदान करने वाला है।

(पप) मन को स्थिर (तन्मय) कर देता है।

(पपप) मूर्छा कुम्भक ध्येयाकार का दर्शन प्रदान करता है।

(8) प्लाविनी कुम्भक

प्लाविनी कुम्भक में शरीर के भीतर अधिक वायु को पूरक की प्रक्रिया द्वारा ठीक प्रकार से उदर में भरने पर शरीर इतना हल्का हो जाता है कि अगाध जल में भी कमल के पत्ते के समान सुखपूर्वक साधक (योगी) तैरता रहता है। देखे चित्र क्र. 42।

Plavini

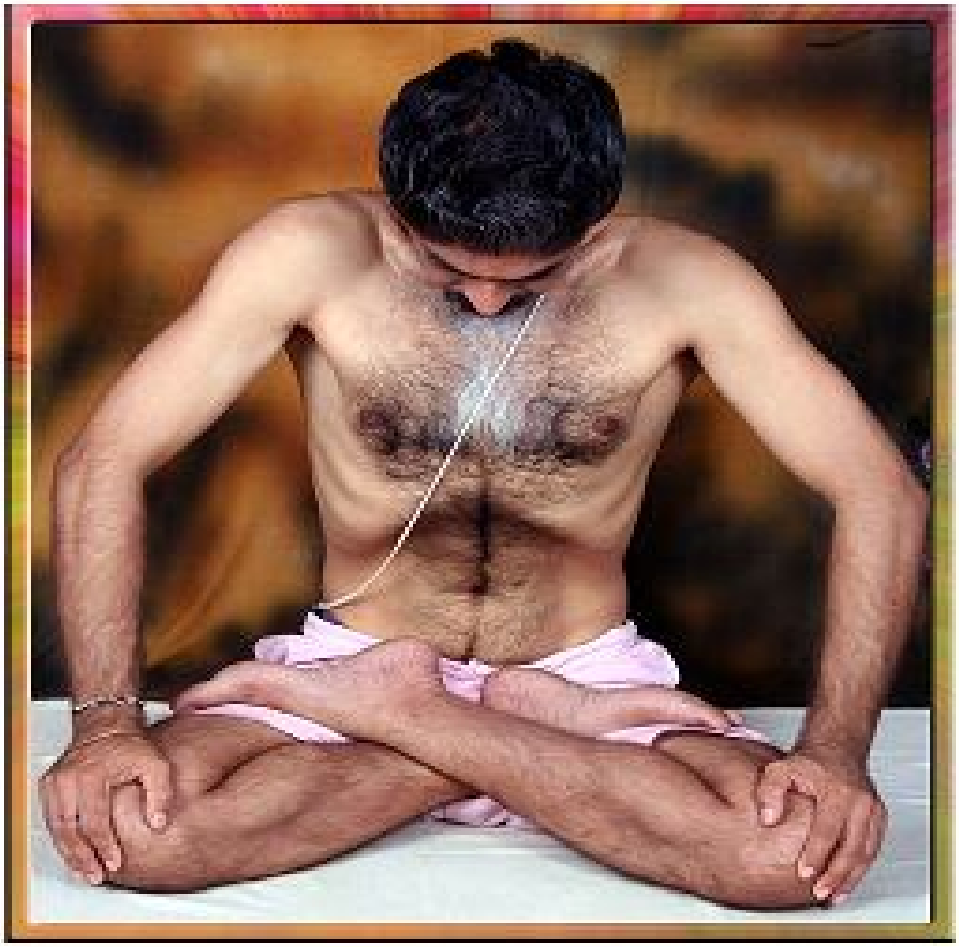

प्लाविनी कुंभक
चित्र क्र. 42

सावधानियाँ

(प) यथाविधि पद्मासन में बैठकर दोनों नासापुटों से वायु खींचना चाहिये।

(पप) नाभिस्थान पर मन को एकाग्र करना चाहिये।

लाभ

(प) इस कुम्भक से साधक का प्राण वायु पर अधिकार हो जाता है।

(पप) कब्ज का नाश हो जाता है।

(पपप) वीर्य पुष्ट होता है और रक्त शुद्ध होता है।

7.6.1.2 प्राणायाम के भेद

हठयोग प्रदीपिका में प्राणायाम के निम्नलिखित दो भेद बतलाये गये है।

(अ) प्रथम भेद में तीन प्रकार से वर्गीकृत किया गया है। देखे चित्र क्र. 43।

(1) पूरक प्राणायाम

(2) कुम्भक प्राणायाम

(3) रेचक प्राणायाम

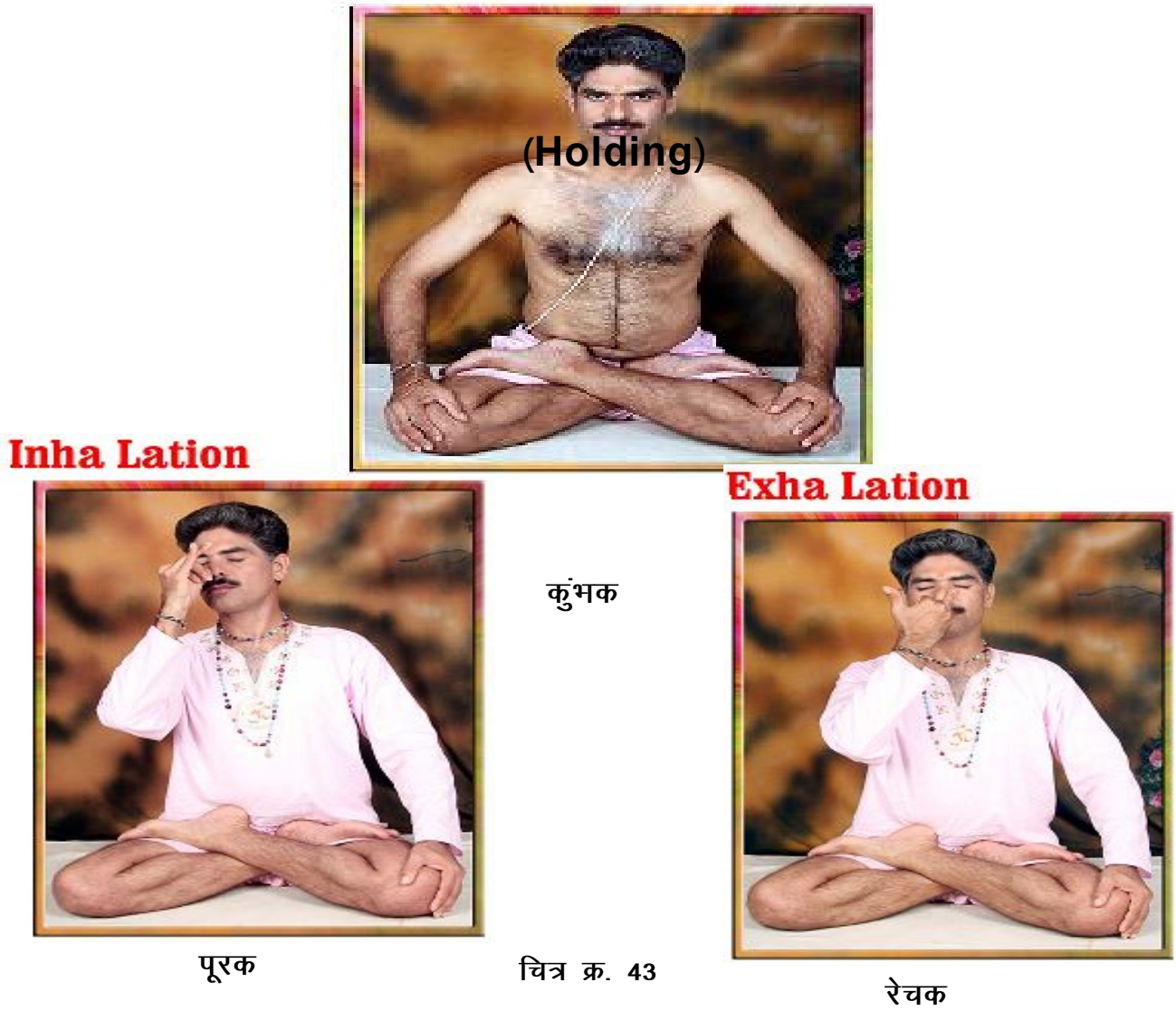

पूरक कुंभक रेचक

चित्र क्र. 43

(ब) द्वितीय भेद में दो प्रकार से वर्गीकृत किया गया है –

(1) सहित कुम्भक।

(2) केवल कुम्भक।

उपरोक्त भेदों को स्वात्माराम जी ने स्पष्ट करते हुये बतलाया है कि वायु का ग्रहण करना पूरक वायु का छोड़ना रेचक और वायु को धारण करना कुंभक है। वायु को धारण करने के भेद से कुंभक दो प्रकार

का है सहित और केवल है। जब तक कुंभक की सिद्धि नहीं हो जाती तब तक सहित कुंभक का अभ्यास करना चाहिये। सहित कुंभक तब तक करना चाहिये जब तक प्राणवायु सुषुम्ना नाड़ी में प्रविष्ट नहीं हो जाती है। सुषुम्ना में प्रविष्ट होने का लक्षण अद्‌भुत ध्वनि उन्पन्न होना है।

उपरोक्त प्रकार से कहे गये केवल कुम्भक की सिद्धि होने पर रेचक और पूरक स्वतः छूट जाते है इन दोनों का अभ्यास नहीं करना रहता है। केवल कुंभक सिद्धि होने पर इस त्रैलोक्य में कोई भी वस्तु अप्राप्य नही रह जाती है।

केवल कुंभक के अभ्यास से राजयोग सिद्ध होता है। तथा कुण्डलिनी का जागरण (बोध) होता है। **कुण्डलिनी बोध** से सुषुम्ना नाड़ी कफ आदि दोषों से मुक्त होकर प्राणवायु की गति उर्ध्वमुखी हो उठती है। इस प्रकार **हठयोग सिद्ध** होता है। इस प्रकार हठयोग की सिद्धि से राजयोग एवं राजयोग की सिद्धि के बिना हठयोग की सिद्धि का क्या अर्थ। अतः दोनों का सम्यक अभ्यास आपेक्षित है। कुंभक के अभ्यास से प्राणों को रोकने के बाद चित्त को आश्रयरहित–ब्रह्माकाररूप परम वैराग्य की वृत्ति में लीन करना चाहिये। इस स्थिति में राजयोगपद की प्राप्ति होती है।

7.6.1.3 हठयोग सिद्धि के लक्षण

हठयोग सिद्ध होने पर साधक के शरीर में उत्पन्न होने वाले लक्षण निम्नलिखित हैः–

(1) शरीर कृशकाय अर्थात दुबला पतला हो जाता है।

(2) मुख में प्रसन्नता का भाव सदैव बना रहता है।

(3) अर्न्तनाद का प्राकाट्य होता रहता है। जिससे चित्त एकाग्र होता है।

(4) दोनों नेत्रों में भावहीन निर्मलता होती है। अर्थात् निष्कलुष हो जाती है।

(5) साधक का शरीर पूर्ण निरोग होता है।

(6) बिन्दु अर्थात् अन्तः संवेदना पर विजय प्राप्त होती है, जठराग्नि बढ़ती है। नाड़िया शुद्ध हो जाती है।

उपरोक्त लक्षण उत्पन्न होने पर यह समझना चाहिये कि साधक को हठयोग की सिद्धि हो चुकी है।

7.6.2 मुद्रा–बन्ध

हठयोग प्रदीपिका के तृतीय उपदेश में सर्वप्रथम मुद्रा प्रकरण आता है। इस प्रकरण में कुल 130 श्लोक है। इस प्रकरण में उपदेशित किया गया है कि जिस प्रकार पर्वतों एवं वनों से युक्त पृथ्वी का आधार शेष नाग है। उसी प्रकार समस्त प्रकार के योगी तन्त्रों की आधारभूता कुण्डलिनी है। यहां योगतन्त्र का आशय योगाभ्यास के संदर्भ में आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि, मुद्रा और बन्ध आदि समस्त साधन प्रक्रियाओं से है। कुण्डलिनी के बोध (जागरण या ज्ञान) के बिना योग के समस्त उपाय अर्थहीन है। यद्यपि पृथ्वी (भूमि) एक ही है किन्तु **देशभेद** से भूमि के भेदों को ध्यान में रखा गया है।

जब गुरू की कृपा (अनुग्रह) से साधक में सोयी कुण्डलिनी (प्राणशक्ति) जाग्रत हो जाती है तब शरीरान्तर्गत विभिन्न देश जैसे– छः कमल दल अर्थात् षट्‌चक्र, और ग्रन्थित्रय का भेदन (खुलना) कुण्डलिनी द्वारा हो जाता है। जब तीनों ग्रथियां खुल जाती है। तब **शून्यपदवी** (सुषुम्ना नाड़ी) प्राण के लिए राजपथ (सुखपूर्वक गमन हेतु) हो जाती है। इस स्थिति में चित्त निरालम्ब (निर्विषय) हो जाता है और काल (मृत्यु) का भय दूर हो जाता है। सुषुम्ना नाड़ी को अनेक पर्यायों से जाना जाता है जैसे शून्यपदवी, ब्रह्मरंध्र, महामथ, श्मशान, शांभवी, और मध्यमार्ग। ये सव पर्यायवाची अर्थ कुण्डलनी के है इस प्रकार सभी प्रकार के प्रयत्न करके ब्रह्मद्वार–सुषुम्ना

के मुख के अग्रभाग में सोती हुई ईश्वरी (कुण्डलिनी) को जगाने के लिये साधक (योगी) को **मुद्राओं** का अच्छी तरह विधिपूर्वक अभ्यास करना चाहिये। ये मुद्रायें निम्नलिखित है– देखें सारणी क्रमांक 12

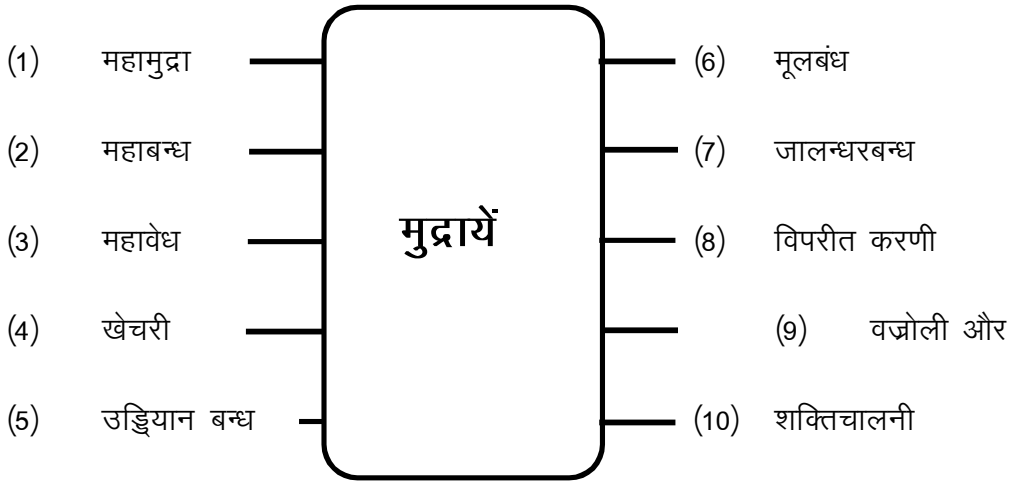

(सारणी क्र. 12)

इन मुद्राओं के अभ्यास से जरा (बुढ़ापा) और मृत्यु का भय समाप्त हो जाता है। इन मुद्राओं का कथन आदिनाथ (भगवान शिव) ने किया है, ये मुद्रायें अष्टसिद्धियों (दिव्य ऐश्वर्यो) को प्रदान (उत्पन्न) करती है। ये दसों मुद्रायें सिद्धों (कपिलादि मुनियों) को प्रिय है और देवताओं के लिए दुर्लभ है। ये सप्रयास गोपनीय है। इन मुद्राओं का जिक्र हर किसी से नहीं करना चाहिये। जैसे हम रत्नों से भरी पिटारी को गुप्त रखते है उसी प्रकार कुलवधु (कुण्डलिनी) के साथ संयोग की बात को किसी से न कहकर गुप्त रखना चाहिये।

(1) महामुद्रा

दस मुद्राओं में प्रथम मुद्रा महामुद्रा का वर्णन हठ्प्रदीपिका के अनुसार इस प्रकार है। बायें पैर के तलवे से योनिस्थान को अच्छी तरह दबाकर फिर दहिना पैर सामने फैलाते हुऐ दोनों हाथों को भूमि पर रखकर दृढ़ता के साथ स्थित होकर जालन्धर बन्ध (कंठ में) लगाकर वायु को सुषुम्ना नाड़ी में प्रवेश करवाना (धारण) चाहिये। जैसे फन उठाकर (कुण्डली लगाकर) बैठा सर्प दण्ड से आहत होकर दण्ड के आकार का हो जाता है इसी तरह कुण्डलनी शक्ति सरल सीधी हो जाती है। और प्राण का इड़ा–पिगंला नाड़ियों से वियोग होने पर (अर्थात सुषुम्ना में प्राण प्रवाहित मूर्छावास्था (मरणासन्न) हो जाती है। इस अवस्था में इंडा और पिंगला जग्रताअवस्था में हो जाती है। इसके बाद अन्दर स्थित वायु का धीरे–धीरे रेचन करना चाहिये। वेग से वायु नहीं निकालना चाहियें। ऐसी विधि महा सिद्धों द्वारा वर्णित की गई है।

महामुद्रा का अभ्यास क्रम दो प्रकार से है–

(प) महामुद्रा में प्रथम बायें अंग (बायीं नसिका) से अभ्यास करना चाहिये। इस हेतु बायें पैर से सीवनी नाड़ी दबाकर दाहिने पैर को फैलाया जाता है तब इसे **चन्द्रा** का अभ्यास कहते है।

(पप) सूर्या के अभ्यास के लिये दाहिने पैर की ऐड़ी सीवनी में दबाकर बायें पैर को फैलाते है इस प्रकार के अभ्यास को **सूर्या** का अभ्यास कहा जाता है। पहले बायीं नसिका से फिर दाहिनी नासिका

से कुंभक प्राणायाम करके इस महामुद्रा का अभ्यास करते है। देखे चित्र क्र. 44।

1. Maha Mudra

चित्र क्र. 44

लाभ

पंच महाक्लेश (अविधा, अस्मिता, राग–द्वेष, अभिनिवेश) अदि तथा मरण आदि (बुढ़ापा मृत्यु) दोष इससे नष्ट हो जाते है। इस कारण विद्वान पण्डितों द्वारा इसे महामुद्रा कहा गया है। इसके अभ्यास से पथ्यापथ्य के ग्रहण कर विचार नहीं रखना पड़ता स्वयं ही सभी प्रकार के नीरस रस तक पच जाते है। तथा दुर्जर अन्न भी विषक्त न होकर अमृत क समान पच जाते है। इससे क्षय, कुष्ठ, उदावर्त, गुल्म, अपच, आदि रोगों का नाश हो जाता है। यह महामुद्रा बड़ी सिद्धिदायक है। इससे **अणिमा, गरिमा, लछिमा** आदि सिद्धियाँ प्राप्त होती

है। इसका अभ्यास गोपनीय है।

(2) महाबन्ध मुद्रा

इस मुद्रा के अभ्यासी को बायें पैर की एड़ी को योनि स्थान–गुदा और मेढ़ के बीच के भाग पर लगाना चाहिये। बायीं जांघ पर दाहिना पैर रख कर वायु को भीतर खींचकर ठोढ़ी को हद्रय स्थान पर रखकर तथा योनि को अकुंचित (सिकोड़कर) कर मूलबन्ध लगाकर मन को मध्यनाड़ी (सुषुम्ना) में लगाना चाहिये। इसके बाद यथाशक्ति कुंभक कर वायु का धीरे–धीरे रेचन करना चाहिये। बाये अंग से अभ्यास करने के बाद दाहिने अंग से अभ्यास करना चाहिये दोनों अंगों से बराबर–बराबर संख्या में अभ्यास करना चाहिये इसकी भी दो विधियां है।

(प) **विधिः**– प्रथम विधि में बायें पैर की एड़ी को गुदा और लिंग के मध्य–भाग में जमा कर बायीं जांघ पर दायें पैर को रखकर समसूत्र होकर बायें अथवा जिस नासारन्ध्र से वायु चल रही हो, उससे पूरक कर जालन्धर बन्ध लगाना चाहिये। फिर मूलाद्वार से वायु का आकर्षण कर मूलबन्ध लगाना चाहिये। मन को मध्यनाड़ी में लगाकर यथाशक्ति कुंभक करना चाहिये।

(पप) दूसरी विधि में पद्मासन या सिद्धासन में बैठकर नाभिस्थान में बैठकर गुह्य प्रदेश सिकोड़ कर अपान–वायु को नाभिस्थान समान वायु से मिलाकर और हृदयस्थ प्राणवायु का नीचे की ओर आकर्षण कर

चित्र क्र. 45

लाभ

यह महाबन्ध मृत्यु के पाश से भी छुड़ाने की समर्थ रखता है। यह त्रिबन्धों (जालन्धर, उड्डयान और मूलबन्ध) का संगम है, यह महाबन्ध त्रिवेणी (प्रयाग) को प्राप्त कराने वाला तथा दोनों भौहों के मध्य स्थित शिवस्थान (अज्ञाचक्र या केदार स्थान) में मन को स्थित करने वाला है। जिस प्रकार रूपलावण्य से युक्त (युवती) स्त्री पुरूष के बिना निष्फल है उसी तरह महा–मुद्रा और महाबन्ध दोनों महावेध के अभ्यास के बिना व्यर्थ है।

सभी 72 हजार नाड़ियों में (सुषुम्ना को छोड़कर) वायु की उर्ध्व गति का निरोधक है। जिससे नाड़ीजाल का बन्धन होता है।, यही जालन्धर बन्ध है, यही महासिद्धि प्रदायक महाबन्ध का लाभ है।

(3) महावेध मुद्रा

महावेध मुद्रा में सर्वप्रथम महाबन्ध लगाकर तथा चित्त को एकाग्र कर **जालन्धरबन्ध** लगाकर वायु (प्राण) को पूरक द्वारा भीतर खींचकर तथा कुंभक द्वारा स्थिर कर कूल्हों को पृथ्वी पर स्थित दोनों होथों से थाम कर धीरे–धीरे ताडित करना चाहिये, इससे प्राणवायु मध्य नाड़ी (सुषुम्ना) में चलने लगती है। तब चन्द्र, सूर्य और अग्नि (सुषुम्ना) के सम्बन्ध से अमृतत्व की प्राप्ति होती है। जब मूर्च्छा (मरणावस्था) उत्पन्न होने लगे तब वायु का रेचन करना चाहिये। इस प्रक्रिया को ही महावेध कहते है। इसकी एक अन्य और विधि भी है।

लाभ

इसका अभ्यास करने से महासिद्धियों की प्राप्ति संभव है। इससे त्वचा की झुर्रियाँ नष्ट हो जाती है। तथा त्वचा कन्तिमय हो जाती है। सफेद बाल काले होने लगते हैं और शरीर की दुर्बलता (कम्पन) नष्ट हो जाता है। श्रेष्ठ योगी महावेध का अभ्यास करते है।

(4) खेचरी मुद्रा (व्योमचक्र साधन)

खेचरी मुद्रा में कपाल के मध्य वाले कुहरे (सुषिर) या छिद्र में जीभ उलटी प्रविष्ट कर साधक को दोनों भौंहो के मध्य दृष्टि स्थित रखना चाहिये। यही खेचरी मुद्रा का लक्षण है। इस मुद्रा के अभ्यास हेतु जीव्हा का छेदन, चालन और दोहन से विकास तब तक बढ़ाते रहना चाहिये जब तक जीभ भौंहो के मध्य का स्पर्श न कर ले। ऐसा करने पर खेचरी मुद्रा सिद्ध होती है। जिव्हा के छेदन हेतु सेहुड़ के पत्ते के समान तेज धारवाले, स्वच्छ और चिकने शस्त्र को लेकर उससे जिव्हामूल की नाड़ी का रोममात्र (बहुत महीन) छेदन करना चाहिये और उसके बाद उस घाव में पिसें सेंधानमक और हरड के चूर्ण से अच्छी तरह घिसना चाहिये। सात दिन तक ऐसा करते रहने पर आठवें दिन पुनः इसे दोहराते हुए छः माह तक अभ्यास से कपाल गुहर तक इसकी लम्बाई हो जाती है। तथा जिव्हा को उलट कर त्रिपथ (इडा पिंगला, सुषुम्ना वाले स्थान) पर लगाने से खेचरी मुद्रा या व्योमचक्र साधन कहा जाता है। चित्त भ्रूमध्य पर और जिव्हा भी वही पर ठहर जाती है उसे ही खेचरी मुद्रा कहते है ऐसा सिद्धों ने बतलाया है।

लाभ

(1) खेचरी मुद्रा का साधन जो साधक आधे क्षण तक भी साध लेता है, वह सर्प विच्छू आदि सभी विषों त्रिदोषों से उत्पन्न रोगों से मृत्यु और बुढ़ापा आदि से मुक्त हो जाता है। जो खेचरी मुद्रा को जानता है उसे रोग, मृत्यु, प्यास और मूर्च्छा नहीं सताती। वह साधक निरोगी रहता है उसे शुभ–अशुभ कर्मफल का बन्धन नहीं सताता है उसे मृत्यु की बाधा नहीं होती उसे इच्छा मृत्यु होती है।

(2) खेचरी मुद्रा से काम पर विजय प्राप्त होती है। तथा पन्द्रह दिन तक खेचरी मुद्रा के पान से मृत्यु पर विजय प्राप्त की जा सकती है।

(3) जो साधक नित्य खेचरी मुद्रा करता है वह विष एवं रोगों से प्रभावहीन हो जाता है।

Khechari Mudra

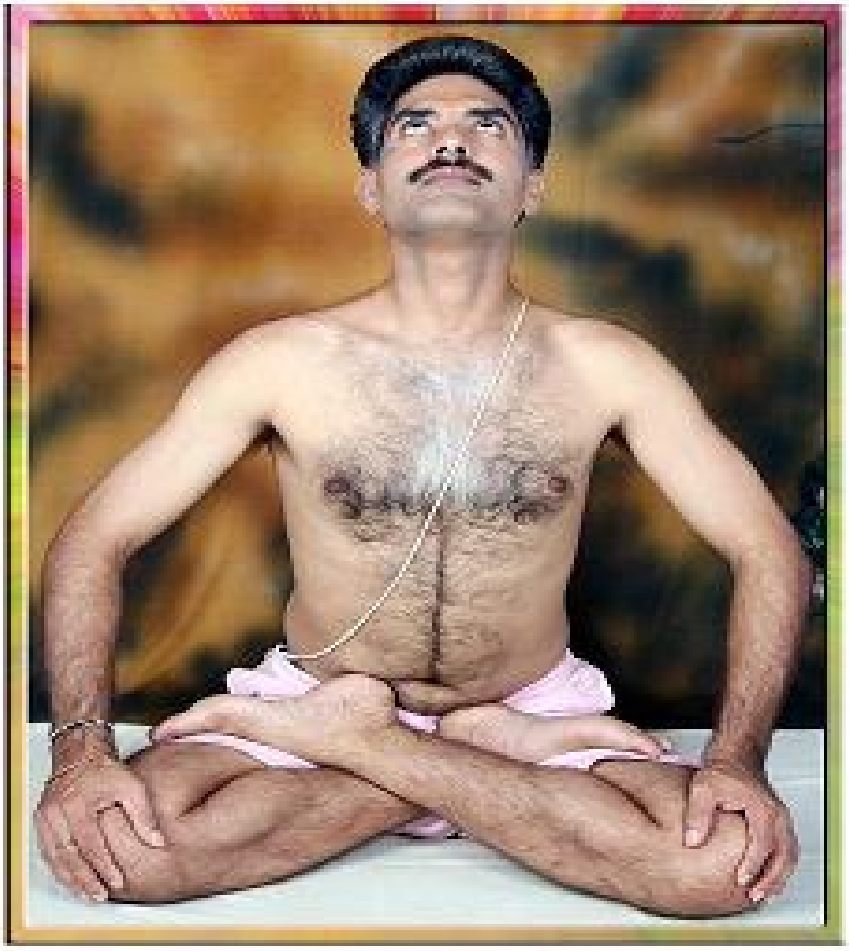

चित्र क्र. 46

(4) नित्य खेचरी साधना योगी को कुलीन योगी बना देती है। तथा यह मुद्रा महापातक है।

(5) सभी रसों का रसास्वादन वाली जिव्हा यदि खेचरी मुद्राओं में रहे तो सभी व्याधियों शास्त्र प्रहारों समस्त सिद्धियों, तथा सौन्दर्य की प्राप्ति होती है।

(6) योगी (साधक) को खेचरी मुद्रा दीर्घ जीवन प्रदान करती है।

(5) उड्डियानबन्ध मुद्रा

उड्डीयन बन्ध में जिस बन्ध से बधा हुआ प्राण उठकर (स्वतः उर्ध्वमुख होकर) सुषुम्ना में पहुंच जाता है, उसे योगियों द्वारा उड्डियान बन्ध कहा गया है जिस प्रकार आकाश में एक स्तर पर पक्षी निरन्तर उड़ने लगता है, ठीक वैसे ही प्राण सुषुम्ना नाड़ी से देहावकाश (ब्रह्मरन्ध्र) में उड़ता है और ऊपर चढ़ता जाता है, इसी कारण यह उड्डियानबन्ध कहा जाता है।

इसकी विधि यह है कि नाभि के ऊपर नीचे उदर में पीछे की ओर इस तरह आकर्षण करे कि दोनों भाग पीछे पीठ तक पहुंच जाय तो यह उड्डियनबन्ध मृत्यु रूपी हाथी के लिए साक्षांत सिंह के समान है।

श्रेष्ठ गुरू से यह बन्ध सदा स्वाभाविक कहा गया है।

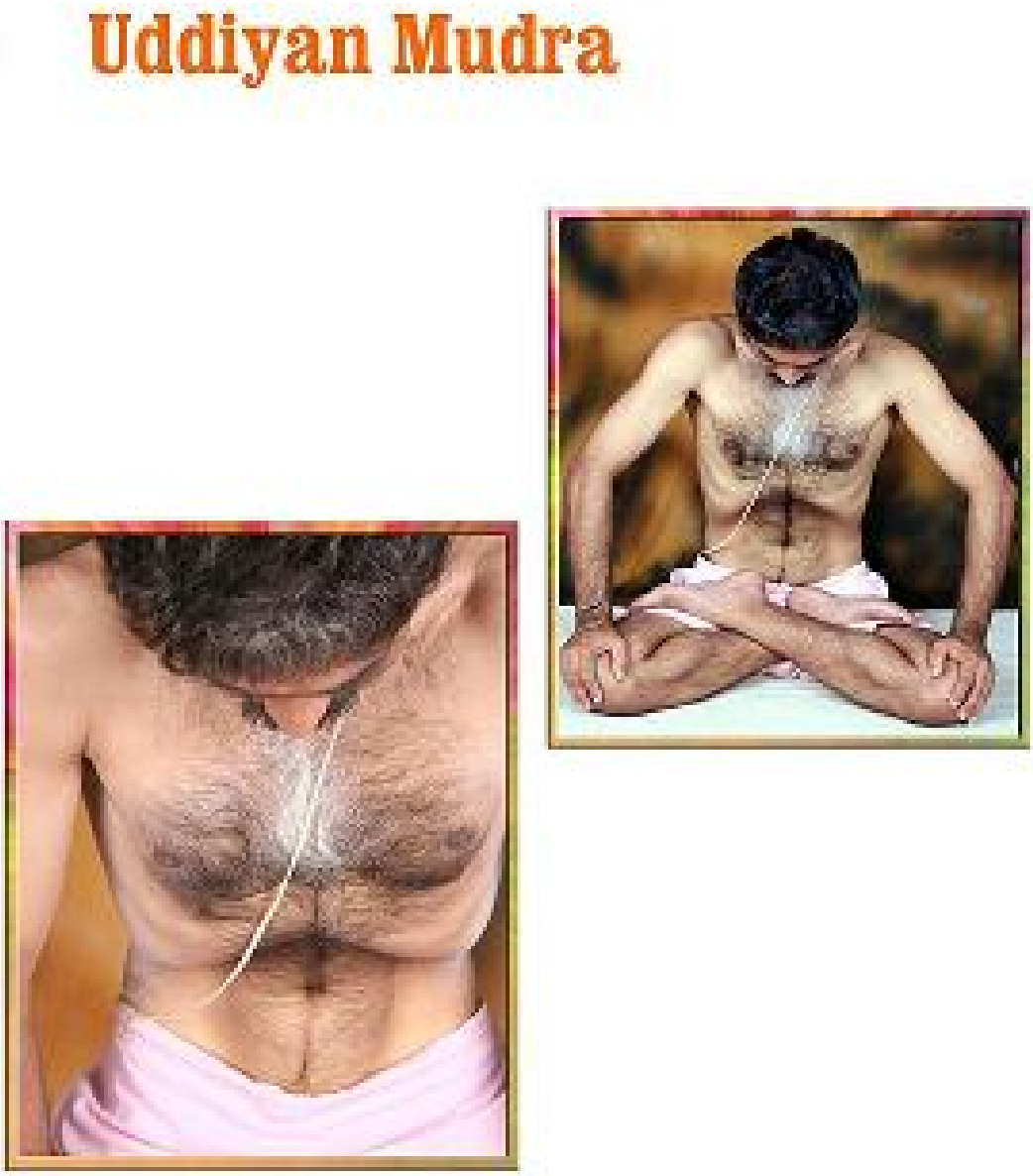

चित्र क्र. 47

लाभ

(प) नित्य अभ्यासी वृद्धा अवस्था को नहीं प्राप्त कर सदैव जवान बना रहता है।

(पप) छः माह के अभ्यास से मृत्यु वश में हो जाती है। एवं दीर्घ जीवन मिलता है।

(पपप) इसके सिद्ध होने पर अनायास (सहज ही) समाधि प्राप्त हो जाती है।

(6) मूलबन्ध मुद्रा

मूल बन्ध मुद्रा में साधक योनिस्थान (गुदा और मढ़ के मध्य भाग को किसी भी एक पैर की ऐड़ी से दबाकर गुदा को सिकोड़ने और फैलाने तथा अपान वायु को ऊपर की ओर आकृष्ट करने से मूलबन्ध मुद्रा कही जाती है। इसमें शरीर के नीचे गतिशील अपान वायु को (गुदा के संकुचन आंकुच्चन करते हुए) साधक

बलपूर्वक ऊपर की ओर प्राणों को सुषुम्ना में चढ़ाने का प्रयास करता है इस क्रिया को ही मूलबंध कहते है।

मूलबन्ध मुद्रा

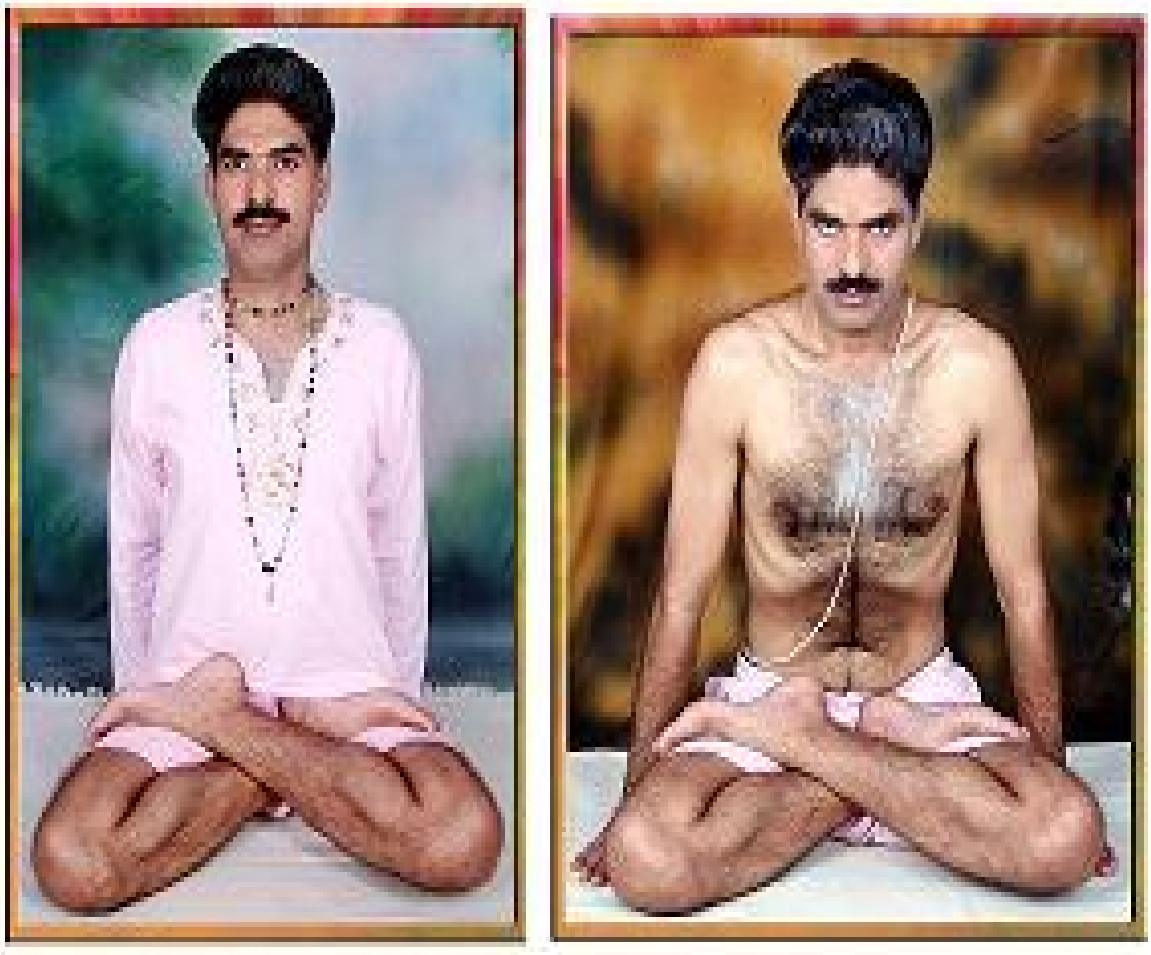

चित्र क्र. 48

लाभ

(प) प्राण और अपान वायु, नाद और बिन्दु मूलबन्ध के द्वारा एकता को प्राप्त होकर योग सिद्धि को प्राप्त करते है।

(पप) इससे काया कल्प होकर वृद्ध भी युवा बन जाता है।

(पपप) इसके अभ्यास से निश्चित ही मारूत सिद्धि होती है।

(7) जालन्धर बन्ध मुद्रा

जालन्धर बन्ध मुद्रा में गले (कण्ठ) को सिकोड़ (संकुचित) करके ठोड़ी को दृढ़तापूर्वक (वज्ञ के समीप करीब 4 अंगुल पर) में लगाते है।

साधक को मूलाधार को अच्छी तरह संकुचित प्रसारित करके उड्डियान बन्ध लगाना चाहिये और

प्राण को पश्चिम मार्ग (सुषुम्ना) में प्रविष्ट करना चाहिये। ऐसा करने से प्राण स्थिर होते है।

Jalandhar Bandha Mudra

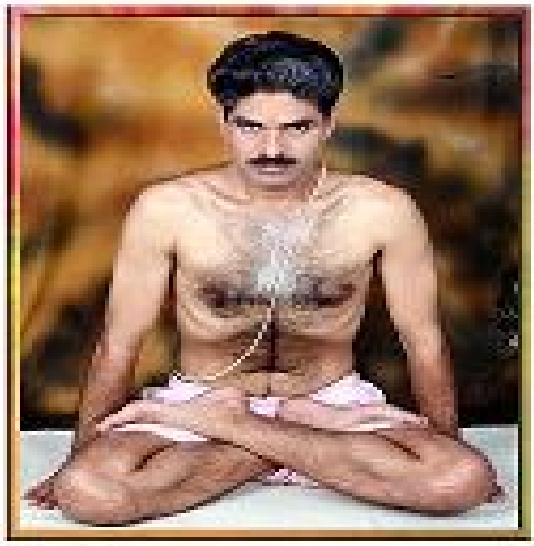

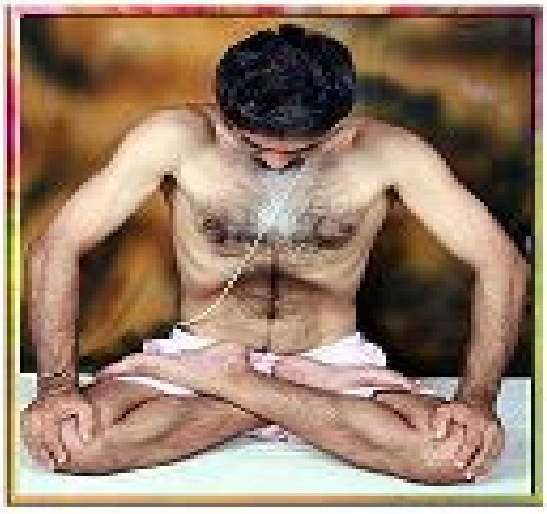

चित्र क्र. 49

लाभ

(प) यहां जरा (बुढ़ापा) और मृत्यु के भय को नष्ट करने वाला है।

(पप) यह नाड़ियों के समूह और नीचे की ओर गिरने वाले कपाल कुहर के जल–अमृत को बाँधता है, इस कारण गले के रोग–विकारादि दूर–दूर होते है।

(पपप) जालन्धरबन्ध के अभ्यास से अमृत अग्नि (जठरानल) में नहीं गिरता और न ही वायु ही दूषित (कुपित) होती है।

(पअ) यह बन्ध विशुद्धि चक्र (मध्यचक्र या कंठ चक्र) का प्रतिबन्ध का है जिससे इड़ा–पिंगला का स्तम्भन होता है। और अमृत नीचे नहीं गिरता।

(अ) प्राण स्थिर होता है। प्राण के लय होने पर मृत्यु का भय वृद्धा वस्था एवं अनेक रोग जैसे बाल

झड़ना पकना आदि रूक जाते है। इन तीन बन्धों का अभ्यास योग साधना में श्रेष्ट माना जाता है।

(8) विपरीत करणी मुद्रा

विपरीत करणी मुद्रा का उद्देश्य दिव्य तालूमूल में स्थित चन्द्रमा से जो कुछ भी अमृत (सोम कलाजल) द्रवित होकर या स्त्रावित होकर नीचे नाभि में स्थित सूर्य ग्रहण कर लेता है। इसी कारण शरीर वृद्ध हो जाता है। इस अमृत को सूर्य मुख में जाने से रोकने हेतु गुरू उपदेशित विपरीत करणी मुद्रा का अभ्यास किया जाता है।

इस मुद्रा में तालु (चन्द्रमा) नीचे और नाभि (सूर्य) ऊपर हो जाता है। इसमे भूमि पर लेटकर ध ीरे– धीरे पैरो को ऊपर की उठाकर दोनों हाथों को धीरे–धीरे कमर पर लाकर शरीर को कंधे के सहारे स्थिर कर लेते है।

Viparit karni Mudra

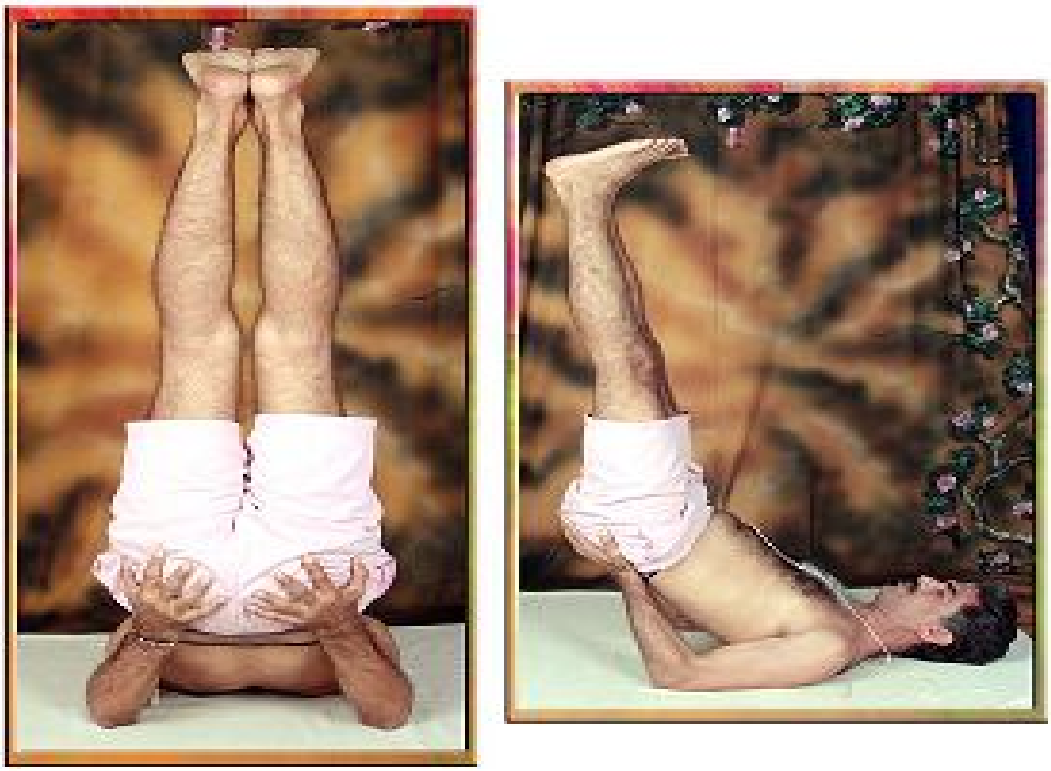

चित्र क्र. 50

लाभ

(प) नित्य अभ्यास से जठराग्नि प्रदीप्त होती है।

(पप) पर्याप्त आहार ग्रहण कर सकने की क्षमता उत्पन्न हो जाती है।

(पपप) छः माह के अभ्यास से झुरिया पके केश, तथा वृद्धावस्था नष्ट हो जाती है। एक प्रहर (ढाई से तीन घड़ी) के अभ्यास से मृत्यु को जीतकर प्रारब्ध कर्मो के फल का भोग क्षीण हो जाता है।

(9) वज्रोली मुद्रा

बज्रोली मुद्रा के अभ्यास के प्रसंग में दो और मुद्राओं का साधन किया जाता है। ये हैः–

(1) सहजोली

(2) अमरौली

सम्भोग के समय बिन्दु (वीर्य) के क्षरित होने से रोकने के लिए वीर्य को धीरे–धीरे आकुंचित कर उसे उर्ध्वगामी करने का अभ्यास स्त्री या पुरूष को यदि हो जाये तो इसे बज्रोली मुद्रा की सिद्धि कहते है। इस प्रक्रिया यह है कि 14 अंगुल लम्बी सीसे की जली जो लिंग के छिद्र में प्रवेश के योग्य हो प्रयुकत की जाती है। एक शिरा टेड़ा रहता है। करीब 12 अंगुल प्रवेशित कर टेड़े शेष 2 अंगुल भाग से फूत्कार द्वारा वायु प्रवेशित करने से उपस्थ भाग का शोधन होता होता है। इसके बाद जल के आकर्षण से इस क्रिया को सिद्ध किया जाता है जल खींच सकने की योग्यता आने पर वीर्य को भी संभोग क्रिया के समय रोके जा सकने की योग्यता आ जाती है।

मनुष्यों का चित्त शुक्र (वीर्य) के आचित (अधीन) है। और जीवन शुक्र (वीर्य) के आचित है। इस कारण वीर्य और चित्त (मन) दोनों परस्परचित होते है अतः विशेष कतर्व्य है कि दिव्य जीवन हेतु वीर्य की रक्षा की जावे। इस हेतु वज्रोली (एवं साहायक सहजोली एवं अमरौली) की साधन श्रेष्ठ कर्म है।

चित्र क्र. 51

स्वात्माराम जी का कथन है कि मत्स्येन्द्रनाथ आदि योगियों ने सहजोली क्रिया को श्रद्धामयी कहा है, यह कल्याणकारी (श्रेयस्कर) योग है, यह **भोग और मोक्ष** दोनों (काम–मोक्ष) पुरूषार्थों को एक साथ प्रदान करने वाली मुद्रा है। यह योग पुष्पात्माओं धैर्यशालियों तत्वदर्शियों (अध्यात्म चिन्तकों) और रागद्वेषरहित लोगों को ही सिद्ध होता है। जो मत्सर–रागद्वेष से युक्त है उन्हें यह मुद्रा हानिकारक है। वीर्य एवं राज का ब्राह्य योग सृष्टि कारक है तथा इनका आन्तरिक **योग** होना **मोक्ष** या कारक है। वीर्य (बिन्दु) स्वर्ग, मोक्ष, धर्म, अधर्म सर्वप्रदायक है सूक्ष्म रूप में सभी देवता इसमें निवास करने है। वज्रोली मुद्रा के अभ्यास से बिन्दू और रज एक होकर अपने ही शरीर में एक हो जाय तो समस्त सिद्धियां प्राप्त हो जाती है।

लाभ

(प) वज्रोली का अभ्यास अत्यन्त पुण्यकारक है।

(पप) इसमें देहासिद्ध प्राप्त होती है। रूप लावण्य एवं बल अक्षय हो जाता है।

(पपप) भूत वर्तमान भविष्य का ज्ञान हो जाता है।

(पअ) पुरूष योगी एवं स्त्री योगिनी के पद को प्राप्त कर सकते है।

(अ) भोग एवं मोक्ष की एक एक साथ प्रदायक मुद्रा है।

(अप) इससे आकाश गमन (आकाश में उड़ने की सामर्थ्य प्राप्त होती है।

(10) शक्तिचालनी मुद्रा

शक्तिचालनी मुद्रा में सर्वप्रथम हमें शक्ति का अर्थ समझ लेना चाहिये। शक्ति का तातपर्य योग साधना में कुण्डलिनी शक्ति से है। इसके निम्नांकित पर्यायवाची शब्द है।

(प) कुटिलांगी

(पप) कुण्डलिनी

(पपप) भुजंगी

(पअ) शक्ति

(अ) ईश्वरी

(अप) कुण्डली

(अपप) अरून्धती

शक्ति चालनी मुद्रा का तातपर्य सोयी हुई कुण्डली शक्ति को जगाकर उसे उर्ध्वमुखी करना जिसमें प्राणवायु सुषुम्ना नाड़ी में प्रवेश कर सके। क्योकि कन्द में जहा सुषुम्ना का मुख है वही यह शक्ति सुप्त पड़ी रहती है। मार्ग की अवरोधक होती है।

कन्द स्थान का संपीडन ही शक्ति–चालन है कन्द के स्थान और स्वरूप का वर्णन इस प्रकार है। मूलस्थान से एक बिता (नौ इंच) के ऊपर मेद्र और नाभि के मध्य में कन्द का स्थान है, यह चौड़ाई में चार अंगुल (तीन इंच) है यह कोनल और श्वेत रंग का है। तथा वस्त्र द्वारा लपेटी गई वस्तु के समान है। इसके चालन हेतु साधक को **वज्रासन में बैठकर दोनों पैरों** को एड़ियों के पास हाथों से दृढ़ता पूर्वक पकड़कर उस कन्द का प्रपीड़न करना चाहिये–दबाना चाहिये। इस तरह वज्रासन में स्थित होकर शक्तिचालन कर कुण्डलिनी को जगाना चाहिये।

SaktiChalani Mudra

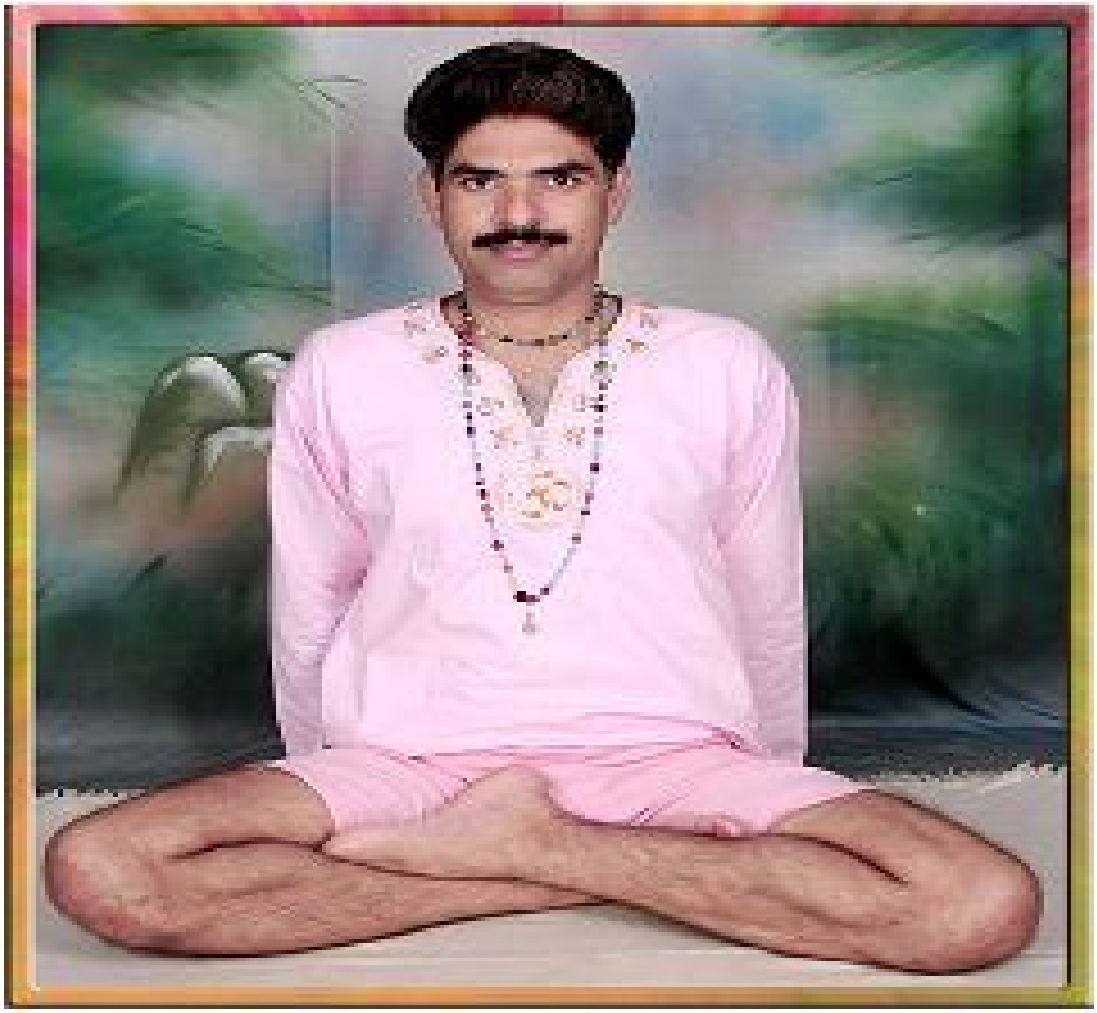

चित्र क्र. 52

लाभ

(प) शक्तिचालनी मुद्रा से योगी को मृत्यु का भय नहीं रहता है।
(पप) सभी प्रकार के ज्वरों (कासश्वासज्वर) से छुटकारा मिलता है।
(पपप) अणियादि सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती है।
(पअ) मृत्यु वश में हो जाती है।
(अ) यथाविधि अहार विहार और 40 दिन तक अभ्यास से प्राणायाम सिद्ध योगी हो जाता है।
(अप) भस्त्रिका कुम्भक के साथ शक्तिचालिनी से इच्छामृत्यु प्राप्त होती है।
(अपप) 72 हजार नाड़ियो के मलशोधन (प्रक्षालन) के लिए उपयोगी है।

(अपपप) मन वश में होकर समाधि में लीन होकर निद्रारहित अवस्था में रूद्राणी, शाम्भवी मुद्रा तथा उन्मनी अवस्था प्राप्त करता है।

7.6.3 ग्रन्थियाँ

हठयोग साधना में ग्रन्थियों का बड़ा महत्व है। आपने यह जान लिया कि 72 हजार नाड़ियों में सें तीन प्रमुख नाड़ियां इडा, पिंगला एवं सुषुम्ना प्रमुख है। सुषुम्ना में प्राणसंचार के समय बीच में बाधाएं या आवरण भी आते है। इन बाधाओं के कारण प्राणों की यह संवेदना निर्बाध रूप से आगे नहीं बढ़ पाती। आगे बढ़ने में इनके लिये तीन अवरोध उपस्थिति होते है प्रथम हृदय प्रदेश में जिसे **बाह्य ग्रन्थि** कहा जाता है। द्वितीय कष्ट प्रदेश में जिले **विष्णु ग्रन्थि** कहा जाता है। और तृतीय भूमध्य का प्रदेश जहां रूद्रग्रथि मानी जाती है। इन तीनों ग्रथियों का भेदन अर्थात इनमे प्राणों का आबाध संचरण होना साधक के लिये सर्वश्रेष्ठ पुरूषार्थ या श्रेष्ठतम करणीय कर्म होता है।

7.6.4 कुण्डलिनी

आपने उपरोक्त शक्ति चालिनी मुद्रा में कुण्डलिनी के विविध पर्यायवाची नामों को देखा। जिस प्रकार सम्पूर्ण प्रकृति के साथ पृथ्वी का आधार शेषनाग को माना जाता है, उसी प्रकार सभी योगतन्त्रों का आध ाार कुण्डलिनी को माना जाता है। जीव (शक्ति) शिव से भिन्न नहीं है किन्तु भिन्न न होने पर भी भिन्न सा बनकर बन्धन की अवस्था में सुषुप्ति में समय व्यतीत कर रहा है। ईश्वर के निग्रह अथवा तिरोधान से जीव का जगत् प्रारभ्भ होता है। यही आत्मा का पतन है। अर्थात् शक्ति सहस्त्रार स्थान से पतित होकर क्रमशः नीचे आकार मूलाधार स्थान में प्राणशक्ति के सहारे पूर्ण जीवत्व को प्राप्त करता है। ऐसे ही ईश्वर की कृपा से जीव का संसार सदा के लिए निवृत भी हो सकता है। यही जीव कुण्डलिनी शक्ति के जागने से तथा उर्ध्वगामी होकर क्रमशः अपने पूर्व के सहस्त्रार स्थान में पहुंचाने से जीवभाव का त्याग कर अपना स्वाभाविक शिवत्व धारण कर लेता है। यही आत्मा का उद्धार है। यही शक्ति का शिव से योग है और यही जीव के जीवन का सम्पूर्ण सार है।

कुण्डलिनी का स्थान गुदा स्थान से आधे अंगुल ऊपर मूलाधार स्थान में है। यहाँ सुप्त स्थिति में कुण्डलिनी पड़ी रहती है। और ऊपर सहस्त्रार स्थान में शिव का निवास रहता है। योगाभ्यास के द्वारा योगी जब कुण्डलिनी का जागरण करता है तब उसे अत्यन्त प्रबल संवेगों के ऊपर उठने का अनुभव अति सूक्ष्म रूप में होता है। इस स्थिति में महसूस होता है कि मेरूदण्ड में मस्तिष्क की तरफ ऊपर सरकता या कुछ चढ़ रहा है। यहा उर्ध्व गमन् मोक्ष द्वार को खोलता है। कुण्डलिनी को **बालरण्डातपस्विनी** भी कहा जाता है, क्योंकि वह सहस्त्रार स्थान–स्थित शिव से विलग होकर नीचे योनिमण्डल में विरहावस्था में पड़ी हुई ऐसे प्रतीत होती है। जैसे पुनर्मिलन के लिए तब तक तपस्या करती रहती है। जब तक वह सहस्त्रार स्थित शिव को प्राप्त नही हो जाती है। ऐसा साधना सें संभव है जब प्राण ऐसा कर सकने में अभ्यस्त से संभव है जब प्राण ऐसा कर सकने में अभ्यस्त हो जाएँ। अर्थात् कुंभक–अभ्यास के द्वारा प्रणि संवेदन को सुषुम्ना में प्रविष्ट कराकर ब्रह्मरंध्र में उसका विरोध कर लिया जाय। इसे कुण्डलिनी जागर या बोध कहते है। इससे सहजअवस्था प्राप्त होती है। प्राण, अग्नि और चित्र आदि के साथ कुण्डलिनी का ब्रह्मरन्ध्र में विलीन हो जाना योग की उत्तम और श्रेष्ठतम अवस्था है। इस कुण्डलिनी प्रबोध से योगी की दृष्टि भावहीन शून्यावस्था जैसी हो जाती है।

बोध प्रश्न :

टिप्पणी क : अपने उत्तर नीचे दिये गये स्थान में लिखें।

ख : इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

प्रश्न 4. हठयोग प्रदीपिका के अनुसार कुंभक (प्राणायाम) के प्रकार बतलाईये ?

7.7 इकाई 24 हठयोग प्रदीपिका में नाद–बिन्दु–कला, समाधि एवं नादानुसंधान

हठयोग प्रदीपिका का चतुर्थ उपदेश के अर्न्तगत स्वात्माराम योगीन्द्र ने नाद–बिन्दु–कला स्वरूप शिव का वर्णन करके समाधि की परिभाषा, बतलाते हुऐ, लय की परिभाषा, तथा शाम्भवी और खेचरी क्रिया का विस्तार पूर्वक विवेचन किया है। तदुपरान्त नादानुसंधान का वर्णन उसके भागों को समझाया गया है। अन्त में विभिन्न परिणामों की विवेचना की गई है।

7.7.1 नाद–बिन्दु–कला

हठयोग प्रदीपिकाकार नें नाद–बिन्दू–कला को शिवस्वरूप बताते हुऐ शिव को गुरू के रूप में नमस्कार किया है। नाद–बिन्दु–कला वास्तव में एक तत्व की साधना है। जगत् की प्रत्येक वास्तु तीन अवस्थाओं में रहती है ये है व्यक्त (स्थूल) सूक्ष्म और अव्यक्त। सभी मनुष्यों में भी यही तीनों अवस्थायें विद्यमान रहती है। प्रथम अव्यक्त अवस्था जिसमें चित्त (अव्यक्त) आता है। द्वितीय सूक्ष्म अवस्था जिसमें गतिशील प्राण आता है। प्राण (सूक्ष्म) अवस्था जिसमें गतिशील प्राण आता है। प्राण (सूक्ष्म) चित्त में उठा हुआ स्फूरण को ही प्राण को गतिमान करता है तथा तृतीय क्रियाशील व्यक्त शरीर (स्थूल) प्राण की गतिशीलता के द्वारा क्रियाशील या गतिशील बनता है।

हम देखते है कि हम जो श्वास लेते है जिसे हम आते जाते महसूस भी करते है यह श्वास हमारे प्राण का बाहरीरूप है। यही प्राण इससे पूर्व चित्त के ऊपर स्पंदन स्परूप में विद्यमान होता है। और यही स्पंदन हमारी शारीरिक उष्णता का कारण है तथा साथ ही नाद भी उत्पन्न होता है। यह आन्तरिक उष्णता (तेज) शरीर के बाहर क्रान्ति के रूप में तथा यदि आन्तरिक रूप से ज्योति के रूप में दिखाई देती है। इसको अग्नि तत्व भी कहा जाता है। उसी तत्व का परिणाम ही नाद (अर्न्तनाद) कहा जाता है। यही नाद ब्राह्य स्वरूप में बाहर वाणी के रूप में निः सृत होता है। वाणी भी अन्दर में प्राण की ही परिवर्तित अवस्था है। भीतरी प्राण जब निर्बाध रूप में और मुख से टकराकर (बाधित होकर) निकलता है तब स्वर रूप में अक्षरों शब्दों आदि का रूप बन जाता है।

बिन्दु से ही अर्न्तनाद उत्पन्न होता है या यो समझे कि अर्न्तनाद को जो मूल स्वरूप है वह **बिन्दु** है। और इस बिन्दु का भी जो मूल स्वरूप है उसे **कला** नाम से जाना जाता है। अर्थात नाद (स्थूल रूप) सूक्ष्म रूप में परिवर्तित रूप में जाकर कला (अव्यक्त) रूप बन जाते है। इस प्रकार नाद–बिन्दु और कला ध्वनि की विभिन्न अवस्थाएं है। इन सभी अवस्थाओं के मूल में एक मात्र प्राण ही होता है जो चित्त से स्पंदिन होता है। और इसे ऐसा भी समझा सकते है कि नांद के भीतर का अनाहतनाद, बिन्दु के भीतर की ज्योति तथा कला के भीतर के दिव्य तथा अपूर्व संस्पर्श से आशय रखता है। ये सभी विभिन्न स्परूप **नांद–बिन्दु–कला प्राण** तथा प्राणिक क्रियाओं से अभिप्रेत है।

7.7.2 समाधि

स्वात्माराम जी ने उपदेशित किया है कि समाधि वह स्थिति या अवस्था है। जो साधक से मृत्युभय को दूर कर देती है। सुख अर्थात मोक्ष या मुक्ति प्रदायक अवस्था है। तथा ब्रह्य के आनंद में जीव को प्रतिष्ठित कर देने वाली अवस्था है। इस समाधि अवस्था को अनेक नामों से जाना जाता है ये है राजयोग, समाधि ा, उन्मनी, मनोन्मनी, अमरत्व, लय तत्व, शून्याशून्य, अमनस्क, अद्वैत, निरालम्ब, निरउजन, जीवन्मुक्ति, सहजा, तुर्या, (अवस्था) ये सब समाधि के पर्यायवाची है।

समाधि की अवस्था ठीक वैसी ही अवस्था है जैसे जल में सेधा नमक घोलने पर वह तदाकार हो जाता है, वैसे ही मन जब आत्मा से तदाकार हो जाता है तो इस ऐक्य को समाधि अवस्था कहते है। जब

क्षीण होकर, और मन आत्मा में तदाकार होकर लीन हो जाता है तब प्राण और मन की समरसता या जीवात्मा और परमात्मा का सामरस्त्र होने पर सभी संकल्प नष्ट हो जाते है। यही समाधि की स्थिति कहलाती है। राजयोग (समाधि) के प्रभाव को तत्वतः पूर्ण रूप से कोई नहीं जानता है इसका प्रभाव ज्ञान, या मुक्ति, या सिद्धि के रूप में गुरू कृपा द्वारा ही संभव है। गुरू कृपा द्वारा ही विषयों का त्याग, तत्वदर्शन, आत्म ज्ञान और सहज (तुर्या) अवस्था की दुलर्भता सुलभ हो पाती है। आसन प्राणायाम मुद्रा बंध एवं कुण्डलिनी जागरण पर प्राण (वायु) शून्य (ब्रह्मरन्ध्र) में लीन हो जाती है। शक्ति बोध (कुण्डलिनी–जागरण) होने समस्त कर्मो साधनाओं से मुक्ति प्राप्त कर योगी सहजावस्था की प्राप्ती कर लेता है। जब प्राण सुषुम्ना में प्रवाहित होते है एवं मन शून्य में (ब्रह्म) में विलीन हो जाता है। तब योगी के समस्त कर्म निर्मूल हो जाते है।

7.7.2.1 मन और प्राण का लय

जब चित्त समस्त को प्राप्त हो जाता है और प्राणवायु सुषुम्ना नाड़ी में गमन करती है, तब अमरोली, वज्रोली, और सहजोली, मुद्रायें स्वतः सिद्ध हो जाती है। प्राण रहने तक मन भी नहीं मरता इस कारण अन्तः करण मे ज्ञान का उदय नहीं हो सकता है। जो साधक प्राण और मन का लय कर लेते है वही मोक्ष प्राप्ति कर पाते है। अतः साधक को प्राणों को ब्रह्मरंध्र में प्रवेश करवाना चाहिये। चूकि सूर्य नाड़ी और चन्द्रनाड़ी रात्रि एवं दिन रमी काल को धारण करते है जबकि सुषुम्ना उस काल का भोग करती है। अतः काल भूज्ञाणी का यह गुप्त ज्ञान प्रकाशित किया जाता है। 72 हजार नाड़ी जालों में जकड़े जीव को सुषुम्ना नाड़ी (शम्भवीशक्ति) शिव की प्राप्ती करवाती है। आत्मसाक्षात्कार प्रदान करती है। चित्र की वृत्ति के दो हेतु (कारक) है। (प) वासना (पप) प्राण (वायु)की चंचलता। इनमें से एक का भी निरोध हो जावे तो दूसरा स्वतः विरूद्ध हो जाता है। इस प्रकार मन और प्राण का लय अन्योन्याश्रित है। सुषुम्ना में प्रवाहित प्राण जब ब्रह्मरन्ध में प्रविष्ठ हो जाते है तब मन का लय हो जाता है। जैसे– रस–पारा (पारद) और मन स्वभावतः चंचल है। औषधि योग से मूर्छित–भस्मीभूत पारद व्याधियों का नाश कर देता है। उसी प्रकार ब्रह्मरन्ध में लय (मूर्छित) प्राण दीर्घ जीवन प्रदायक है।

7.7.2.2 शाम्भवी मुद्रा

यह मुद्रा सभी को सिद्ध नही हो सकती यह कुलवधु के समान गोप्य है। जबकि वेद, शास्त्र, और पुराण गणिका (सबके लिए सुलभ होने से) के समान है। इस मुद्रा में लक्ष्य भीतर हो (मनस्थिर) दृष्टि अध र्ानिर्मित नेत्रों के साथ ब्राह्य दृष्टि न हो यही शम्भवी मुद्रा है। इस मुद्रा में साधक चित्र और प्राणवायु को अर्न्तलक्ष्य में विलीन कर दृष्टि से नीचे देखते हुए भी नही देखता है यही शाम्भवी मुद्रा है।

लाभ

खेचरी की तरह शाम्भवी मुद्रा से भी अवस्था और स्थान भेद से चित्सुख रूप शून्य में चित्र के लय का आनन्द प्राप्त होता है।

7.7.2.3 उन्मनी मुद्रा

उन्मनी मुद्रा नेत्र के तारों को नासिका के अग्रभाग में स्थिर कर प्रकाशमान ज्योति में संयुक्त कर शाम्भवी मुद्रा के अभ्यास के मन को अर्न्तलक्ष्य–बर्हिदृष्टि की युक्ति से तल्लीन करने पर उन्मनी अवस्था की सिद्धि होती है।

उन्मनी भाव के लिए काल का अभाव है अर्थात लिंग का पूजन (आत्मस्वरूप का चिन्तन) न दिन

और न रात बल्कि हरक्षण सदैव करने से आत्मस्वरूप में लीन होकर उन्मनी भाव प्राप्त होता है।

लाभ

त्रिकाल में मन शान्त होकर सहजावस्था प्राप्त होती है। एवं आत्म साक्षात्कार प्राप्त होता है।

7.7.3 नादानुसंधान

हठयोगप्रदीपिका में महायोगी गोरखनाथ जी द्वारा उपदिष्ट नाद साधना का विवेचन किया गया है। अदिनाथ शिवजी ने लय के सवालाख प्रकार बतलाये है। इन प्रकारों में सर्वश्रेष्ठ प्रकार नादानुसंधान है।

नदानुसंधान हेतु मुफ्तासन अर्थात सिद्धासन में शाम्भवी मुद्रा से दाहिने कान में नाद का श्रवण करना चाहिये। इस हेतु हाथ दोनों कान, दोनों नासारन्धों और मुख को हाथ की अंगुलियों से निरोध करना चाहिये। इस प्रकार करने से सुषुम्ना मार्ग में नाद सुनाई देता है। इसे **षण्मुखी मुद्रा** भी कहते है। इस नाद साधना की निम्नलिखित उत्तरोत्तर चार अवस्थायें है। देखें सारणी क्रमांक 13

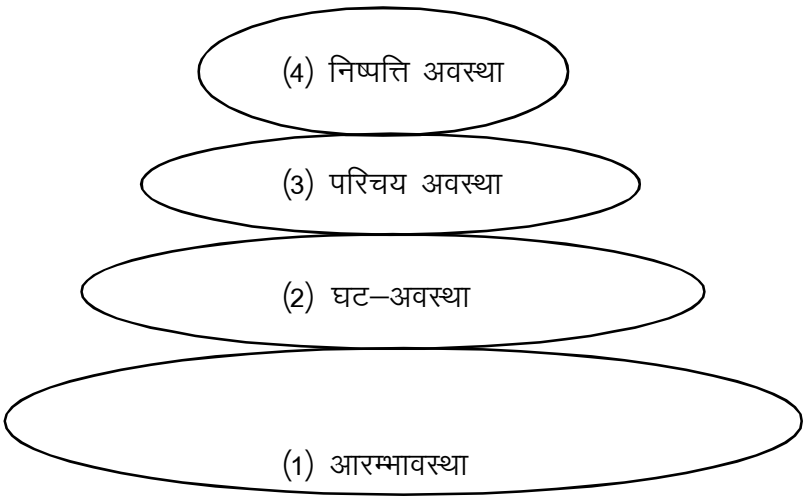

सारणी क्र. 13

इनमे प्रथम अवस्था में गम्भीर या उच्चनाद, द्वितीय घट–अवस्था में कम गम्भीर नाद, तृतीय परिचय अवस्था में सूक्ष्म तथा चतुर्थ निष्पति अवस्था में अत्यन्त सूक्ष्म नाद सुनाई देने लगता है। इन नादों का श्रवण स्थूल इन्द्रियों को अंगुलियों से बन्द कर दिया जाता है। जिसे ब्राह्य ध्वनि सुनाई ही न दे। इस प्रकार वृत्ति ब्राह्य जगत् से सर्वथा असम्प्रक्त होने पर अन्तः शरीरस्थ सुषुम्ना मार्ग में स्पष्ट और उच्च नाद का श्रवण होने लगता है। जिसका परिणाम साधक का मन उस अलौकिक नाद मे लीन दोलय को प्राप्त करता है। और ईश्वर सायुज्य पद प्राप्त कर सकता है।

बोध प्रश्न :

टिप्पणी क : अपने उत्तर नीचे दिये गये स्थान में लिखें।

ख : इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

प्रश्न 5. नादानुसंधान की चार अवस्थाओं पर प्रकाश डालिये ?

7.8 इकाई 25 यौगिक चिकित्सा

हठयोग प्रदीपिका के सामान्यतः सभी प्रकाशित संस्करणों में चार उपदेश ही प्राप्त होते है। किन्तु कैवल्यधाम लोनावाला पूना से प्रकाशित हठयोग प्रदीपिका ग्रंथ मे पंचम उपदेश के अर्न्तगत यौगिक चिकित्सा के आधारभूत सिद्धांतों का वर्णन योग साधना के दौरान उत्पन्न विभिन्न शारीरिक विकारों के शमन या शारीरिक विकारों के उत्पन्न होने से बचने के लिऐ योग चिकित्सा के सिद्धांत दिये गये है जो बहुत उपयोगी है। कुल 24 श्लोकों में योग चिकित्सा के सटीक सिद्धांत दिये गये है। इनका अध्ययन सभी इस इकाई में हम करने जा रहे है। हठयोग की साधना में योग्य गुरू न मिलने पर, यह सम्भावना बनी रहती है। कि हठाभ्यास में कहीं कोई गलत प्रक्रिया तो नही अपना ली गई है। अतः तद्जनित व्याधियों के निवराणार्थ यौगिक चिकित्सा के आधारभूत सिद्धांत जो स्वास्थ्य की सम्यकता के लिए आयुवेर्दिक चिकित्सा के मूल सिद्धांतों पर ही आधारित है इनको ही आधार बनाया गया है।

प्रारंम्भ में योग चिकित्सा हेतु वात पित्त एवं कफ के स्थानों का शरीर में निरूपण किया गया है। प्रसंग में यहां यह भी बड़ा व्यावहारिक तथ्य स्पष्ट कर दिया गया है कि योग साधको के प्रमाद या गलती से आसन–प्राणायामादि अंगो के अभ्यास से वायु के गलत मार्ग पर प्रसरण से उन अंगों में गांठ बन जाने, अथवा कफ की अधिकता के कारण हद्रयशूल, पार्श्वशूल पृष्टशूल आदि अनेकानेक रोगों के होने की सम्भवनाएँ बनी रहती है। इनके निदान हेतु आयुर्वेदिक सिद्धांतों को ध्यान में रख कर इन्हे प्रयुक्त किया जाता है।

7.8.1 यौगिक चिकित्सा के सिद्धांत

योगिक चिकित्सा का सिद्धात मानवशरीर की निरोगता हेतु आयुर्वेद को **त्रिदोष सिद्धांत** पर अवधारित है। आयुर्वेद का त्रिदोष सिद्धांत समस्त ब्याधियों को तीन बडे भागों में बांटता है ये निम्नलिखित है–

(1) वात विकार जन्य रोग
(2) पित विकार जन्य रोग
(3) कफ विकार जन्य रोग

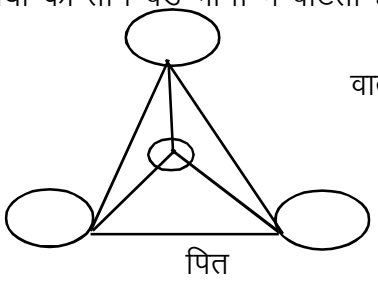

सारणी क्र. 14

इन त्रिदोषों या त्रिधातुओं में विषमताएँ उत्पन्न होने से रोगों की उत्पति होती है। इन तीनों विकारों में सबसे ज्याद विकार वातदोष से होते है, क्योंकि वात विकार अन्य दानों विकारों के साथ भी जुड़ा ही रहता है। केवल पित्त या केवल कफ जन्य रोग नहीं होते है। किन्हीं भी विकारों में वात का कुछ न कुछ अंश अवश्य विद्यमान रहता है। यहाँ यह भी स्पष्ट समझ लेना चहिये कि केवल वात जन्य रोग हो सकते है। इस सिद्धांत की मुख्य मान्यता यह है कि मानव शरीर मुख्यतः प्राण संचार पर ही विद्यमान रहता है। सम्पूर्ण शरीर का स्वास्थ्य या अस्वास्थ्य मुख्य रूप से प्राण संचार की सही या गलत प्रक्रिया पर ही निर्भर होता है। इस कारण से स्वात्माराम चूकिं व्यावहारिक योगी होने के कारण इस तथ्य को नजर अदांज नही कर सकते थे। इस कारण उन्होंने योग के गलत अभ्यास से होने वाले रोगों से मुक्ति के लिए प्राण (वायु) की गति के नियमन का सम्यक रूप से निरूपण प्रमुखता के साथ स्पष्ट किया है।

7.8.1.1 योग साधना में विकार उत्पत्ति के कारण

योग विज्ञान किसी भी दोष का मूल कारण मन या चित्त की गतिशीलता (चंचलता) या अस्थिरता को ही मानता है। मन को कहीं कहीं चित्त (मन) के सम्पूर्ण कार्य ब्यापारों को **वृत्तियों** की संज्ञा द्वारा निरूपित किया गया है। और चित्त की विक्षिप्तता से सभी **मनों कायिक** रोगों का उद्‌गम स्त्रोत माना गया है। चित्त की विक्षिप्तता से धीरे–धीरे शरीर भी विविध रोगों से ग्रसित होने लगता है। चित्त के ये विक्षेप नौ प्रकार है–

(1) व्याधि (2) स्व्यान (3) संशय (4) प्रमाद (5) आलस्य (6) अविरति (7) भ्रान्तिदर्शन (8) अलस्य भूमिफल (9) अनवस्थितत्व तथा इनके साथ ही चार और प्रकार के विकार उत्पन्न होते है जिनमें– (1) दुःख (2) दौर्मनस्य (3) अंगमेजयत्व (4) श्वासप्रश्वास।

इन विक्षेपों तथा उनके सहायक विक्षेपों से मानसिक व्याधियां तो होती ही है किन्तु साथ में शरीरिक व्याधियाँ भी इनसे उत्पन्न हो जाती है। योगाभ्यास शरीर के स्तर पर शरीर को तथा मन के स्तर पर मन विशिष्ट प्रकार के अनुशासन में बांधकर नियमित संयमित एवं रोग एवं विकार रहित करता है। यह स्पष्ट ध्यान रखने की आवश्यता है कि योग का लक्ष्य शारीरिक रोगों चिकित्सा या रोगानवारण नहीं है बल्कि ये तो सत्यज्ञान से हुये तनाव रहित मन की सहजता से स्वयमेव ही निरोग हो जाते है। इस प्रकार शारीरिक एवं मानसिक चिकित्सा **सह उत्पाद** के रूप में योग साधना के प्रतिफल के रूप प्राप्त होते रहते है। इसी कारण योग साधना सभी प्रकार के दुःखों से निवृत्ति की साधनभूता है। राजयोग की उपलब्धि में प्रारम्भिक चरणों के रूप में हठयोग की साधना से **मलशुद्धि, नाड़ीशुद्धि** तथा अन्ततः देहशुद्धि हो जाती है। योगसाधना में ब्राह्य करणों के शुद्ध होने पर ये अन्तः करणों को ज्यादा विक्षेपित नही कर पाते और परिणाम स्वरूप कारण शरीर अपने मूल या सत्य स्वरूप में होने पर कैवल्य की स्थिति बन जाती है। इस प्रकार साधना (शरीर) और साध्य (कैवल्य) के बीच में जो भी सूक्ष्म या कारण शरीर रूपी पद आते आते है। वे यदि स्वभाविक स्वरूप में है, तो विकार या रोग रहित अवस्था होती है। किन्तु पूर्व संस्कार इस सहजता में सदैव विध्न उत्पन्न करते है। जिससे सूक्ष्म शरीर से होते हुये स्थूल शरीर में ये उत्पन्न होते है तथा उनके स्वभाव (सत्व, रज, एवं तम) के अनुरूप शरीर में रोग उत्पन्न होते रहते है। इन्हें सावधानी पूर्वक, समझकर हठयोग प्रदीपिका में वर्णित षटकर्मो, आसनों , प्राणायामों मुद्राओं एवं बन्धों के अभ्यास से स्थूल एवं सूक्ष्म शरीर से संस्कार जन्य दोषों को दूर करने से कारण शरीर की ''स्वा'' स्थिति बन पाती है। इस प्रकार हठयोग ही राजयोग का प्राथमिक साधक योग बन जाता है। हठयोग प्रदीपिका भी स्वास्थ्यानुसंधान हेतु निम्न क्रम अपनाती है–

(1) शारीरिक स्वास्थ्य – षट्‌क्रिया, आसन प्राणायाम, आदि (बहिरंग साधना)।
(2) मानसिक स्वास्थ्य – मुद्रा एवं बन्धों (अन्तरंग साधना)।
(3) आध्यात्मिक स्वास्थ्य – कुण्डलिनी बोध एवं नादानुसंधान रूपी हठ साधना।

हठयोग प्रदीपिका स्वास्थ्यानुसंधान में इस सिद्धांत को लेकर आगे बढ़ती है कि चित्त (मन) और प्राण सामान्य रूप से शरीर में साथ–साथ गतिशील होते है। प्राण की क्रिया का बाहरी स्वरूप श्वास प्रश्वास है और सभी रोग प्राण की सामान्य गति में किसी न किसी प्रकार के अवरोध का ही कारण या परिणाम है। इसी लिये इन अवरोधों को दूर करना स्वात्माराम जी द्वारा हठप्रदीपिका का शारीरिक चिकित्सा सिद्धांत का स्वरूप बन गया है।

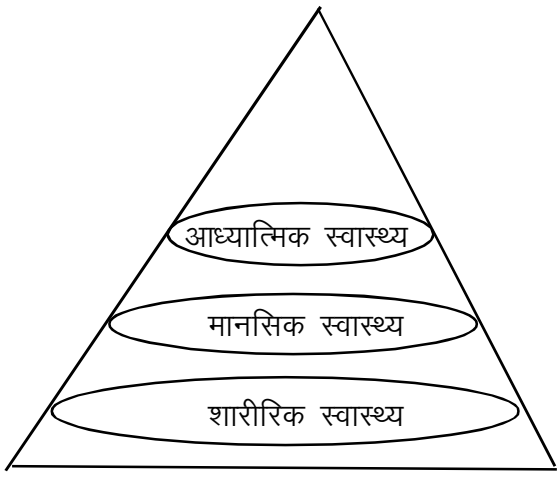

स्वास्थ्यानुसंधान क्रम
सारणी क्र. 15

7.8.2 हठयोग प्रदीपिका में सामान्य रोग एवं उनकी चिकित्सा

हठयोग प्रदीपिका का पंचम उपदेश यौगिक चिकित्सा के सैद्धान्तिक एवं व्यवहारिक उपदेशों का **चौबीस (24)** श्लोकों में सूत्र रूप अद्धितीय संग्रह हैं। प्रथम सूत्र से ही यह स्पष्ट हो जाता है कि **दिनचर्या** की प्राकृतिक गति की किसी भी अवहेलना का परिणाम रोग या विकार होते है **प्रमाद** शब्द से इस उपदेश का प्रथम श्लोक प्रारम्भ होता है जिसका बड़ा व्यापक अर्थ हैं प्रमाद से व्यक्तित्व का एक प्रकार भी बनता हैं जिसे प्रमादी कहते हैं। व्यापक अर्थ में समस्त शारीरिक व्याधियाँ या रोग **प्रमाद** जन्म ही हैं।

प्रमादी युज्यते यस्तु वातादिस्तस्य जायते।
तद्दोषस्य चिकित्सार्यं गतिर्पायोर्निरूप्यते।।

(ह.प्र. 5/1)

7.8.2.1 रोग उत्पत्ति एवं प्राण क्रिया

मन एवं प्राण अन्योन्याश्रित कार्य करते ऐसा हमने पिछले उपदेश में अध्ययन किया इसी आध ाार पर रोगों की उत्पत्ति एवं उनके कारण निर्धारित एवं उनके कारण निर्धारित किये गये हैं।

प्राण की क्रिया का बाहरी स्वरूप श्वास प्रश्वास है और सभी रोग प्राण की सामान्य गति में कुछ अवरोध के कारण ही उत्पन्न होते हैं। इस कारण इन अवरोधों को दूर करने के लिए धीमी (गहरी) और लम्बी पूरक रेचक क्रिया तथा यथाविधि कुंभक करने से और चित (मन) को रोग ग्रस्त अंग पर एकाग्र करने से उस स्थान पर प्राणों का प्रवाह शुरू हो जाता हैं। प्राणों में प्रवाह का अर्थ ही हैं निरोगता। पूरक–रेचक कुभंक आठ भेदों (प्राणायामों के 8 प्रकार) का सम्यक प्रयोग एवं साथ ही शासन का अभ्यास शरीर की सभी माँस–पेशियों को शिथिल एवं प्राणवान् बनाते हैं। ऐसी शारीरिक स्थिति में साधक योग के अभ्यासो एवं क्रियाओं को करने में समक्ष हो जाता हैं तथा किसी प्रकार के रोगों की उत्पत्ति की संभावना शेष नहीं रहती हैं।

7.8.2.2 रोग एवं यौगिक चिकित्सा

योग साधना एवं सामान्य दशा में भी प्रमाद के कारण साधक से जो गलतियाँ हो जाती हैं उनसे

उत्पन्न त्रिदोषों (वात, पित्त एक कफ) के कारण उत्पन्न रोगों की चिकित्सा के लिए वायु की गति अर्थात् प्राणों का संचरण जानना आवश्यक है कि प्राण (वायु) की गति शरीर में कब कहाँ और कैसी हैं। रोगों की यौगिक चिकित्सा हेतु स्वात्मारामजी द्वारा हठयोग प्रदीपिका में निम्नलिखित बिन्दुओं को ध्यान रखना आवश्यक हैं।

(1) रोगों की चिकित्सा के लिए (वायु) प्राण के ऊपर उठने की गति को प्रयत्न पूर्वक जानकर (जिससे रोगों की संभावना होती हैं) साधक को सतत् रोगों की चिकित्सा करना चाहिये।

(2) शरीर के विभिन्न अंगों के रोग उनमें रहने वाली वायु (प्राण) के अवरोध होने के परिणाम स्वरूप होते है। इनमें निम्नलिखित त्रिदोषों का स्थान शरीर के अंगों में निम्नलिखित प्रकार से है–

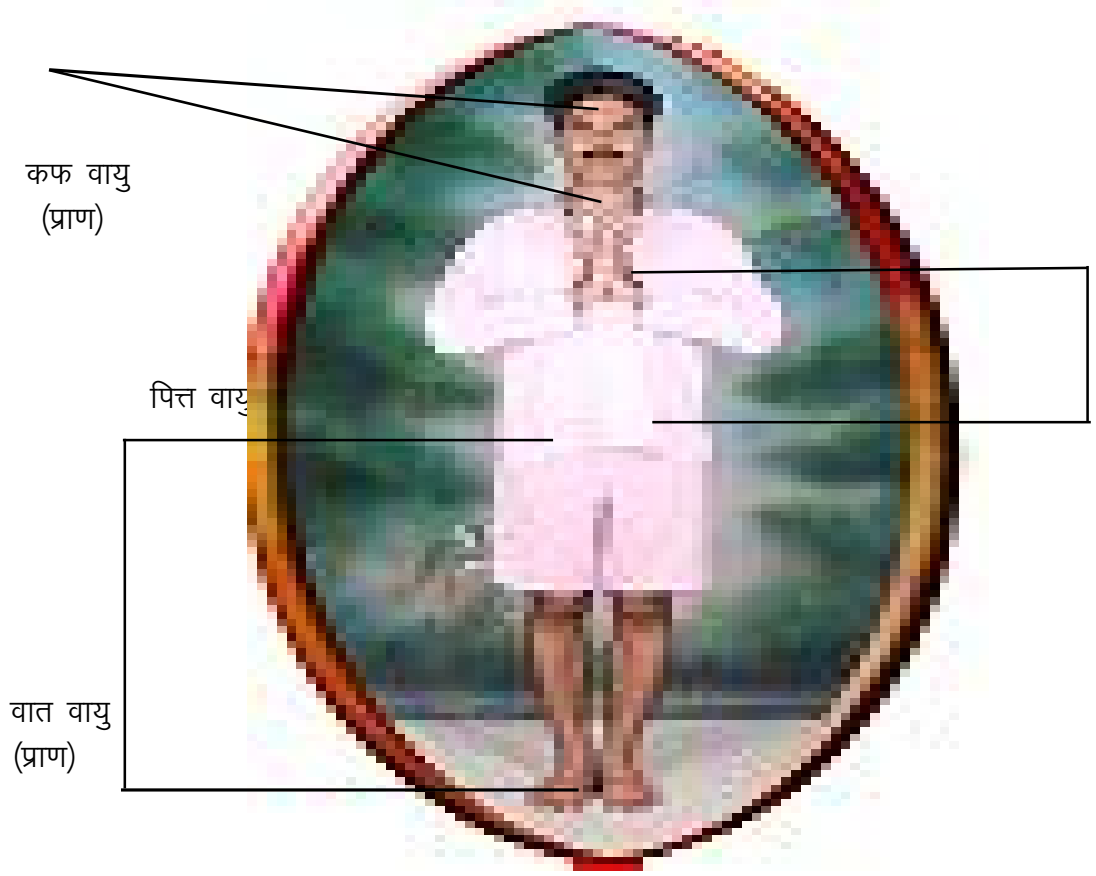

चित्र. क्र. 53

(प) वात रोगः– पाव में तलवे से नाभि प्रवेश तक वात वायु का स्थान होता है इन अंगों के रोग वातजन्य होता हैं।

(पप) पित्त रोगः– नाभि प्रवेश से हृदय तक के अंगों में पित्त का स्थान माना गया हैं नाभि से हृदय प्रवेश तक के अंगों के रोगों को पित्तजन्य रोग के रूप में चिकित्सा करना चाहिये।

(पपप) कफ रोगः– हृदय प्रवेश के ऊपर के शरीर में सिर के अंतिम भाग तक स्थित अंगों में कफ का स्थान है। शरीर के इस भाग में स्थित अंगों की चिकित्सा तदनुसार कफ जन्य रोग के रूप में करना चाहिये।

(3) त्रिदोषों से उत्पन्न रोगों का कारण वायु (प्राणों) का सही मार्ग में अबाधित चलते रहना ही उसकी उचित व स्वस्थ्य क्रियाशीलता का परिचायक हैं। यदि प्राण कही बाधित होते हैं अर्थात् प्राणों के संचरण में कही रूकावट उत्पन्न होती है तो उस स्थान में त्रिदोषों में जो दोष उस वायु (प्राण) के साथ होगा उससे संबन्धित गांठ उस स्थान पर बन जावेगी। इस प्रकार उत्पन्न रोगों की चिकित्सा निम्नानुसार करेंगे।

(प) यदि गलत मार्ग से प्रवाहित वायु यदि पित्त प्रदेश में जमा होकर गांठ बन जाये, तो उससे छाती में बगल (काँख) में तथा शरीर के पिछले भाग (पीठ) में दर्द उत्पन्न हो सकता हैं। ऐसी समस्याओं में शरीर के अंगों में तेल की मालिश कर गर्म पानी से स्नान करना चाहिये। साथ ही घी के साथ खीर खाकर उसके पच जाने का योग का अभ्यास सही विधि से करना चाहिये जिन अंगों में इस प्रकार की समस्या हो वहाँ स्थित वायु (प्राण) को मन से वहाँ एकाग्र करना चाहिए।इस प्रकार जब चित्त वहाँ एकग्र उस प्राण (वायु) पर ध्यान लगाया जावेगा तथा एक सम्पूर्ण पूरक कर एक सम्पूर्ण रेचन करना चाहिये। इसी विधि से बार–बार पूरक एवं रेचक करने से जमें हुए वायु की गांठ समाप्त हो जाती हैं। इस प्रक्रिया की साधना के समय प्रायः स्निग्ध (घी तेल से चुपड़ा हुआ) भोजन ग्रहण करना चाहिए। इससे वातजन्य एवं पित्तजन्य दर्द (शूल) अन्य रोग दूर हो जाते हैं।

(पप) यदि वायु कफ प्रवेश में जमा हो जाये और गांठ का रूप ले ले तो धातुओं में विषमता उत्पन्न हो जाने से हृदय रोग, खाँसी, हिचकी, दमा तथा सिर दर्द आदि रोग होने की सम्भावना बनी रहती है। ऐसी स्थिति में मिताहार ग्रहण कर मुँह साफ कर दो–तीन बार कुम्भक का अभ्यास करना चाहिये। इस विधि से श्वास–सम्बंधी रोग दूर हो सकते है। इसके लिए दूसरी विधि भी अपनायी जा सकती है। इस विधि में गरम खीर या घी मिलाकर गरम दूध पीकर बरूणी धारणा का अभ्यास करना चाहिए। इस अभ्यास से चर्मरोग कुष्टरोग भी साथ–साथ दूर हो जाते है। यदि आँख बंद कर यह अभ्यास किया जाये तो रतौंधी के रोग में भी सफलता मिलती है।

(पपप) साधक को यदि शरीर में कम्पन या गाठियां की शिकायत हो तो गाठियां का दर्द जिन–जिन स्थानों पर हाता है उन स्थानों पर (प्राण) वायु का चिन्तन करना चाहिये। इस रोग में दीर्घ पूरक रेचक तथा कुंभक करना चाहिये। शवासन की स्थिति में प्राणायाम का अभ्यास भी लाभदायक रहता है।

(पअ) सर्व दोष प्रशान्ति के लिये उत्तम स्थान एवं सम स्थान में प्राणायाम का सतत् प्रयोग करने से सभी दोषों की शान्ति होती है।

(अ) योगाभ्यास के समय अब कभी भय, बाधा, आदि विध्न उत्पन्न हो, तब साधकों को यथाशक्ति योग के अभ्यास को यत्नपूर्वक उत्तरोतर बढ़ाना चाहिये। इस प्रकार सतत् अभ्यास सभी रोगों का हरण कर काया की शुद्धि कर देता है।

7.9 सारांश

द्वितीय प्रश्न पत्र के खण्ड 7 में अपने स्वात्माराम योगीन्द्र के ग्रंथ हठयोग प्रदीपिका का परिचय प्राप्त किया इस खण्ड में छः इकाईयों का अध्ययन किया गया। इस खण्ड के अध्ययन में आपने स्वात्माराम रचित हठप्रदीपिका ग्रंथ का सम्यक ज्ञान भली भांति प्राप्त किया।

इकाई 20 के अन्तर्गत आपने स्वात्माराम जी के सम्बंध में जानकारी प्राप्त की। स्वात्माराम जी द्वारा 1350 से 1550 इसवी के बीच में इस ग्रंथ की रचना की गई थी। स्वात्मारामकृत यह ग्रंथ हठयोग के साधाको और योग के अनुसन्धित्सुओं के लिये एक मार्ग दर्शक व्यावहारिक धरातल पर परीक्षित एक मात्र विशिष्ट ग्रंथ के रूप में स्थान रखता है। यह **ध्यान रखने योग्य** है कि सर्वप्रथम स्वात्माराम जी ने ही हठयोग को चार अंगों में साधना के स्परूप में ढाला। हालांकि हठयोग में छः, सात, आठ से लेकर पन्द्रह तक अंग प्राप्त होते है। किन्तु यह स्वात्माराम जी के व्यावहारिक ज्ञान का फल ही है कि उन्होंने हठयोग साधना हेतु केवल चार सोपान

बतलाये हलाकि अन्य ग्रंथों एवं योगियों ने अनेक सोपान बतलाये है किन्तु स्वात्माराम की सम्यक साधना इन चतुरांगों के अर्न्तभूत सन्निहित है। इस ग्रंथ में कुल 382 श्लोक एवं चार अध्याय है। 24 श्लोकों का एक अतिरिक्त अध्याय भी प्राप्त होता है। कैवल्यधाम लोनावाला द्वारा प्रकाशित ग्रंथ में यह पंचम अध्याय योग चिकित्सा के रूप में भी काफी लोक प्रिय है।

हठप्रदीपिका नामक इस ग्रंथ के अनेक संस्करण प्रकाशित हो चुके है जिनका विशद् अध्ययन आपने इकाई 20 के 7.3.2 बिन्दू पर क्रमबार अध्ययन किया। इनमें प्रमुख है अडियार (मद्रास) ।स् त्ब् टवसण् छव 4 की ब्रह्मनंद द्वारा रचित ज्योत्सना टीका अत्यंत सहज एवं सरल व्याख्या में उपलब्ध है। इनके अलावा लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस, थ्योसोफिकल पटिलशिंक हाऊस अड़ियार, लक्ष्मीवेकटेश्वर प्रेस बम्बई, हठयोग प्रदीपिका, मोतीलाल बनारसीदास वाराणसी, विहार स्कूल ऑफ योग (मुंगेर), गोरखज्ञ पीठ गोरखपुर आदि प्रमुख है।

आपने इकाई 21 में हठयोग प्रदीपिका में योग साधना की आवश्यकताओं एवं पूर्व तैयारियां क्या–क्या होना चाहिये यह भी देखा। इस इकाई में हठयोग प्रदीपिका में वर्णित योग साधक की बैठक व्यवस्था एवं कुटी बनाने में क्या–क्या बाते ध्यान में रखना चाहिये यह देखा गया। साथ ही साथ हठयोग प्रदीपिका में वर्णित प्रथम उपदेश में यम नियम आसन के सन्दर्भ में विस्तार से अध्ययन किया। जिसके अर्न्तगत सर्वप्रथम पन्द्रह (15) आसन उनकी साधना की क्रिया विधि एवं शवआसन की प्रक्रिया, हठयोग अभ्यास का क्रम, योग में **मिताहार का स्वरूप** योगियों कि लिए पथ्य एवं अपचय भोजन के नियम, तथा योगांगअनुष्ठान की अवधि में प्राप्त की जाने वाली सिद्धियों का अध्ययन किया। तदुपरांत योगांग अनुष्ठान की अविधि का अध्ययन अपने किया।

हठयोग प्रदीपिका के द्वितीय उपदेश के अर्न्तगत इकाई 22 में आपने वायु (प्राण) एवं नाड़ी एवं नाड़ी शुद्धि का विस्तार से अध्ययन किया। **वायु** (प्राण) साधना एवं उन्मनीभाव के सम्बंध में भी आपने जानकारी प्राप्त की। हठयोग प्रदीपिका के अनुसार **नाड़ी शुद्धि** एवं **प्राणसंग्रहण** की व्याख्या का अध्ययन भी आपने किया। नाड़ियों के अन्तः शोधन की प्रक्रिया से भी आप अवगत हुऐ। नाड़ियों के बर्हिशोधन के अर्न्तगत आपने षटकर्मो धौती, वस्ति, नेत्ति, त्राटक नौली एवं कपाल भांति का विस्तार पूर्वक अध्ययन किया एवं उनसे प्राप्त होने वाले लाभों की जानकारी प्राप्त की है।

प्राणायाम प्रकरण के तहत् इकाई 23 के अर्न्तगत आपने प्राणायाम, मुद्रा बन्ध, ग्रंथियाँ एवं कुण्डलिनी प्रबोध का अध्ययन किया एवं इनके अभ्यास की क्रिया विधि एवं उनसे प्राप्त होने वाले लाभों का भी आपने अध्ययन किया। इस प्रकरण में आपने कुंभक (प्राणायाम) के आठ भेदों का अध्ययन किया ये भेद है– (1) सूर्य भेदन (2) उज्जायी (3) सीत्कारी (4) शीतली (5) भस्त्रिका (6) भ्रामरी (7) मूर्च्छा एवं (8) प्लाविनी। इसी प्रकरण में आपने त्रिबन्धों का अध्ययन एवं हठयोग साधना में उनके द्वारा प्राप्त होने वाले लाभों का भी अध ययन आपने प्राप्त किया । इसी प्रकरण में प्राणायाम के भेदों का वर्गीकरण भी आपने देखा जिसके अर्न्तगत प्रथम भेद में (1) पूरक (2) रेचक (3) कुंभक के रूप में वर्गीकरण किया गया है तथा दूसरे वर्गीकरण में (1) सहित कुंभक एवं (2) केवल कुंभक का अध्ययन आपने किया है।

हठयोग साधना के उत्तर अंगों की साधना के अर्न्तगत इकाई–24 में आपने **नांद–बिन्दु कला** एवं समाधि की विस्तृत व्याख्या का अध्ययन किया। समाधि प्रकरण में आपने **मन और प्राण का लय** किस प्रकार किया होता है तथा इस हेतु दो अन्य मुद्राओं शाम्भवी एवं उन्मनी का अध्ययन किया। नादानुसंधान एवं उनकी विभिन्न अवस्थाओं का भी परिचय आपने इस इकाई में अध्ययन किया।

यौगिक चिकित्सा के रूप में इकाई 25 के अर्न्तगत आपने यौगिक चिकित्सा के सिद्धांत, योग साधना में विकार उत्पत्ति के कारण एवं सामान्य रोग एवं उनकी चिकित्सा हेतु प्राण एवं प्राण क्रिया के संचलन का अध्ययन आपने किया। योग चिकित्सा में त्रिदोष सिद्धांत का भी आपने अध्ययन किया। इस प्रकार आप हठयोग साधना में स्वात्माराम कृत योग के विशिष्ट ग्रंथ हठयोग प्रदीपिकि के सभी पहुलुओं का सम्यक ज्ञान प्राप्त कर सकने में सक्षम हुये है। साथ ही इन विभिन्न अंगों की साधना की प्रायोगिक आवश्यकता भी आपके

लिये अनिवार्य रूप से तय की गई है जिससे आप हठयोग का व्यवहारिक वास्तविक ज्ञान सम्पन्न बन सकें।

7.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

प्रश्न 1 हठयोग प्रदीपिका के किन्ही पाँच संस्करणों को बतलाइयें ?

उत्तर– हठयोग प्रदीपिका के पाँच संस्करणों का विवरण निम्नलिखित है–

(1) हठयोग प्रदीपिका ग्रंथ का प्रथम प्रकाशन बम्बई थ्योसोफिकल फन्ड के द्वारा 1893 ई0 में तुकाराम तात्या द्वारा करावाया गया ।

(2) हठयोग प्रदीपिका का संशोधित एवं परिवर्धित द्वितीय संस्करण थ्योसोफिकल पब्लिशिंग हाऊस (अड़ियार) द्वारा प्रकाशित किया गया।

(3) लक्ष्मीवेकटेश्वर प्रेस बम्बई द्वारा सवंत् 1981 में ज्योत्सना संस्कृत टीकायुक्त मूलपाठ का प्रकाशन किया गया।

(4) सन् 1931 में अंग्रजी अनुवाद सहित पंचम सिंह द्वारा रचित ग्रंथ का प्रकाशन श्री ललित मोहन बसु द्वारा इलाहाबाद से करवाया गया।

(5) 1940 में ज्योत्सना टीका सहित अग्रेंजी में एक संस्करण थ्योसोफिकल पब्लिशिंग हाऊस अडियार (मद्रास) में प्रकाशित करवाया।

उपरोक्त पाँच महत्वपूर्ण स्तरीय संस्करण है।

प्रश्न 2 स्वात्माराम जी के अनुसार आहार का स्परूप स्पष्ट कीजियें ?

उत्तर– स्वात्माराम जी ने आहार के स्वरूप को स्पष्ट करते हुये कहा है कि आहार **मिताहार** होना चाहिये। मित से उनका आशय **सीमित** या **परिमित** आहार अर्थात् भोजन से है। एक व्यक्ति द्वारा जितनी भोजन ग्रहण की क्षमता है उससे कुछ कम मात्रा में ही भोजन ग्रहण करना **मिताहार** है। इसका स्परूप निम्नलिखित है।

मिताहार स्निग्ध, (घी से चुपड़ा हुआ) होना चाहिये। मसाले आदि का प्रयोग इतना कम किया जाय कि भोजन की स्वाभाविक मधुरता बनी रहे। व्यक्ति की भोजन ग्रहण करने की अधिकत्तम मात्रा (पूर्ण खुराक) में से पेट का आधा अर्थात् (1/2) भाग भोजन से भरें, एक चौथाई (1/4) भाग जल से एवं शेष एक चौथाई (1/4) भाग वायु के विचरण के लिए खाली छोड़ दे।

भोजन स्वाद के लिए नहीं बल्कि ईश्वर–प्रीत्यर्थ करना चाहिये यही मिताहार का स्वरूप है। इससे योगाम्यास के दौरान स्फूर्ति एवं हल्कापन बना रहाता है। और उत्साह पूर्वक योगसाधना में सफलता प्राप्त होने की स्थिति बनती है।

प्रश्न 3 नाड़ियों के बर्हिशोधन हेतु हठप्रदीपिका में बताये विधान पर प्रकाश डालिये ?

उत्तर– नाड़ियों के बर्हिःशोधन का तात्पर्य स्थूल शरीर की शुद्धि से है। जिस साधक में मेद (चर्बी) और कफ (दोष) की अधिकता हो, उसे नाड़ियों के बर्हिःशोधन आवश्यक रूप से करना होता है। जिससे शरीर का भेद एवं त्रिदोष दूर हो जाते है। इस हेतु हठयोग प्रदीपिका में निम्नलिखित षटकर्म बतलाये गये है–

(1) धोती (गजकरणी क्रिया इसी के अर्न्तगत है।)
(2) वस्ति
(3) नेत्ति
(4) त्राटक
(5) नौली
(6) कपालभाँति

इस प्रकार हठयोग प्रदीपिका में इन छः कर्मो का विधान नाड़ियों के बर्हिःशोधन हेतु बतलायें गये है।

प्रश्न 4 हठयोग प्रदीपिका के अनुसार कुंभक (प्रणायाम) के प्रकार बतलाईये।

उत्तर– हठयोग प्रदीपिका में हठ्योग की साधना का आधार प्राण साधना है। स्वात्माराम जी नें कुंभक (प्राणायाम) को आठ प्रकारों में वर्गीकृत किया है। ये निम्नलिखित है–

(1) सूर्यभेदन कुंभक
(2) उज्जायी कुंभक
(3) सीत्कारी कुंभक
(4) शीतली कुंभक
(5) भस्त्रिका कुंभक
(6) भ्रामरी कुंभक
(7) मूर्च्छा कुंभक
(8) प्लाविनी कुंभक

हठयोग प्रदीपिका में इस वर्गीकरण हेतु निम्न श्लोक प्राप्त होता है–

सूर्यभेदन युज्जायीमुज्जायी सीम्कारी शीतली तथा।
भस्त्रिका भ्रामरी मूर्च्छा प्लाविनीत्यष्टकुंभकाः।।

(ह.प्र. 2/44)

प्रश्न 5 नादानुसंधान की चार अवस्थाओं पर प्रकाश डालियें ?

उत्तर– हठयोग प्रदीपिका में महायोगी गोरखनाथ जी द्वारा उपदिष्ट नाद साधना का विवेचन किया गया है। अदिनाथ शिवजी ने लय के सवा लाख (1 1/4 लाख) प्रकार बतलाये है। इन प्रकारों में श्रेष्ठतम प्रकार नादानुसंधान को बतलाया है।

नादानुसंधान हेतु मुक्तासन (सिद्धासन) में शाम्भवी मुद्रा से दाहिने कान में नाद का श्रवण करना चाहिये। इस हेतु हाथ से दोनों कान, दानों नासारन्ध्रों और मुख को हाथ की अंगुलियों से निरोध करना चाहिये। इस प्रकार करने से सुषुम्ना मार्ग में नाद सुनाई देता है। इसे **षण्मुखी मुद्रा** भी कहते है। इस नाद साधना की उत्तरोत्तर चार अवस्थायें है।

(1) आरम्भावस्था
(2) घट अवस्था
(3) परिचय अवस्था
(4) निष्पति अवस्था

इन अवस्थाओं में उत्तरोत्तर नादानुसंधान में प्रगति होती जाती है। तथा विविध ध्वानियाँ सुनाई पड़ती है।

प्रश्न 6 यौगिक चिकित्सा का सिद्धांत विस्तार से समझाइये ?

उत्तर– यौगिक चिकित्सा का सिद्धांत मानव शरीर की निरोगता हेतु आयुर्वेद के **त्रिदोष सिद्धांत** पर अवधारित है। आयुर्वेद का त्रिदोष सिद्धांत समस्त व्याधियों को तीन बड़े भागों में बाँटता है। यह वर्गीकरण निम्नांकित है–

(1) वात विकार जन्य रोग।
(2) पित्त विकार जन्य रोग।
(3) कफ विकार जन्य रोग।

इन त्रिदोषों या त्रिधातुओं में विषमताएँ होने से रोगों की उत्पत्ति होती है। इन तीनों विकारों में सबसे ज्यादा विकार वातदोष से होते है क्योंकि बात विकार अन्य दोनों विकारों के साथ भी जुड़ा ही रहता है। केवल पित्त या केवल कफ जन्य रोग नही होते है। किन्हीं भी विकारों में वात का कुछ न कुछ अंश अवश्य विद्यमान

रहता है। यहां यह भी स्पष्ट समझ लेना चाहिये कि केवल वात जन्य रोग हो सकते है।

इस सिद्धांत की मुख्य मान्यता यह है कि मानव शरीर मुख्यतः प्राण संचार पर ही विद्यमान रहता है। सम्पूर्ण शरीर का स्वास्थ्य या आस्वास्थ्य मुख्य रूप से प्राण संचार की सही या गलत प्रक्रिया पर ही निर्भर होता है। इस कारण से स्वात्माराम चूकिं व्यावहारिक योगी होने के कारण इस तथ्य को नजरअदांज नहीं कर सकते थे। इस कारण उन्होंनें योग के गलत अभ्यास से होने वाले रोगों से मुक्ति के लिए प्राण वायु) की गति के नियमन का सम्यक् रूप से निरूपण प्रमुखता के साथ स्पष्ट किया है।

7.11 पारिभाषिक शब्दावली

(1) **हठयोगः**—योग की वह पद्धति जिसमें प्रथम शरीर—शुद्धि द्वारा आत्मिक पूर्णत्व की ओर (राजयोग) बढ़ते हैं।

(2) **हठप्रदीपिकाः**—स्वात्माराम योगीन्द्र द्वारा रचित हठयोग का सबसे व्यावहारिक एवं प्रमाणिक ग्रंथ।

(3) **मूर्च्छाः**— प्राणायाम का एक प्रभेद जिसमें मन को अचेतन करने की क्षमता है।

(4) **यौगिक चिकित्साशास्त्र (ल्वहपब.जीम तंचल)**:— यौगिक अभ्यासों (आसन प्राणायाम मुद्रा बंध तथा (षटकर्मो) द्वारा चिकित्सा करने का विज्ञान।

(5) **बन्धः**— संकुचित पेशियों की एक स्थल पर अचल संरचना या स्थिति।

(6) **नाड़ी शुद्धिः**—आध्यात्मिक विकास के लिए आवश्यक शरीर क्रियात्मक सन्तुलन।

(7) **नाड़ी** (तन्त्रिका छमतअम) **मस्तिष्क और मेरू रज्जु** (चपदंस बवतके) को शरीर के अन्य अंगों से जोड़ने वाले रज्जु या सूत्रसम संरचना। जिनसे प्राणी को विविध संवेदनाओं का ज्ञान होता है। और वह जो हलचल करता है। उसके पीछे ये नाड़ियाँ ही कारणीभूत होती है। तथा शरीर की समस्त ऐच्छिक और अनैच्छिक क्रियाओं का सम्पादन करती है।

(8) **ग्रंथियांः**—शरीर के अन्दर वे गांठदार अवयव जो विविध प्रकार के स्त्राव निकालते है जो विविध क्रियाओं हेतु उत्प्रेरक होते है।

(9) **ग्रन्थित्रयः**—प्राणों के इड़ा पिंगला एवं सुषम्ना नाड़ियों में अबाधगति से संचरण करने में तीन ग्रन्थियां बाधक होती है, इन्हें क्रमशः ब्राह्यग्रंथि (हृदय प्रदेश) विष्णुग्रन्थि (कंठ प्रदेश) तथा रूद्रग्रंथि (भूमध्य प्रदेश) कहते है। यही ग्रंथित्रय है।

(10) **पंचशरीरः**— पंचकोशों के समान ही मनुष्य शरीर पंचशरीर में बटाँ हुआ है। ये है— (1) स्थूलशरीर (चेलेपबंस ठवकल) (2) सूक्ष्मशरीर (जतंस ठवकल) (3) कारण शरीर (ब्नंस ठवकल) (4) अतीन्द्रियशरीर (म्जीमतपब ठवकल) एवं मानस शरीर (डमदजंस ठवकल)।

7.12 उपयोगी सन्दर्भ ग्रंथ

(1) हठयोग प्रदीपिका — **स्वात्माराम योगीन्द्रविरचिता**
क्षेमराज— श्री कृष्णदास प्रकाशन
बम्बई—1992

(2) हठयोग प्रदीपिका — **योगीन्द्र स्वात्मारामकृत**
टीकाकार
रामलाल श्रीवास्तव
गोरखनाथ मंदिर गोरखपुर (उ.प्र.)

(3) योगप्रदीपिका

मोतीलाल बनारसीदास
ब्रम्हचारी याज्ञवलक्य कृत हिन्दी

व्याख्या

प्रकाशन–वाराणासी 1973

;4द्ध ज्ञम भ।ज्ञ।ल्ळ।
च्त।क्प्व्ज्ञ।

ै ट।ज्ड।त।ड।
ॅपजी जीम ब्वउउमदजंतल श्रलवजेदं वि
ठत।भ्ड। छ।छै।ण
जीम ।कलंत सपइतंतल ंदक त्मेमंतबी

बमदजतमण

।कलंत बैमददंप. 1972ण

;5द्ध भ्ंजींचतंकपचपां

ै ट।ज्ड।त।ड।
म्कपजमक इलूॅउप क्प्ळ।डठ।त।श्रप
।दक च्जण त्पैण ।वांरम
झंपअंसलंकींउंएै ण्डण्ल्ण्डणै उपजप
स्वदंअसं क्पेजतपबज च्नदम . 410403
2दक म्कप . 1998ण

;6द्ध भ्ंजीं ल्वहं च्तंकपचपां
स्पहीज वद भ्ंजीं ल्वहं

ै ट।ज्ड।त।ड।
;व्उ उमदजंतल इलद्ध
ूॅउप डनाजप इवकीं दंदकं
न्दकमत जीम ळनपकंदबम वि
ूॅउपै जलंददक ैतूंजप
ल्वहं चनइसपबंजपवद ज्तनेजए

डनदहमतए

ठपींत प्दकपं
3तक मकपजपवद 1998ण

;7द्ध ैजनकपमे पद प्दकपं स्पजमतंतल ापेजवतल

च्ण्ज्ञण ळवकम
ठींतंजपलं टपकलं ठींअंदण
ठवउइंल . 1953ण

;8द्ध ैमबतमजे वि भ्ंजीं टपकलं

क्तण टपरंलमदकतं च्तंजंच
ैज्ञल थ्वनदकंजपवद
चैपसंकमसचीपं च्मददेल सअंदपं
न्पैण ।ण

;9द्ध भ्ंजींलवहं च्तंकपचपां

ूॅउप ज्ञतचंसंअंदंदकं
च्नइ रूौतप ।तचंसं डनदपडंदकंस
ोतंउं श्रनदंहंती हनरतंज प्दकपंण

;10द्ध जीम भ्ंजीं लवहं च्तंकपचपां

च्ंदबींउै पदही
व्तपमदजंस इववो त्मचतपदज
ब्वतचवेंजपवदए क्मसीपए प्दकपंण

त्रत्रत्रत्र00त्रत्रत्रत्र

खण्ड – 8

घेरण्ड संहिता का परिचय

महर्षि घेरण्ड

खण्ड संरचना

पृष्ठ

क्र.

8.0 प्रस्तावना ———————————————————— 127

8.1 उद्देश्य ———————————————————— 127–128

8.2 विषय प्रवेश ———————————————————— 128

8.3 इकाई 26 : घेरण्ड एवं ग्रंथ का परिचय ———————— 128–132

8.3.1 महर्षि घेरण्ड का परिचय

8.3.2 घेरण्ड संहिता की सैद्धांतिक विषय वस्तु

8.4 इकाई 27 : घेरण्ड संहिता में क्रिया एवं आसनों का स्वरूप ——— 133–150

8.4.1 घेरण्ड संहिता में क्रिया का स्वरूप

8.4.2 घेरण्ड संहिता में आसनों का स्वरूप

8.5 इकाई 28 घेरण्ड संहिता में मुद्रा, कुण्डलिनी, प्रत्याहार, प्राणायाम – 151–164
एवं नाड़ी शुद्धि ध्यान एवं समाधि।

8.5.1 घेरण्ड संहिता में मुद्रा

8.5.2 घेरण्ड संहिता में कुण्डलिनी

8.5.3 घेरण्ड संहिता में प्रत्याहार

8.5.4 घेरण्ड संहिता में प्राणायाम

8.5.5 घेरण्ड संहिता में नाड़ीशुद्धि

8.5.6 घेरण्ड संहिता में ध्यान

8.5.7 घेरण्ड संहिता में समाधि

8.6 सारांश ———————————————————— 165–166

8.7 बोध प्रश्नों के उत्तर ———————————————— 167–169

8.8 उपयोगी सन्दर्भ ग्रंथ ———————————————— 170

खण्ड – 8 घेरण्ड संहिता का परिचय

खण्ड परिचय :

प्रश्न पत्र द्वितीय हठयोग विज्ञान के अन्तर्गत खण्ड 8 में महर्षि घेरण्ड द्वारा रचित हठयोग के अत्यंत लोकप्रिय ग्रंथ घेरण्ड संहिता का गुरू शिष्य संवाद के रूप में आप यहाँ अध्ययन करने जा रहे है। यह ग्रंथ मूलतः संस्कृत भाषा में लिखा गया है। योग के पारम्परिक ग्रंथों के बीच धरेण्ड संहिता सामान्यतः सबसे अर्वाचीन योग का ग्रंथ है। इस ग्रंथ को इस खण्ड में तीन इकाईयों 26, 27 एवं 28 में बाँटकर इसका अध्ययन किया जाता है। इकाई 26 में महर्षि घेरण्ड एवं उनके इस घेरण्ड संहिता नामक ग्रंथ का परिचय दिया गया है। इकाई 27 में घेरण्ड संहिता में वर्णित क्रिया और आसनों के स्वरूप की वृहद विवेचना की गई है। तथा इकाई 28 में घेरण्ड संहिता में उपदिष्ट मुद्रा, कुण्डलिनी, प्रत्याहार, प्राणायाम, एवं नाड़ी शुद्धि तथा ध्यान एवं समाधि ा का सहज विवेचन किया गया है। इस खण्ड के अध्ययन से आप घेरण्ड महर्षि के हठयोग सम्बन्धी व्यवहारिक ज्ञान के विशद स्वरूप से परिचित हो सकेगें।

8.0 प्रस्तावना

खण्ड 8 में आप महर्षि घेरण्ड द्वारा ग्रंथ घेरण्ड संहिता का विशद् अध्ययन प्राप्त करेगें। सात उपदेशों (अध्यायों) में 350 श्लोकों वाले इस ग्रंथ में महर्षि घेरण्ड ने अपने शिष्य चण्डकापालिक को जो उपदेश दिया वह **घेरण्ड संहिता** के नाम से जाना जाता है। यह उपदेश छोटा होने पर भी अध्यात्मिक एवं तांत्रिक रूप में बड़ा ही सारगर्भित एवं व्यवहारिक कसौटी में कसा हुआ है। इस छोटे ग्रंथ में योग जिज्ञासुओं को गागर में सागर भरा हुआ प्राप्त होता है इसी कारण योग साधकों जिज्ञासुओं का यह बहुत लोक प्रिय ग्रंथ है।

इस ग्रंथ में वर्णित प्रणयोग योग की तांत्रिक पद्धति के समरूप है जो कि साधरण साधक को थोड़ा कठिन प्रतीत होता है। इस ग्रंथ में हठयोग कि क्रियाओं का वर्णन करते हुऐ षटकर्म के प्रकार, आसन, मुद्रा, प्रत्याहार, प्राणायाम, ध्यान और समाधि का जैसा निरूपण हुआ है वह अपने आप में विशिष्ट एवं व्यवहारिक है। प्रायोगिक धरातल पर भी योग साधकों जिज्ञासुओं के लिए यह अत्यन्त उपयोगी है।

महर्षि घेरण्ड मुनि द्वारा प्रस्तुत योग का यह अनुशासन उनके शिष्य चण्डकापालिक को उपदेश स्वरूप है। हलांकि महर्षि घेरण्ड का परिचय भी अन्य अनेक ऋषियों की भाँति स्पष्ट उपलब्ध नहीं है। किन्तु चण्डकापालिक का नाम अन्य हठयोग ग्रंथों जैसे हठयोग प्रदीपिका आदि में योग–प्रवर्तक आचार्यो की कोटि में रखा गया है।

8.1 उद्देश्य

खण्ड 8 के अन्तर्गत इकाई 26, 27 एवं 28 के अध्ययन का उद्देश्य हठयोग के स्वरूप एवं साध ाना की क्रिया विधि का महर्षि घेरण्ड के अनुसार निम्नलिखित रूप में विस्तार पूर्वक ज्ञान करवाना है जिससे आप समझ सकेगें कि –

- घेरण्ड संहिता के विषय वस्तु एवं ग्रंथकार कौन है।
- घेरण्ड के अनुसार धटस्थ योग के अंग कितने है और उनमें क्या समानता अथवा भिन्नता है ?
- शुद्धि क्रियाओं को योग के प्रथम अंग के रूप में स्थान क्यों दिया गया है।
- घेरण्ड के धटस्थ योग के सप्तांगों के अन्य अंगों जैसे आसन, मुद्रा, प्रत्याहार, प्राणायाम ध्यान और समाधि का स्वरूप एवं प्रक्रिया क्या है ?
- आत्म ज्ञान की प्राप्ति में योग की शुरूआत कहाँ से और क्यो की जाय।

- आप इन उद्देश्यों को इन इकाईयों में अध्ययन कर घेरण्ड के धटस्थ योग के सभी अंगों को उचित क्रम में समझ कर उनमें तुलनात्मक उपयोगिता स्वयं ही निर्धारित कर सकने में सफल हो सकेगें एवं हठयोग साधना के वास्तविक स्वरूप को प्राप्त करने में सक्षम हो सकेगें।

8.2 विषय प्रवेश

इस खण्ड में जिन तीन इकाईयों का अध्ययन आप करने जा रहे है। इन सभी का आधार महर्षि घेरण्ड के द्वारा रचित हठयौगिक ग्रंथ **घेरण्ड संहिता** है। इस ग्रन्थ की विषय वस्तु संवाद परक है। इसमें गुरू घेरण्ड अपने शिष्य चण्डकापालिक के द्वारा योग साधना के विषय में पूछे गये विभिन्न प्रश्नों के उत्तरों का क्रमिक निरूपण है। गुरू शिष्य **संवाद** को विधिवत् ग्रंथ के रूप में पिरोया गया है।

इस ग्रंथ में कुल सात उपदेशों (अध्यायों या काण्डों) में कुल मिलाकर 102 एक सौ दो अभ्यासों का व्यवस्थित वर्णन किया गया है। इन अभ्यासों का संक्षिप्त वर्णन निम्नलिखित है।

(1) बाह्यः शरीर की शुद्धियों हेतु 21 क्रियायें।
(2) शरीर की दृढ़ता और स्थिरता हेतु 32 आसन।
(3) प्राणशक्ति के प्रवाह के नियंत्रण हेतु 25 मुद्रायें।
(4) मन को शान्त एवं अर्न्तमुखी करने हेतु 5 प्रकार के प्रत्याहार।
(5) प्राणों को जाग्रत करने हेतु मंत्रों सहित 10 प्राणायाम।
(6) ध्यान के तीन प्रकारों (1) बहिरंग ध्यान (2) अन्तरंग ध्यान एवं (3) एकचित्त ध्यान।
(7) आत्मज्ञान की प्राप्ति हेतु इन छः अंगों की साधना उपरांत आत्मा को अपने **स्वा** में स्थित हो जाने हेतु समाधि का वर्णन।

इस प्रकार कुल मिलाकर 102 अभ्यासों से सात आयामों में **धटस्थ योग** को पूर्ण किया गया है। यह ग्रंथ अपने आप में अन्य यौगिक ग्रंथों की अपेक्षा अधिक व्यावहारिक एवं सम्यक स्वरूप में प्रतिपादन है।

सारांश में घेरण्ड महर्षि ने चण्ड कपालिक को सात अंगों द्वारा शरीर की शुद्धि ह` त **क्रिया** फिर **आसनों** से दृढ़ता, मुद्रा से स्थिरता, प्रत्याहार से धीरता, प्राणायाम से शरीर की लघुता या हल्कापन और ध्यान से आत्मदर्शन तथा समाधि से सर्वथा निर्लिप्त अवस्था को प्राप्त हो मुक्ति को प्राप्त किया जाता है। इस प्रकार घेरण्ड ने अपने योग के एक–एक अंग के अभ्यास से उत्तरोत्तर बढ़ते हुऐ अन्त में योग के चरम लक्ष्य **समाधि** और समाधि के द्वारा **मुक्ति** प्राप्ति का मार्ग बताया गया है।

8.3 इकाई 26 : घेरण्ड एवं ग्रंथ का परिचय

8.3.1 महर्षि घेरण्ड का परिचय

इस इकाई के अर्न्तगत आप महर्षि घेरण्ड के बारे में जानकारी प्राप्त करेगें। योगा चार्यो की परम्परा में महर्षि घेरण्ड ऋषि अत्यन्त प्राचीन योगी माने जाते है इनके जन्म् समय एवं स्थान का अभी तक पता नहीं चल सका है। राजा चण्डकपालिक जो एक धर्मात्मा एवं आध्यात्मिक व्यक्ति था। उसके योग विषयक प्रश्नों का एवं महर्षि घेरण्ड के उपदेशों का संग्रह ही घेरण्ड संहिता के रूप में प्राप्त होता है। घेरण्ड संहिता की उपलब्ध पाण्डुलिपियों में सबसे प्राचीन पाण्डुलिपियों सन् 1804 की उपलब्ध होती है।

मूलतः संस्कृत भाषा में निबद्ध पारम्परिक योग ग्रंथों में घेरण्ड संहिता सामान्यतः सर्वाधिक अर्वाचीन कृति है। विभिन्न स्त्रोतों से प्राप्त हस्तलेखों सर्वाधिक अर्वाचीन कृति है। विभिन्न स्त्रोतों से प्राप्त हस्तलेखों तथा विविध तथ्यों के परिशीलन से इस ग्रंथ की प्राचीनता के साक्ष्यों के साथ इस ग्रंथ का काल निध

ार्रिण 1650 ई0 से 1750 ई. के मध्य का समय परिलक्षित होता है। यह ग्रंथ हठयोग के एक स्तरीय एवं प्रमाणिक ग्रंथ के रूप में मान्य किया जाता है। महर्षि घेरण्ड के योग को **सप्तांग योग** कहा जाता है। क्योंकि इन्होंने प्रथम बार योग के सात अंगों का व्यावहारिक निरूपण किया। सप्तांगों में हठप्रदीपिका जैसे हठयोग के मानक ग्रंथ से चार में से केवल तीन अंगों को स्वीकार किया गया है। तथा महर्षि पंतजलि के **अष्टांग योग में** से इनके सप्तांग योग में केवल पांच अंगों को स्वीकार किया गया है। ये सप्तांग (1) क्रिया (2) आसन (3) मुद्रायें (4) प्रत्याहार (5) प्राणायाम (6) प्रत्याहार और (7) समाधि। इनकी अपनी मौलिक विशेषता और व्यावहारिक पारदर्शिता को दर्शाती है। महर्षि घेरण्ड एक वैष्णव परम्परा के सन्त भी थे। क्योंकि उनके ग्रंथ में अनेक श्लोक यह दर्शाते है जैसे – सप्तम उपदेश के श्लोक 18 से यह स्पष्ट भी होता है।

जले विष्णुः स्थले विष्णुर्विष्णुः पर्वतमस्तके।
ज्वालामाला कुले विष्णुः सर्वं विष्णुमयं जगत्।।
सर्वं ब्रह्म विजानीयत् सर्वं पश्यति चात्मनि।।

तथा कुछ स्थानों में नारायण की चर्चा की गई है जिससे ये वैष्णव सिद्धांत के उपासक प्रतीत होते है।

8.3.2 घेरण्ड संहिता की सैद्धांतिक विषय वस्तु

8.3.2.1 सिद्धांत

हठयोग के कई ग्रंन्थ हैं। जिनमें हठयोग साधना पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। उदाहरणार्थ, हठयोग, प्रदीपिका, गोरक्ष पद्धति, शिवसंहिता, इत्यादि। इन सभी ग्रंथों की बीच घेरण्ड संहिता अपने आप में पूर्ण मौलिकता तथा अपनी विशिष्ट शैली के कारण अत्याधिक लोकप्रिय ग्रंथ बन पड़ा है। हठयोग की क्रियाओं का बड़ा सहज और सर्वाधिक उपयुक्त विवरण घेरण्ड संहिता की एक और विशेषता है। षटकर्म के प्रकार, आसन, मुद्रा, प्राणायाम के भेदों का ऐसा निरूपण किसी ग्रंथ में प्राप्त नहीं होता।

घेरण्ड संहिता तान्त्रिक साधना के मत का ग्रंथ है तान्त्रिक मत से किस प्रकार समाधि–लाभ होता है, इसे ही लक्ष्य करके इसमें बताया गया है। क्योंकि तान्त्रिकों की साधना में योग सर्वोपरि एवं सभी प्रकार के योगों का समन्वय है। इसके छटवें उपदेश में जो स्थूल–सूक्ष्म एवं गुरू ध्यान का जो प्रकार दिया गया है वह तान्त्रिक परम्परा के अनुरूप है। योग के आधार ग्रंथ पंतजलि योग सूत्र में लय–योग एवं कुण्डलिनी योग का निरूपण नहीं है। कुण्डलिनी योग तान्त्रिकों की प्रधान साधना है, जिसे घेरण्ड संहिता में ब्यापक रूप से स्पष्ट किया गया है। महर्षि पंतजलि अपने योग सूत्र के एक सूत्र **जन्मौषधि मन्त्र तपः समाधिजाः सिद्धयः** में मन्त्र से भी सिद्धि मानते है। एक अन्य श्लोक में **तस्य वाचकः प्रणवः तज्जपस्तदर्थ भावनम्** सूत्र में भी मन्त्र साधना का विषय स्पष्ट होता है। महर्षि घेरण्ड ने भी धरेण्ड संहिता में **आज्ञा चक्र** में प्रणव का ध्यान **अजपाजप** एवं तत्वों के मन्त्रों का उल्लेख किया है। गुरू ध्यान में सभी टीकाओं में तथा मूल में द्वादशाक्षर गुरूमंत्र का ग्रहण किया गया है। प्राणायाम की साधना मुख्य होने से यह संहिता हठयोग साधना के अन्तर्गत विभक्त की गई है। अन्त में हठयोग भी राजयोग में ही पूर्णता प्राप्त करता है अर्थात राजयोग में ही पर्यवसान होता है, तथापि पंतजलि –योग दर्शन से इस संहिता का राजयोग भिन्न है। जहाँ पंतजलि मत सांख्य पृष्ठभूमि में द्वैतवादी है। वहीं यह **अद्वैतवादी सिद्धांत** का है।

अद्वैतवाद सिद्धांत में जीव की सत्ता ब्रह्म सत्ता से सर्वथा भिन्न नहीं है। **सो s हं** मंत्र के अनुसंधान से जीवब्रह्म भाव को प्राप्त होता है। ऐसा ही सिद्धांत तान्त्रिकों का भी है। ऐसा ही श्री गोरखनाथ जी ने अपने ग्रंथों योगबीज एवं महार्थमंजरी में स्वीकार किया है। कश्मीर के **शैव–दर्शन** में भी इसी सिद्धांत (अद्वैतवाद) को मान्यता दी गई है। घेरण्ड संहिता में कुल सात (07) उपदेशों में जो कि 102 अभ्यासों एवं 350 श्लोकों में निबंध है सभी बातें स्पष्ट कर दी गई है।

8.3.2.2 सप्तांग विषय क्षेत्र

महर्षि घेरण्ड द्वारा उपदेशित सप्तांग योग का विषय क्षेत्र सैद्धांतिक युगानुकूल एवं व्यावहारिक रूप में अत्यंत स्पष्ट है। इस सप्तांग क्षेत्र को संक्षिप्त रूप निम्नलिखित प्रकार से समझा जा सकता है।

(1) प्रथम अंग शोधन (शुद्धि क्रिया) – घेरण्ड संहिता में सबसे पहले शरीर शुद्धि की क्रियाओं की चर्चा की गयी है, जिन्हें षटकर्म कहा जाता है। इनमें प्रमुख है नेति–नाक की सफाई, धौति–पेट के ऊपरी भाग और भोजन नली की सफाई, वस्ति–आँतों की सफाई, जिससे हमारे शारीरिक विकार दूर हो जाएँ, शारीरिक विकार उत्पन्न ही न हों, नौलि–पेट, गुर्दे इत्यादि का व्यायाम, कपालभाति–प्राणायाम का एक प्रकार, और त्राटक–मानसिक एकाग्रता की एक विधि। षटकर्मों या (शुद्धिक्रिया) के ये **छः अंग** माने जाते हैं। शरीर शुद्धि की इन क्रियाओं को महर्षि घेरण्ड ने योग का पहला आयाम माना है। इसके बाद आसनों की चर्चा की है।

(2) द्वितीय अंग दृढ़ता (आसन) :– महर्षि घेरण्ड ने मुख्यतः ऐसे ही आसनों की चर्चा की है, जिनसे शरीर को दृढ़ता एवं स्थिरता प्राप्त होती है। यहाँ पर भी आसनों का उद्देश्य शरीर पर चूर्ण नियन्त्रण के पश्चात् ऐसी स्थिति को प्राप्त करना है, जिसमें शरीरिक क्लेश, या दर्द उत्पन्न न हो।

(3) तृतीय अंग स्थैर्य (मुद्रा) :– तीसरे आयाम के अन्तर्गत वे मुद्राओं की चर्चा करते हैं। मुद्राएँ अनेक प्रकार की होती हैं। महर्षि घेरण्ड ने पचीस मुद्राओं का वर्णन किया है, जिनके द्वारा हमारे भीतर प्राणशक्ति के प्रवाह को नियन्त्रित किया जा सकता है। उनका कहना है कि प्राण हमारे शरीर के भीतर शक्ति और ताप उत्पन्न करते हैं। उच्च साधना में जब व्यक्ति लम्बे समय तक एक अवस्था में बैठता है, तो उसके शरीर से गर्मी निकलती है। शरीर का तापमान कम हो जाता है, क्योंकि हमारे भीतर प्राणशक्ति नियन्त्रित नहीं है। लेकिन मुद्राओं के अभ्यास द्वारा हम प्राणशक्ति या ऊर्जा को अपने शरीर में वापस खींच लेते हैं, उसे नष्ट नहीं होने देते। प्राण को शरीर के भीतर रोकने के लिए महर्षि घेरण्ड ने मुद्राओं का वर्णन किया है।

(4) चतुर्थ अंग धैर्य (प्रत्याहार) :– मुद्राओं के बाद चौथे आयाम के रूप में उन्होंने इस उद्देश्य के साथ प्रत्याहार का वर्णन किया है कि जब शरीर शान्त और स्थिर हो जाए, प्राणों का व्यय न हो, वे अनियन्त्रित न रहें, हमारे नियन्ण में आ जायें, तब मन स्वतः अन्तर्मुखी हो जाएगा। पहले हम अपने शरीर को शुद्ध कर लेते हैं। शरीर के विकारों को हटा देते है। उसके बाद आसन में स्थिरता प्राप्त करते हैं। तत्पश्चात प्राण को सन्तुलित एवं नियन्त्रित करते हैं, तो चौथे में मन स्वाभाविक रूप से अन्तर्मुखी हो जाता है।

(5) पंचम अंग लाघव (प्राणायाम) :– प्रत्याहार के बाद पाँचवे आयाम में उन्होंने प्राणायाम के अभ्यास को जोड़ा है। प्राणायाम के जितने अभ्यास घेरण्ड संहिता में बतलाए गये हैं, उनका सम्बन्ध मंत्रों के साथ है कि यदि व्यक्ति प्राणायाम करे तो मन्त्रों के साथ। प्राणायाम के अभ्यास में हम श्वास–प्रश्वास को अन्दर–बाहर जाते हुए देखते हैं और उनकी लम्बाई को समान बनाते हैं। महर्षि घेरण्ड ने भी यही पद्धति अपनायी है, लेकिन गिनती के स्थान पर मन्त्रों का प्रयोग किया है। उनका कहना है कि प्रत्याहार की अवस्था में, जब मन अन्तर्मुखी और केन्द्रित हो रहा हो, उस समय सूक्ष्म अवस्था में प्राणों को जाग्रत करना सरल है। उस अवस्था में प्राणों की जाग्रति और मन को अन्तर्मुखी बनाने के लिए परिश्रम नहीं करना पड़ता। प्रत्याहार के बाद स्वाभाविक रूप से **सूक्ष्म स्तर के अनुभव,** सूक्ष्म जगत् की **अनुभूतियाँ** होगी और आप प्राण को जाग्रत कर पायेंगे।

मन्त्र के प्रयोग को जोड़कर उन्होंने प्राणायाम के अभ्यास को और शक्तिशाली बना दिया है,

क्योंकि जब हम श्वास के साथ मन्त्र जपते हैं तो उसके स्पन्दन का प्रभाव पड़ता है, जिससे एकाग्रता का विस्तार होता और प्राण के क्षेत्र में शक्ति उत्पन्न होती है, जाग्रत होती है। जिस पर हमारा नियन्त्रण रहता है। वह शक्ति अनियन्त्रित नहीं रहती।

(6) षष्ठ अंग प्रत्यक्ष (ध्यान) :– इसके बाद छठे आयाम के अन्तर्गत आता है **ध्यान**। प्राण जाग्रत हो जाएँ, मन अन्तर्मुखी हो जाए, उसके बाद ध्यान अपने आप ही लगता है। उन्होंने ध्यान के तीन प्रकार बतलाए हैं– बहिरंग ध्यान, अन्तरंग ध्यान और एकचित ध्यान। बहिरंग ध्यान में जगत् और इन्द्रियों द्वारा उत्पन्न अनुभवों के प्रति सजगता और एकचित ध्यान में आन्तरिक अनुभूति की जाग्रति होती है।

(7) सप्तम अंग निर्लिप्तता (समाधि) :– सातवें आयाम में समाधि का वर्णन किया गया है कि इस प्रक्रिया या समूह को उन्होंने एक दूसरा नाम दिया है–**'घटस्थ योग'**। घटस्थ योग का मतलब हुआ, शरीर पर आधारित योग घट का अर्थ होता है शरीर। शरीर को उन्होंने एक घड़े के रूप में देखा, जो पदार्थ से बनी हुई एक आकृति है, और परमेश्वर ने उसमें जे कुछ भर दिया है जैसे – इन्द्रिय, मन, अंहकार से–सब मिलाकर हमारे शरीर रूपी यह घड़े को बनाते है।

अतः आत्मज्ञान प्राप्त करने के लिए योग की शुरूआत शरीर से होती है और शरीर के माध्यम से हम अपने मानसिक और भावनात्मक स्तरों को नियन्त्रित करके आध्यात्मिक अनुभूति को जाग्रत कर सकते हैं। यह इनकी मान्यता है।

इसप्रकार महर्षि घेरण्ड घट शुद्धि (शरीर शुद्धि) से प्रारम्भ कर सांत आंगों को क्रमशः सीढ़ी की तरह पार करते हुऐ अन्त में योग के चरम लक्ष्य जो विरले योगी ही प्राप्त कर पाते है। बड़े सहज, सुबोध, और सैद्धांतिक रूप से मानक तथ्यों के आधार पर अपने सिद्धांत को व्यावहारिक धरातल पर प्राप्त करवाने में सक्षम सिद्ध होते है।

बोध प्रश्न :

टिप्पणी क : अपने उत्तर नीचे दिये गये स्थान में लिखें।

ख : इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

प्रश्न 1 महर्षि घेरण्ड का संक्षिप्त परिचय दीजिऐं ?

प्रश्न 2 महर्षि घेरण्ड द्वारा प्रतिपादित सप्तांगों का विवरण दीजियें ?

8.4 इकाई 27 घेरण्ड संहिता में क्रिया एवं आसनों का स्वरूप

8.4.1 घेरण्ड संहिता में क्रिया का स्वरूप

महर्षि घेरण्ड द्वारा वर्णित हठयोग साधना के सात अंगों में सर्वप्रथम अंग क्रिया **(शोधन)** है। शोधन अर्थात शरीर की शुद्धि इस हेतु षट्कर्मो का विधान बतलाया गया है। षटकर्मो के द्वारा शरीर और मन को विकार रहित निर्मल एवं स्वच्छ बनाया जा सकता है।

षटकर्म दो मुख्य प्राण प्रवाहों, इड़ा और पिंगला को समायोजित करते है। फलस्वरूप शारीरिक और मानसिक शुद्धि एवं संतुलन की प्राप्ति होती है। ये क्रियायें शरीर में उत्पन्न त्रिदोषों–वात, पित्त और काफ को संतुलित करते है। इन त्रिदोषों के शरीर में असन्तुलन से रोगों (ब्याधियों) की उत्पत्ति होती है। इन षट्कर्मों का अभ्यास आसन प्रायाणम तथा अन्य उच्च अभ्यासों के पूर्व किया जाता है। जिससे शरीर बिना किसी व्यावध ाान के साधक की साधना में सुख एवं स्थिरता प्रदान करता रहें। ये षटकर्म निम्नलिखित हैः–

धौतिर्वस्तिस्था नेतिः लौलिकी त्राटकं तथा।
कपाल भातिश्चैतानि षट्कर्माणि समाचरेत्।। 2 ।।
(घे. स. 1/12)

(1) (2) (3) (4) (5) (6)

धौति वस्ति नेति नौली त्राटक
कापालभाति

(1) धौति क्रियाः– छः कर्मो (षटकर्मो) में पहला कर्म **धौति क्रिया** है। धौति क्रिया से अमाशय और अन्ननलिका की सफाई होती है। यह सफाई पानी से भी की जा सकती है तथा इसे मुलायम कपड़े से भी किया जा सकता है साथ ही केवल हवा (वायु) के द्वारा भी इस विधि से शोधन किया जा सकता है। कुल 13 प्रकार की धौति क्रियायें घेरण्ड ने बतलाई है जो निम्नांकित है–

अन्तधौतिर्दन्तधौतिर्हद्धौतिर्मूल शोधनम्।
धौतिं चतुर्विधां कृत्वा धटं कुर्वन्ति निर्मलम्।
(धे. स. 2/13)

(1) (2) (3) (4)

अन्तधौति
(प) वातसार
(पप) वारिसार
(पपप) अग्निसार
(पअ) बहिष्कृत

दन्तधौति
(प) दन्तमूल
(पप) जिव्हाशोधन
(पपप) दो कर्णरन्ध्र धौति

कृद्धौति
(प) दण्डधौति
(पप) वमनधौति
(पपप) वस्त्रधौति

मूलशोधन

अर्न्तधौति का अर्थ है आन्तरिक सफाई अर्न्तधौति में तीन चीजों का प्रयोग होता है –**हवा, पानी** और **कपड़ा**। दन्तधौति का शाब्दि अर्थ होता है दाँतो की सफाई करना। दंतधौति का केवल शब्दिक अर्थ यहां नही है बल्कि इसका अर्थ **शीर्ष प्रदेश के सभी रन्ध्रों** (छिन्द्रों) की सफाई से है। तृतीय धौति क्रिया कृद्धौत का अर्थ होता है हृद्रय प्रदेश की सफाई। अन्न नलिका और फेफड़े हृद्रय प्रदेश में आते हैं, अतः इनकी सफाई कृद्धौति के माध्यम से होती है। चौथा है मूलशोधन शरीर के मूल भाग की सफाई। गुहा द्वारा बड़ी आँत मूत्र नलिकाओं इत्यादि की सफाई। ये धौति क्रिया सम्बन्धित शरीरांगों को स्वच्छ कर शरीर को शुद्ध हल्का एवं निरोगी बनाती है।

(2) वस्ति क्रिया :– षटकर्मो में वस्ति कर्म दूसरा शोधन उपाय है। इसे **यौगिक एनीमा** समाझा जा सकता है। इस क्रिया में गुदा द्वार से जल खींचकर थोड़ी देर तक बड़ी आंत में रखते है। इसके बाद जल को बाहर निकाल देते है। एनिमा में यंत्र की सहायता ली जाती है यह स्वतः ही किया जाता हैं वस्ति क्रिया के निम्ननांकित प्रकार है –

जल वस्तिः शुष्क वस्तिर्वस्ती च द्विविधौ स्मृतौ।
जल वस्तिं जले कुर्याच्छुकवस्तिं सदाक्षितौ।।
(धे. सं. 1/45)

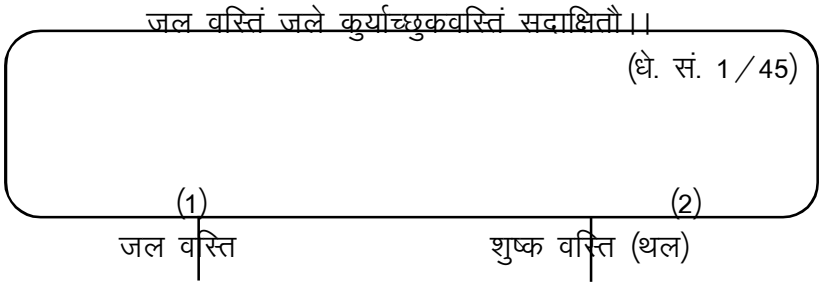

जल वस्ति **उत्कटासन** में नाभितक भरे जल में बैंठकर गुदा के अंकुचन प्रसरण द्वारा जल को आँतों में भरते है। जबकि शुष्क या थलवस्ति में **पश्चिमोतान आसन** लगाकर गुदा का परिचालन करते है।

चूकि वस्ति कर्म गुल्म, प्लीहा, उदर रोग तथा **वात–पित्त–कफ** का शमन करता है। इसके अभ्यास से कोष्ठबद्धता सदा के लिये दूर हो जाती है **आमवात** नष्ट हो जाता है। गठिया रहने पर आसन नहीं हो सकते तथा कोष्टबद्धता होने पर मन में विषाद रहता है अतः योग साधकों के लिऐ यह एक अनिवार्य क्रिया है। इससे शक्ति का विकास होता है, उदरस्थ स्नायुओं पर नियन्त्रण प्राप्त होता है। पानी या वायु को ऊपर खींचने के लिए स्नायु–नियन्त्रण आवश्यक है। इसमें उदर अंगों के स्वास्थ्य एवं क्षमता में वृद्धि होती है। रक्तपरिसंचरण सुचारू रूप से होता है। आंतरिक अंगों की मालिश होती है। इस कारण नाड़िया स्वस्थ होकर रक्त का प्रवाह सुचारू होता है। गुदा द्वार के रोगों में यह अभ्यास श्रेष्ठतम है।

(3) नेति क्रिया :– नेति क्रिया षट्कर्मो में तीसरी क्रिया है। इस क्रिया का उद्देश्य शीर्ष, कपाल के क्षेत्रों की सफाई करना है। नेति क्रिया आन्तरिक नाड़ियों को संवेदनशील बनाने में सहायक है। दृष्टि सम्बन्धित नाड़ियों का इस क्रिया द्वारा शोधन होता है। नासिका मार्ग शुद्ध स्वच्छ होता हैं घेरण्ड ऋषि द्वारा केवल सूत्र नेति का विधान बताया गया है।

वर्तमान में लोग सूत्र के स्थान पर केथेटर टूयूब का प्रयोग करते है। नेति के अन्य प्रकारों में जल नेति धृत नेति, दुग्ध नेति तेल नेति एवं मूत्र (शिवाम्बू) नेति का प्रयोग करते है। सूत्र नेति के पूर्व जल या अन्य नेति करना अच्छा होता है।

वितस्तिमानं सूक्ष्मसूत्रं नासानाले प्रवेशयेत्।
मुखान्निर्गमयेत्पश्चात् प्रोच्यते नेतिकर्मकम्।।
(घे. सं. 1/50)

नेति क्रिया के प्रकार

1. सूत्र नेति
2. जल नेति
3. धृत नेति
4. दुग्ध नेति
5. तेल नेति
6. मूत्र नेति

यह क्रिया नसिका के अन्दर सायनस को साफ कर देती है। जिन लोगों को साइनासाइटिस, राइनाइटिस, सरदर्द या माइग्रेन है। या अग्र ललाट में जिन्हें हमेशा दर्द होता रहता है। या जिन लोगों की दृष्टि कमजोर हैं, आँखे जल्दी थक जाती हैं, कुछ देर पढ़ने के बाद आँखों में पानी आ जाता है, लाल हो जाती हैं, दर्द देती हैं, या कान से सम्बन्धित समस्यायें है। तब इसका प्रयोग उपयोगी है। महर्षि घेरण्ड इसके तीन लाभ बतलाते है।

(1) कफ दोष दूर होता है।
(2) दृष्टि दोष दूर होता है। तथा दिव्य दृष्टि प्राप्त होती है।
(3) खेचरी मुद्रा की सिद्धि प्राप्त होती है। खेचरी मुद्रा की सिद्धि से आकाश गमन सहित अनेक सिद्धियां प्राप्त होती है।

(4) लौलिकी (नौलि क्रिया) :– षट्कर्मो में चौथा अभ्यास नौलि क्रिया है जिसे लौलिकी भी कहते हैं। यह क्रिया पेट के अन्य अंगों की मालिश कर उन्हें शक्तिशाली बनाने की क्रिया है।इसका अभ्यास अपचन, भूख की न्यूनता, भूख कम लगना, पेट में कीडे होना इत्यादि समस्याओं में इसका अभ्यास अत्याधिक लाभकारी है। वायुदोष भी इससे दूर हो जाते है । सभी रोगों की नाशक इसे कहा जाता है यह जठराग्नि को प्रदीप्त करती है। कुण्डलिनी योग की महत्वपूर्ण क्रिया है।

अमन्दवेगेन तुन्दं भ्रामयेदुभपार्श्वयोः।
सर्वरोगान्निहन्तीह देहानल विवर्द्धनम्।।
(घे. सं. 1/52)

(1) मध्य नौलि (2) वाम नौलि (3) दक्षिण नौलि (4) भ्रमरनौलि

नौलि क्रिया पेट को दोनों पार्श्वो में तीव्र गति से घुमाने के लौलिकी (नौली) कहा जाता है। प्रारंम्भ में इसे मध्य नौलि निकालकर दक्षिण एवं वाम नौली का अभ्यास किया जाता है। नियंत्रण होने पर इसे भ्रमर के समान घुमाया जाता है। यह **अग्निसार** क्रिया का प्रकारान्तर है।

इस क्रिया का कार्य स्थूल और सूक्ष्म शरीर को शुद्ध करना, संयत अवस्था में लाना, उनसे रोगों को दूर करना यह क्रिया देहाअग्नि को (जठराग्नि को) तीव्र करती है अतः अन्य रोग स्वयं ही नष्ट हो जाते है। इस क्रिया का प्रभाव सम्पूर्ण शरीर पर पड़ता है।

(5) त्राटक क्रिया :– षट् कर्मो में पाचवाँ कर्म **त्राटक** कर्म है। आँखों और तन्त्रिका तन्त्र के अंगीय एवं कार्यात्मक विकारों को दूर करने के लिए यह अभ्यास बहुत उपयोगी है। यदि किसी अंग में, आँखों में या **तान्त्रिका तंन्त्र** में कुछ विकार उत्पन्न हो जाते हैं, जैसे बहुत से लोगों को **'टिक'** होता है कभी–कभी हाथ एकदम हिल जाता है, कभी, कभी एक आँख की पलक हमेशा जल्दी जल्दी झपकती रहती है, जिसे अनियन्त्रित तन्त्रिका क्रिया कहते है, इसके लिए त्राटक बहुत उपयोगी है। त्राटक के अभ्यास से निकट दृष्टि दोष, दूर दृष्टि दोष, मायो पिया या आँखों से सम्बन्धित अन्य दोष, स्वस्थ शरीर में बहुत हद तक नियन्त्रित रखे जा सकते हैं। **शाम्भवी** मुद्रा के लाभ इससे प्राप्त कीये जा सकते है। यह मुद्रा इससे सिद्व की जा सकती है यह क्रिया निम्नलिखित तीन प्रकार से की जा सकती है :–

निमेषोन्मेकं त्यक्त्वा सूश्मलक्ष्यं निरीक्षयेत्।
~~पतन्ति यावदश्रूणि त्राटंक प्रोच्यते बुधैः।।~~

(घे. सं. 1/53)

(1) अन्तः त्राटक

(2) मध्य त्राटक

(3) बाह्य त्राटक

त्राटक कर्म यौगिक साधना में एक उच्च साधना है। इसका प्रभाव आश्चर्यजनक रूप से होता है। साधक की सभी इच्छाएँ पूर्ण होती है। साधक में दिव्य दृष्टि उत्पन्न हो जाती है। शाम्भवी शक्ति सिद्ध से कुण्डलनि शक्ति के जागरण का अर्थ होता है। कुण्डलिनि शक्ति अर्थात शाम्भवी या वायवी या प्राण शक्ति भी अर्थ होता है इसकी सिद्धि सर्वसिद्धि प्रदायनि होती है। अपनी प्रकृति के अनुरूप साधक को अन्तः मध्य या बाह्य त्राटक की साधना करना चाहिये। सती द्वारा त्राटक सिद्धि को फलस्वरूप ही योगाग्नि में स्वयं को भस्म किया गया था।

(6) कपालभांति क्रिया :– षटकर्मो में अन्तिम छटवां अभ्यास कपालभति क्रिया है। यह श्वसन संस्थान का अभ्यास है। इससे श्वासनली विकार रहित बनती है तथा रक्त की शुद्धि होती है। इस क्रिया में अधिक मात्रा मे आँक्सीजन अन्दर जाती है। स्नायविक अव्यवस्था और मस्तिष्क से सम्बन्धित विकारों में भी कपालभाति एक लाभदायक शुद्धि क्रिया है। जिन लोगों की स्मरण शक्ति कम हो जाती हैं उन्हें यह क्रिया बहुत लाभ पहुचाती है। अर्थात स्मृति वृत्ति को ठीक करती है।

वातक्रमेण व्युत्क्रमेण शीत्क्रमेण विशेषतः।
भालभातिं त्रिधा कुर्यात्कफदोषं निवारयेत्।।

(घे.से. 1/55)

(1) **वातक्रम** कपालभाति (अनुलोम विलोम क्रिया) या

(2) **व्यूतक्रम** कपाल भाति

(3) **शीतक्रम** कपाल भाति

भाल भाति (यहाँ भाल = ललाट)

कपाल भाँति का महर्षि घेरण्ड सर्वाधिक महत्वपूर्ण लाभ यह बतलाते है कि इन तीनों प्रकारों को जो भलीभाँति अभ्यास में लाता है उसके कफदोष का निवारण हो जाता है। कफ दोष के निवारण से वात एवं पित्त भी सम्यक हो जाता है। काया कुंदन की भाँति आभायुक्त हो जाती है।

इस क्रिया का सम्बंध हमारे प्राणमय कोश से है। इस क्रिया से **तंत्रिका तंत्र** का विभिन्न आयामों में उत्तेजन किया जाता है जिससे वह सक्रिय बनें।

8.4.2 घेरण्ड संहिता में आसनों का स्वरूप

महर्षि घेरण्ड द्वारा प्रतिपादित सप्तांग योग में से आपने पिछली इकाई में षट्कर्मो का अध्ययन किया। इस इकाई में आप सप्तांग योग के **द्वितीय अंग आसनों** के बारे में जानकारी हासिल करेगें।

योगासनों का सर्वप्रथम उपदेश आदिनाथ योगीश्वर भगवान शिव ने सर्वप्रथम जगत् जननी माता पार्वती को दिया था। परम्परा के अनुसार **चौरासी लाख** आसन माने जाते हैं। अर्थात् प्रत्येक योनि का एक आसन जगत् में जीवों की **चौरासी लाख** योनियां मानी गई है। वर्तमान युग में चौरासी लाख आसनों का अभ्यास कदापि संभव नहीं। अतः चौरासी लाख में से **चौरासी (84)** आसन मुख्य माने गये है। इन चौरासी आसनों में से भी महर्षि घरेण्ड ने मृत्युलोक के अनुसार **बत्तीस (32)** आसनों का अभ्यास योग साधना में पर्याप्त महत्व का बतलाया है। ये 32 आसन निम्नांकित है –

सिद्धं पद्मं तथा भद्रं मुत्कं वज्रं च स्वस्तिकम्।
सिंहं च गोमुखं वीरं धनुरासनमेव च ।।
(घे. सं. 2/37)

(1) सिद्धासन (2) पद्मासन (3) भद्रासन (4) मुक्तासन (5) वज्रासन (6) स्वास्तिकासन (7) सिंहासन
(8) गोमुखासन (9) वीरासन (10) धर्नुरासन

मृतं गुप्तं तथा मात्स्यं मत्स्येन्द्रासनमेव च।
गोरक्षं पश्चिमोत्तानमुत्कटं सकटं तथा।।
(घे. स. 2/4)

(11) मृतासन (12) गुप्तासन (13) मत्स्यासन (14) मत्स्ययेन्द्रासन (15) गौरक्षासन (16) पश्चिममोतानासन (17) उत्कटासन
(18) सकंटासन

मयूरं कुक्कुटं कूर्मं तथा चोत्तानकूर्मकम्।

उत्तानमण्डुकं वृक्षं मण्डुकं गरूडं वृषम्।।

(घे. सं. 2/5)

(19) (20) (21) (22) (23) (24) (25)

मयूरासन कुक्कुटासन कूर्मासन उत्तानकूर्मासन मण्डूकासन उत्तानमण्डूकासन वृक्षासन

(26) (27)

गरूडासन वृषभासन

शलभं मकरं चोष्ट्रं भुजगं योगमासनम्।
द्वात्रिंशदासनान्येव मर्त्ये सिद्धिप्रदानि च।।

(घे. स. 2/6)

(28) (29) (30) (31) (32)

शलभासन मकरासन उष्ट्रासन भुजांगासन योगासन

ध्यान दें ☞ उपरोक्त वर्णित आसनों में से पन्द्रह (15) आसनों (1) सिद्धासन, (2) पद्यमासन (3) स्वास्तिकासन (4) श्वासन (5) धर्नुरासन (6) मयूरासन (8) पश्चिमोत्तासन (8) मत्सयेन्द्रासन (9) गोमुखासन (10) सिंहासन (11) भद्रासन (12) वीरासन (13) कुक्कुटासन (14) कूर्मासन (15) उत्तानकूर्मासन को आप विस्तार सहित खण्ड 7 में हठप्रदीपिका में अध्ययन कर चुकें है। इन्हें यहाँ नहीं दिया गया है। इन्हें आप खण्ड 7 से अध्ययन कर सकते हैं।

घेरण्ड संहिता में वर्णित शेष सत्रह (17) आसनों में (1) मुक्तासन (2) वज्रासन (3) गुप्तासन (4) मत्स्यासन (5) गोरक्षासन (6) उत्कटासन (7) संकटासन (8) मण्डुकासन (9) उत्तान मण्डुकासन (10) वृक्षासन (11) गरूड़ासन (12) वृषभासन (13) शलभासन (14) मकरासन (15) उष्ट्रासन (16) भुजंगासन (17) योगासन। इन आसनों का अध्ययन आप यहाँ करेगें नामकराण, विधि, लाभ एवं सावधानियाँ के क्रम से करेंगें।

(1) मुक्तासन (सुखासन) (Liberation pose or Easy pose)

पायु मूले बाम गुल्फं दक्ष गुल्फं तथोपरि।
शिरोग्रीवासमं कार्य मुक्तासनं तु सिध्विदम्।।

(घे. सं. 2/10)

नामकरण

इस आसन को लगाने पर शरीर एकदम हल्का (मुक्त) महसूस होता है। इस कारण इसे मुक्तासन या सुखासन कहते है।

विधि

- बाँयें पाँव की एड़ी को पायुमूल में लगाकर उस पर दाँये पाँव की एड़ी रखें।
- शिर तथा ग्रीवा कंठ प्रदेश को समान रखें।
- शरीर को सीधा रखते हुऐ बैठे।
- हाथ सामान्यतः ज्ञानमुद्रा या चिन्मुद्रा में रखें।
- आँखें बंद रखते हुऐ शरीर को एकदम ढीला छोड़ दें।

लाभ

- इसका प्रयोग ध्यान हेतु श्रेष्ठ एवं सुविधाजनक है।
- अन्य आसनों में जो नहीं बैठ सकते उनके लिये बिना शारीरिक तनाव या कष्ट के किया जा सकता है।
- यह शारीरिक और मानसिक संतुलन प्रदान करता है।

सावधानियाँ

- मेरूदण्ड के निचले भाग में दर्द या पीड़ होने पर नहीं करना चाहियें।
- साइटिका की शिकायत में भी इससे बचना चाहिये।

(2) वज्रासन (Pelvic Pose)

जंघाभ्यां वज्रवत् कृत्वा गुदपार्श्वे दवाकुभौ।
वज्रासनं भवेदेतत् योगिनां सिद्धिदायकम् ।।
(घे. सं. 2/11)

नामकरण

इस आसन में दोनों जंघाओं की स्थिति वज्र के समान दृढ़ होने से इसे वज्रासन कहते है।

विधि

- सर्व प्रथम आसन में घुटनों के बल खड़े हो जावें।
- घुटने एक दूसरे से मिले होने चाहिये।
- धारे–धीरे नितम्बों को नीचे फैली हुई दोनों एड़ियो के बीच टिका दें। दोनों पैरों के अगुंठे एक दूसरे पर हो।
- सिर, गरदन एक सीध में हथेलियां नीचे सहजता से रखें।

लाभ

- वज्र नाड़ी पर जोर पड़ता है। जिससे प्रजनन एवं मूत्र निष्कासन प्रणाली के स्नायविक आवेग सहजता से मस्तिष्क में पहुचते है।
- यौन भावनाओं और ब्रम्हचर्य को नियंत्रित करने में सहायक है।
- शरीर की जैविक ऊर्जा चेतना के विकास की ओर बढ़ती है।
- मूलाधार चक्र के जागरण में सहायक है।
- हर्निया एवं बवासीर के उपचार में सहायक है।
- पुरूषों के हाइड्रोसिल तथा महिलाओं के मासिक धर्म की अनियमितता के उपचार में सहायक है।
- ध्यान एवं मानसिकशान्ति हेतु उपयोगी है।
- साइटिका एवं सेक्रल इन्फेक्शन से पीड़ित व्यक्तियों के लिए ध्यान में सहायक आसन है।

- कुण्डलिनी योग में सुषुम्ना जागरण हेतु इसका अभ्यास किया जाता है।
- घरेण्ड जी इसे योग सिद्धि हेतु बतलाते है।

सावधानियाँ

- जाँघों पर ज्यादा जोर पड़ने पर घुटनों को थोड़ा फैलाना पड़ता है।
- यदि अभ्यास या अन्य कारण से बैठने में कठिनाई हो या पैर या टखनों में दर्द हो तो इसे न करें। तथा टखनों एवं पैर के बीच तकिया रखा जा सकता है।

(3) गुप्तासन (Secret Pose)

जानूनोरन्तरे पादौ कृत्वा पादौ च गोपयेत्।
पादोपरि च संस्थाप्य गुदंगुप्तासनं विदुः।।
(घे. सं. 2/18)

नामकरण

इस आसन में पैर के पंजे एड़िया और पिण्डलियां जाँघ के नीचे छुपी हुई होती है। इस कारण इसे गुप्त (छुपा) आसन कहते है।

विधि

- दोनों पंजों के ऊपर बैठकर अर्थात् गुदा को दोनों पंजों के ऊपर रखते है।
- हाथ घुटनों पर ज्ञान या चिन मुद्रा में रखते है।

लाभ

- सीवनी नाड़ी पर जोर पड़ने से तथा कटि प्रदेश के ऊपर रक्त संचरण बढ़ने से मूलाधार चक्र, एवं जननांग से सम्बंधित लाभ प्राप्त होते है।

सावधानियाँ

- मेरूदण्ड के निचले भाग में दर्द या पीड़ा होने पर नहीं करना चाहिये।
- साइटिका की शिकायत में भी इससे बचना चाहिये।

(4) मत्स्यासन (Fish Pose)

मुक्तपद्यासनं कृत्वा उत्तानशयनं चरेत्।
कूर्पराभ्यां शिरो वेष्टयं रोगघ्नं मात्स्यमासनम्।।
(घे. सं. 2/19)

नामकरण

इस आसन को करने पर शरीर की स्थिति मत्स (मछली) के समान दिखाई देती है। इस कारण इसे मत्स्यासन कहते है।

विधि

- सर्वप्रथम पद्यासन लगाकर बैठते है।
- केहुनियों के सहारे धीरे–धीरे पीछे झुककर सिर को जमीन पर रखते है।
- दोनों हाथों की सहायता से ब्रम्ह्मरन्ध्र को जमीन पर टिकाते है।
- दोनों हाथों से दोनों पैरों के अगूठें पकड़ते है।
- शरीर का भार सिर, नितम्बों एवं पैरों पर डालकर भुजाओं एवं पूरे शरीर को शिथिल बनाते है।
- पैरों को बदलकर अभ्यास करें किया जाना चाहिये।

लाभ

- इस आसन के अभ्यास से सभी रोगों का निदान होता है।
- आँतों और आमाशय के रोगों में बहुत लाभकारी है।
- यह प्रदाह, एवं खूनी बवासीर को दूर करता है।
- थायमस ग्रंन्थि को उद्धीप्त कर प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाता है।
- यौवन एवं प्राणशक्ति की वृद्धि करता है।
- श्वसन रोगों, दमा, ब्रोंकाइटिस, कफ दोष, टॉसिलाइटिस तथा सरवाइकल स्पांण्डिलाटिस और गर्भाधान के दर्द को कम करने में सहायक है।

सावधानियाँ

- गंभीर रोगों या हद्रय रोग, पेप्टिक अल्सर, हर्निया, मेरूदण्ड के रोग तथा गर्भवती महिलाओं को इसे नहीं करना चाहियें।

(5) गोरक्षासन (Throne Pose)

~~जानुर्वोरन्तरे पादौ उत्तनाव्यक्त संस्थितौ।~~
गुल्फौ चाच्छाद्य हस्ताभ्यामुत्तानाभ्यां प्रयत्नतः।।
कंठ संकोचन कृत्वा नासाग्रमवलेकयेत्।
गोरक्षासन मित्याहुर्योगिनां सिद्धिकारणम्।।

(घे. सं. 2/22)

नामकरण

इस आसन को लगाने पर शरीर की स्थिति सिंहासन में बैठे भद्र पुरूष के समान दिखाई देती है। वीर्यवान तेजस्विता प्रदान करने के कारण इसे गोरक्षासन् कहते है।

विधि

- दोनो घुटने जाँघों के बीच में मोड़कर तलवों को मिलाकर एड़ियों को ऊपर उठाकर रखते हैं।
- घुटने और पैर के पंजे जमीन पर रखते हैं।
- इसमें श्रेणि प्रदेश, नितम्ब, और प्रजननेन्द्रियां एड़ी के पीछे रहती है।
- हाथों को नितम्बों के पीछे रखा जाता है कि अंगुलियां बाहर की ओर रहें।
- दोनों हाथों को कलाइयों से विपरीत करके विरूद्ध ऐड़ियों को पकड़ते है।
- दृष्टि नासिकाग्र रखते है।

लाभ

- इसके अभ्यास से प्रजनन इन्द्रियों के रोगों, काम वासना, और वीर्य स्खलन पर नियन्त्रण किया जा सकता है।
- पैरों को लचीला बनाता है। तथा अपान वायु के प्रवाह को उर्ध्वगामी करता है। गले के रोगों

का निदान करता है।

- उर्ध्वगामी अपान वायु ध्यान में सहायक है। इस कारण इस आसन को ध्यान हेतु प्रयोग किया जा सकता है।

सावधानियाँ

- पैरों की बीमारियाँ, कमर के निचले भाग में दर्द तथा साइटिका के रोगियों को नहीं करना चाहिये।

(6) उत्कटासन (Monkey Pose)

अंगुष्ठाभ्यामवष्टभ्य धरां गुल्फे च खे गतौ।
तत्रौपारि गुदं न्यस्य विज्ञेयमुत्कटासनम्।।

(घे. सं. 2/23)

नामकरण

इस आसन को लगाने पर शरीर की स्थिति दोनों पैरों पर बैठे बंदर (उत्कट) के समान दिखाई देने से इसे उत्काटासन कहते है।

- एक अर्थ उत्सुकता से भी लिया जाता है। किसी कार्य को शीघ्र शुरू करने की उत्सुकता में ब्यक्ति की शरीरिक दशा इसी प्रकार की होती है।

विधि

- सीधे खड़े होकर पैरों की दूरी कमर की चौड़ाई के बराबर रखते है।
- दोनों हाथ दोनों घुटनों में रखकर धीरे–धीरे बैठते है।
- पैरों के पंजों पर शरीर का सारा भार होता हैं। एड़िया जमीन से उठी हुई तथा ऐड़ियों पर गुदा को रखते है।

लाभ

- इससे शरीरिक सन्तुलन बढ़ता है। मांसपेशियों और नाड़ियों की सुग्राहिता बढ़ती है।
- नाड़ियों की क्रियाशीलता बढ़ाने से शरीर निरोग होता है।

सावधानियाँ

- पैरों के रोगों से ग्रसित व्यक्ति न करें।
- साइटिका मेरूदण्ड के निचले भाग में दर्द, कष्ट पीड़ा हो तो न करें।
- गर्भवती महिलाये इसे न करें।

(7) संकटासन (Difficult Pose)

वाम पादचितेर्मूलं विन्यस्य धरणीतले।
पाद दण्डेन याम्येन वेष्टये द्धाम पादकम्।
जानुयुग्मे कर युग्मेतत्संकटासनम्।।

(घे. सं. 2/29)

नामकरण

इस आसन को लगाने पर व्यक्ति की शारीरिक स्थिति इस प्रकार दिखाई देती है जैसे कोई व्यक्ति किसी आसन संकट या विपदा में हाथ पैर सुकोड़कर बैठ जाता है। इस कारण घेरण्ड ने इसका नाम संकटासन दिया है। एक अन्य अर्थ अधिक थकान की स्थिति में एक पैर पर खड़े होना या पैर पर पैर रखकर बैठना से भी है।

विधि

- बायाँ पांव और घुटना पृथ्वी पर रखें।
- इसके बाद दाहिने पैर से बायें पांव को लपेटते हुएं दोनों घुटनों पर दोनों हाँथ रखें।

लाभ

- स्नायुओं को दक्ष बनाता है।
- मांसपेशियों को सबल बनाता है।
- पैरों के जोड़ों को ढीला बनाता है।

सावधानियाँ

- पैरों के रोगों चोट घाव की स्थिति में न करें।
- कमर की बीमारियों मेरूदण्ड के नीचे भाग के रोगों में न करें।

(8) वृक्षासन (Tree Pose)

वामोरूमूलदेशे च याम्यं पादं निधाय वै।
तिष्ठेत्तु वृक्षपद्भूमौ वृक्षासनमिदं विदुः।।

(घे. सं. 2/30)

नामकरण

इस आसन में शरीर की स्थिति वृक्ष के समान दिखाई देने के कारण इसे वृक्षासन कहते है।

विधि

- सर्व प्रथम सीधे खड़े होकर दृष्टि स्थिर करें।
- इसके बाद दहिने पैर को उठाकर बाँयी जाँघ में अर्द्धपद्मासन जैसी स्थिति में रखें।
- धीरे–धीरे बांयें पैर को झुकाकर घुटने को जमीन में रख देते है।
- दोनों हाथों को प्रणाम की मुद्रा में छाती के सामने रखते हैं।

लाभ

- शरीरिक संन्तुलन तथा पैरों की माँस पेशियों को सबल बनाता है।
- पेट के अंगों को सबल बनाने तथा किडनी और ब्लडर की अत्याधिक सक्रियता को संतुलित करने में सहायक है।
- वीर्य के रोगों में न करें।

सावधानियाँ

- पैर के रोगों में न करें।
- कमर के तथा मेरूदण्ड के नीचे के हिस्से के रोगों में नहीं करना चाहिये।

(9) मण्डुकासन (Frog Pose)

पृष्ठदेशों पादतलावड.गुष्ठौद्वौच च संस्पृशेत्।
जानुयुग्मं पुरस्कृत्य साघ्येन्मण्डूकासनम्।।

(घे.सं. 2/31)

नामकरण

इस आसन को लगाने पर शरीर की स्थिति दोनों पैरों पर बैठे मेढ़क (मण्डूक) के समान दिखाई देने के कारण इसे मण्डूकासन कहते है।

विधि

- सर्वप्रथम वज्रासन में बैठ कर घुटनों को यथासम्भव दूर–दूर फैला लेते है।
- इसके उपरांत पैरों की एड़ियों को धीरे–धीरे फैलाते हुऐ नितम्बों को जमीन पर टिका देते है।
- पंजों की अंगुलियाँ बाहर की तरफ रखते है। दोनों हाथ घुटनों पर शरीर सीधा आखें बंद एवं शरीर को शिथिल छोड़ देवें।

लाभ

- वीर्य रक्षा के लिये इसका अभ्यास श्रेष्ठ उपाय है।
- स्फूर्ति एवं बल बुद्धि के विकास हेतु भी इसका अभ्यास किया जाना चाहियें।

सावधानियाँ

- पैरों में घाव या मांसपेशियों के कड़ेपन में एकाएक नहीं करना चाहियें।
- मेरूदण्ड के नीचे के हिस्से में परेशानी होने पर न करें।

(10) उत्तान मण्डूकासन (Excited Frog Pose)

मण्डूकासनमध्यस्थं कूर्पराभ्यां घृतं शिरः।
एतद्भेकवदुत्तानमेतदुत्तान मण्डूकम्।।

(घे. सं. 2/29)

नामकरण

इस आसन को लगाने पर शरीर की स्थिति उत्थित मण्डूक (म्गबपजमक थ्तवह च्वेम) के समान दिखाई देने के कारण इसे उत्तान (खिंचा हुआ) मण्डूकासन कहते है।

विधि

- सर्वप्रथम वज्रासन में बैठें।
- वज्रासन से सुप्त वज्रासन की स्थिति में धीरे–धीरे आये।
- सुप्तवज्रासन में धीरे–धीरे लेट जावें।
- दोनों हाथों की कुहनियों के ऊपर सिर को रख लें।

लाभ

- छाती के विस्तार में सहायक।
- श्वसन प्रणाली में सम्बंधित सभी रोगों के निदान में सहायक ।
- स्पाँण्डिलाइटिस, स्लिपडिस्क तथा साइटिका के उपचार में विशेष लाभकारी है।

सावधानियाँ

- नाड़ी तंतुओं पर अत्याधिक खिचाव होने से इस आसन को लगाने एवं छोड़ने में अत्याधिक सावधनी बरतनी चाहिये।

(11) गरूड़ासन (Eagle Pose)

जड़धोरूभ्यां धरां पीडय स्थिरकायों द्विजानुना।।
जानूपरि करद्वन्द्वं गररूडासनमुच्यते।।

(घे. सं. 2/32)

नामकरण

इस आसन को लगाने पर शरीर की स्थिति भगवान विष्णु के वाहन गरूड़ (ंहसम) पक्षी के समान दिखाई देती है। इस कारण इसका नामकरण गरूड़ासन हुआ।

विधि

- सर्व प्रथम सीधे खड़े होकर दाहिने पैर पर बायें पैर को ऊपर से पीछे ले जाते हुऐ पूरा लपेटते है।
- बायें पैर के पंजे को दाहिने पैर पर ठीक प्रकार से फँसा देते है। दहिना पैर घुटने से थोड़ा झुका हुआ रखते है।
- पैरों की भाँति हाँथों को भी आपस में लपेट लेते है।
- शरीर की सभी माँसपेशियाँ ऊपर की तरफ खिचीं हुई रखी जाती है।

लाभ

- हाथों तथा पैरों की माँसपेशियों को सबल बनाता है तथा जोड़ों को ढ़ीला करता है।
- स्नायुओं की दक्षता एवं स्वस्थ्यता बढ़ाता है।
- साइटिका, आमवात, तथा हाइड्रोसिल के उपचार में बहुत सहायक है।
- इसका अभ्यास कुण्डलिनी शक्ति के जागरण में भी किया जाता है।

सावधानियाँ

- पैरों के रोगों में सावधानी सें अभ्यास करें।
- आसन को लगाने तथा छोड़ने में संतुलन का विशेष ध्यान रखें।

(12) वृषासन (Bull Pose)

याम्यगुल्फे पादमूले वामभागे् पदेतरम्।
विपरीतं स्पृशेद् भूमिंवृषासनमिदं।।

(घे.सं. 2/33)

नामकरण

इस आसन को लगाने पर शरीर की स्थिति बैठे वृष अर्थात बैल (ठनसस) के समान दिखाई देती है। इस कारण इसे वृषासन नाम दिया गया हैं।

विधि

- सर्वप्रथम दोनों पैर सामने कर बैढ जावें। तथा दायें पावँ की एड़ी पर गुदा को रखें।
- दूसरे पाँव की एड़ी को घुमाकर बाँयी ओर रखें।
- दोनों हाथों की हथेलियाँ नीचे करते हुऐ सामने रखे।
- दोनों पैर बदलकर आसन करें।

लाभ

- अजीर्ण अफरा इत्यादि में लाभकारी।
- शरीरिक क्रियाओं को व्यवस्थित करने में सहायक।
- अत्याधिक श्रम को दूर करने वाला।

सावधानी

- सहज एवं सरल आसन होने से विशेष साँवधानी की आवश्यकता नहीं।
- फिर भी समय एवं दोनों पैरों से अवश्य किये जाने का ध्यान रखना चाहिये।

(13) शलभासन (Locust Pose)

अध्यास्यः शेते कर युग्मं वक्षे, भूमिभवष्टभ्यकर योस्तलाभ्याम्।
पादौ च शून्ये च वितस्तिचार्ध्य, पदन्ति पीढंशलभं मुनीन्द्राः।।

(घे. सं. 2/34)

नामकरण

- इस आसन को करने पर शरीर की स्थिति शलभ अर्थात एक कीट टिड्डी के समान दिखाई देती है। इस कारण इसे शलभासन कहते है।

विधि

- सर्वप्रथम पेट के बल लेटकर दोनों हाथों को शरीर के लम्बवत् शरीर से सटाकर रखते है। ठुड्डी जमीन पर रखते है।
- दोनों पैरों को मिलाकर नीचे खींचते हुऐ एक सथ धीरे–धीरे नाभि तक उठाते है। तथा कुछ देर रूकते है। पैर जमीन से एक बीता (दस इंच) ऊपर रखते है।

लाभ

- यह आसन पूरे शरीर की स्वैच्छिक तंत्रिका तंत्र को विशेष रूप से परानुकम्पी तंत्र को उद्धीप्त करता है।
- पीठ तथा मेरूदण्ड के समस्त रोगों को दूर करने की क्षमता रखता हैं।
- साइटिका, स्लिपडिस्क, पीठ दर्द, कमर दर्द, यकृत और अमाश्य के स्वास्थ्य हेतु बहुत लाभकारी है।

सावधानियाँ

- यह आसन सम्पूर्ण शरीर के संतुलन एवं शक्ति पर आधारित होता है। अतः सावधानी से करना चाहियें
- हदय रोग, कमजोर हदय, धमनी की संकुचितत्ता,उच्च रक्तचाप के रोगियों को इसे नहीं करना चाहिये।

(14) मकरासन (Crocadile Pose)

अध्यास्त शेते हद्यं निधाय, भूमौ च पादौ प्रसार्यमाणौ।
शिरश्च धृत्वा करदण्डयुग्मे, देहाग्निकरं मकरासनं तत्।।
(घे. सं. 2/35)

नामकरण

इस आसन को लगाने पर शरीर की स्थिति मकर (मगरमच्छ) के सादृश्य दिखाई पड़ती है। इस कारण इसे मकरासन कहते है।

विधि

- पेट के बल सीधा लेटकर दोनों पैरों को कमर की चौड़ाई के बराबर फैलाकर रखते है।
- दोनों हाथों को कोहुनियों से मोड़कर दोनों हथेलियों को दोनों गालों पर रखते हुऐ सिर को ऊपर उठाकर रखते है। केहुनियां ऐसी संन्तुलित हो कि गर्दन वक्ष एवं कमर पर समान तनाव हो।
- आँखों को बंद कर शरीर को शिथिल छोड़ दें।

लाभ

- इस आसन का सार्वाधिक महत्वपूर्ण लाभ शरीर अग्नि को उद्दीप्त करना है।
- छाती फेफड़े श्वसन नली, अन्ननली के विकारों में बहुत लाभकारी आसन है।
- स्लिपडिस्क, साइटिका, पीठ के निचले भाग में दर्द सम्बन्धी रोगों में बहुत प्रभावी लाभ करता है।

सावधानियाँ

- पीठ के दर्द में तथा आसन से पीठ में दर्द की स्थिति में इसे नहीं करना चाहिये।

15 उष्ट्रासन (Camel Pose)

अध्यास्य शेते पदयुग्मव्यस्तं पृष्ठे निधायापि धृतं कराभ्याम्।
आकुंञ्च्य सम्यग्ध्युदरास्यगाठं उष्ट्रंच पीठं यततो वदन्ति।।
(घे. सं. 2/36)

नामकरण

इस आसन को करने पर शरीर की स्थिति उष्ट्र अर्थात ऊँट के समान दिखाई देती है। इस कारण इस आसन को उष्ट्रासन कहा गया है।

विधि

- सर्वप्रथम घुटनों के बल बैंठ जावें।
- दोनों हाथों को ऊपर सीधे खींचकर धीरे–धीरे सिर को पीछे की तरफ झुकाते हुऐ दोनों हाथों से दोनों पैरों के टखनों को पकड़ना चाहियें।

लाभ

- हद्रय रोग के रोगियों हेतु यह एक उत्तम आसन है।
- चूकि पीछे झुकने से सभी रक्तवाहिकाओं का विस्तार होता है अतः रक्तधमनियों का संकुचन, चर्बी बढ़ना, हद्रय की अनियमित धड़कन आदि में यह बहुत उपयोगी आसन है।

- पाचन, प्रजनन, कब्ज, मेरूदण्ड के स्नायुओं, कमर का वातदर्द कूबड़ तथा झुके कंधों के उपचार में बहुत लाभकारी आसन है।

सावधानियाँ

- उच्च रक्तचाप से पीड़ित रोगियों, तथा ऊपर से नीचे देखने पर चक्कर आने वाले व्यक्ति इसे न करें।
- लगाने और छोड़ने में बहुत ध्यान रखें।

16 भुजंगासन (Serpent Pose or Cobra Pose)

अंगुष्ठ नाभियर्यन्तम धोभूमौविनिन्यसेत्। करतलाभ्यांधरां धृत्वा उर्ध्वशीर्ष फणीवहि।।
देहाग्नि वर्धते नित्यं सर्वरोग विनाशनम्। जागति भुजगी देवी भुजगासन साधनात्।।

(घे. सं. 2/37)

नामकरण

इस आसन को करने पर शरीर की स्थिति फण उठायें हुऐ भुजंग अर्थात सर्प ;ब्वइतंद्ध जैसी दिखाई देती है इस कारण इसे भुजंगासन कहा जाता है।

विधि

- सर्वप्रथम पेट के बल सीधे लेट जाते है। पूरा शरीर पेर के अंगुठे से मस्तक तक जमीन से सटा होना चाहिये।
- दोनों हाथों को छाती के बाजू में इस प्रकार रखते है कि कहुनियाँ सीधी खड़ी रहें।
- फिर धीरे–धीरे सिर को उठाते जाते है नाभिपर्यंत अग्रभाग को भुजंग के फन की भाँति उठाते है। एवं सिर को पीछे की तरफ खींचते है।

लाभ

- स्लिपडिस्क को पुनः अपने स्थान पर बैठाने में सहायक।
- पीठ दर्द दूर करने तथा मेरूदण्ड को लचीला बनाने में सहायता करता है।
- शरीर एवं मस्तिष्क के बीच रक्तसंचार को संयमित करता है।
- डिम्ब ग्रन्थि एवं गर्भाशय को स्वस्थ बनाकर मासिक धर्म तथा अन्य स्त्री रोगों में सहायता प्रदान करता है।
- यह आमाशय, यकृत, एवं वृक्क के लिए लाभकारी है।
- थायराइड ग्रंथि के स्त्राव को सम्यक् बनाता है।

सावधानियाँ

- पेप्टिक अल्सर, हार्नियाँ आँतों के यक्ष्मा या हाइपर थायराइड से ग्रस्त ब्यक्तियों को इस आसन के करने में विशेष सावधानी की आवश्यकता होती है। अतः अच्छा है इसे न ही किया जावें।

17 योगासन (Yoga Pose)

उत्तानौचरणौ कृत्वा संस्थाप्योपरि जानुनोः। आसनोपरि संस्थाव्य चोत्तानं करयुग्मकम्।।
पूरकै वार्युमाकृष्य नासाग्रमवलोकयेत्। योगासनं भवेदेतद्योगिनां योगसाधने।।

(घे. सं.

2 / 44–45)

नामकरण

इस आसन में व्यक्ति की शरीरिक स्थिति ध्यानस्थ व्यक्ति के समान होती है। इस कारण इसे योगासन नाम दिया गया है।

विधि

- सर्वप्रथम उपयुक्त आसन में बैठ जाते है।
- पैरों को अर्ध पद्मासन में अर्थात एक पैर जाँघ के ऊपर और दूसरा जाँघ के नीचे रहता है।
- हाथ घुटनों पर ज्ञान या चिन मुद्रा में रखें होते हैं।
- दृष्टि नासिकाग्र रखते हुऐ वायु से पूरक कर कुंम्भक करते है।

लाभ

- सबसे सहज एवं सरल आसन है।
- एकाग्रता बढ़ाकर मन की चंचलता दूर करता है।
- ध्यान को स्थिर कर शांति लाम करवाता है।

सावधानियाँ

- अत्याधिक उदवेग गतिशीलता या शीघ्रता की स्थिति में इसका अभ्यास न करें।

इस प्रकार उपर्युक्त आसनों के विधिवत् अभ्यास से शारीरिक दृढ़ता रूपी इस **द्वितीय सप्तांग** को सिद्ध करना चाहिये।

बोध प्रश्न :

टिप्पणी क : अपने उत्तर नीचे दिये गये स्थान में लिखें।

ख : इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

प्रश्न 3 महर्षि घेरण्ड के अनुसार आसनों की संख्या लिखिये ?

प्रश्न 4 महर्षि घेरण्ड द्वारा बतायें किसी एक आसन का पूर्ण विवरण दीजिये ?

8.5 इकाई 28 घेरण्ड संहिता में मुद्रा, कुण्डलिनी, प्रत्याहार, प्राणायाम, नाड़ी शुद्धि, ध्यान एवं समाधि

8.5.1 घेरण्ड संहिता में मुद्रा

महर्षि घेरण्ड ने घेरण्ड संहिता के तृतीय अध्याय में मुद्राओं का जो उपदेश राजा चण्डकपालि को दिया वह योग साधक की मानसिक स्थिरता (स्थैर्यं) को लिये अत्यंत आवश्यक अंग है। प्रायः हठयोग के ग्रंथों हठ्प्रदीपिका और शिवसंहिता इत्यादि में मुद्राओं की दस (10) संख्या बताई गई है। ये दस मुद्रायें है। (1) महामुद्रा (2) खेचरीमुद्रा (3) शाम्भवी मुद्रा (4) तड़ागीमुद्रा (5) बज्रोली मुद्रा (6) विवरीत करणी मुद्रा (7) काकी मुद्रा (8) अश्वनी मुद्रा (9) अगोचरी (10) शक्तिचालनी इत्यादि।

महर्षि घेरण्ड ने मुद्रा प्रकरण में भी अपनी व्यवहारिकता अलग सिद्ध करते हुऐ **पच्चीस (25)** प्रकार की मुद्राओं का वर्णन किया है जो निम्नांकित है।

महामुद्रा नभोमुद्रा उड्डीयानं जलन्धरम्।
मूलबन्धों महाबन्धों महाबेधश्च खेचरी।।
(घे. सं. 3/1)

(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)	(7)	(8)
महामुद्रा	नभोमुद्रा	उड्डीयनं	जलन्धर	मूलबन्ध	महाबन्ध	महाबेध	खेचरी

विपरीत करी योनिर्वज्रोणि शक्तिचालनी।
ताडागी माण्डुकी मुद्रा शाम्भवी पंचधारणा।।
(घे. सं. 3/2)

(9)	(10)	(11)	(12)	(13)	(14)	(15)	(16)
विपरीतकरणी	योनि	वज्रोणि	शक्तिचालिनी	तड़ागी	माण्डुकी	शाम्भवी	पंचधारणा

अश्वनी पाशिनी काकी मातंगी च भुजंगिनी।
पचंविंशातिमुद्राश्च सिद्धिदा इह योगिनाम्।।
(घे. सं. 3/3)

(17)	(18)	(19)	(20)	(21)
अश्विनी	पाशिनी	काकी	मातंगी	भुजंगिनी

महर्षि घेरण्ड ने **25 मुद्राओं** के अर्न्तगत निम्नालिखित अभ्यासों को सम्मिलित किया है–

(1) सोलह (16) मुद्रायें–
(2) चार (4) बन्ध और
(3) पाँच (05) धारणायें। इन पाँच धारणाओं में–
(प) पार्थिवी (पप) अम्भासी (पपप) आग्नेयी (पअ) वायवीय (अ) आकाशी धारणायें आती है।

योग साधना में शरीर शुद्धि के बाद आसनों से शरीरिक दृढ़ता प्राप्त करने के बाद भी मन की चंचलता इन दोनों अभ्यासों को पुनः पीछे ले जाती है। अतः मन के नियंत्रण के लिये स्थैर्य के लिये हमें मुद्राओं का सहारा लेना पड़ता है। मुद्रायें मनोकायिक क्रियायें है। अर्थात उभयमुखी है एक तरफ तो ये बर्हिमुखी में से स्वास्थ्य वर्धन में सहायक है ये अन्तः मुख से ये मानसिक बल और स्थैर्य को भी प्राप्त करवाती है। मुद्राओं का सबंध शरीर में फैली **72 हजार नाड़ियों** के सम्यक स्वास्थ्य से सम्बंध रखता है।

योग विज्ञान में जिन मुद्राओं का वर्णन मिलता है वे सभी तन्त्रिका तन्त्र की संवेदनाओं और उत्तेजनाओं को शांत एवं सयंम करने में सहायक होती है। आपने विभिन्न महात्माओं देवी देवताओं को भिन्न–भिन्न प्रकार की मुद्राओं में आसनस्थ बैठे देखा है। इनका भाव क्या है? भाव का आशय अन्तः स्थैर्य से है। उदाहरणार्थ– नृत्य में हम मुद्राओं के द्वारा ही सभी अर्थो को बिना वाणी से बोले भी ग्रहण कर लेते है। ये भाव वास्तव में हमारे प्राण की अवस्थाओं के घोतक है। हमारा चित्त जिस अवस्था में होता है हमारा मन और शरीर उसी अवस्था को प्रदर्शित करते है। जैसे – चित्त में क्रोध है अहंकार है तो हमारे भाव (मन) और शरीर की दशा में क्रोध का स्वरूप स्पष्ट झलक जावेगा ऐसे ही प्रेम, काम, मद, लोभ इत्यादि इत्यादि। मुद्राओं के द्वारा हम चित्त को शान्त, प्रसन्न आनन्द के भावों से भर सकते है।

8.5.2 घेरण्ड संहिता में कुण्डलिनी (आत्मशक्ति)

घेरण्ड संहिता में कुण्डलिनी के सबंध में मुद्रा प्रकरण में ही उपदेश दिया गया है। क्योंकि कुण्डलिनी योग या क्रिया योग में जिन मुद्राओं का अभ्यास किया जाता है, उनका प्रभाव प्राणमय कोश पर पड़ता है और वे प्राण के प्रवाह को परिवर्तित करने का प्रयास करती है।

महर्षि घेरण्ड कुण्डलिनी शक्ति को मूलाधार में स्थित मानते है। वहां यह शक्ति $3^{1/2}$ फेरे लगाकर सर्पाकार में शयन कर रही होती है। यह प्रत्येक मनुष्य की मूलाधार है। यह शक्ति जब तक सोयी हुई रहती है तब तक मनुष्य समान्य जीवों की तरह आहार, निद्रा, भय और मैथुन कर्म में ही लगा रहता है और अनेक योनियों में आवागमन् करते रहता है। बिना कुण्डलिनी शक्ति के जागरण के मनुष्य यदि 84 लाख आसनों का अभ्यास भी साध लेता है तो भी उसे ज्ञान की प्राप्ति संभव ही नहीं है।

मुद्राओं के अभ्यास के द्वारा कुण्डलिनी शक्ति का जागरण होता है। कुण्डलिनी शक्ति जब सुख अवस्था से जागती है तो वह सुषुम्ना नाड़ी के मुख को जो कि बंद होता है भेद कर प्रवेश करती है। कुंभक और मुद्राओं के द्वारा अर्जित शक्ति से वह धीरे–धीरे सुषुम्ना पथ पर ऊपर की ओर अग्रसर होती है। जब वह सहस्त्रार **चक्र** में पहुंचती है तब साधक में **आत्मज्ञान (दिव्यज्ञान)** का प्रकाश उत्पन्न हो जाता है। घेरण्ड ने कुण्डलिनी जागरण को मुद्रा प्रकरण में समाहित करते हुऐ तीन बिन्दुओं पर ज्यादा जोर दिया है। ये मुख्य बिन्दु निम्नलिखित है–

(1) कुण्डलिनी शक्ति का स्थान मूलाधार में स्थित है।
(2) कुण्डलिनी शक्ति का जागरण ही ज्ञान या आत्मज्ञान है।
(3) कुण्डलिनी शक्ति के जागरण के बाद भी कुछ मुद्राओं का अभ्यास आवश्यक होता है।

घेरण्ड संहिता के बन्धों, धारणाओं एवं मुद्राओं में कुण्डलिनी

(1) मूल बन्ध और कुण्डलिनी :– मूल बन्ध कुण्डलिनी शक्ति को जगाने की समर्थ्य रखता हैं कुण्डलिनी जागरण की अनुभूति विविध रूपों में प्राप्त होती है उदाहराणार्थ – (प) मूलाधार के अन्दर गुप्त शक्ति तत्व के जागरण के रूप में। (पप) मस्तिष्क के उस केन्द्र की सक्रियता या जागृति से जो मूलाधार से सबंध रखता है। इस केन्द्र के सक्रिय होने पर मानवीय चेतना का जो विस्तार होता है उसे भी कुण्डलिनी जागरण की अनुभूति के रूप में लिया जाता है। क्योंकि यह अनुभूति चेतना को ऐसे लोक में ले जाती है जिसमें विचार, व्यवहार एवं

कर्म में एकदम नये परिवर्तन दर्शित होते है।

(2) जालन्धर बन्ध और कुण्डलिनी :– यह बन्ध प्राण की गति को परिवर्तित करने तथा विशुद्धि, आज्ञा बिन्दू और सहस्त्रार चक्रों के जागरण में सहायक है। इसका अभ्यास मृत्यु पर विजय प्राप्त करवाता है। कुण्डलिनी योग के एक सिद्धांत के अनुसार बिन्दूचक्र क्षेत्र में एक मटर के दाने आकार की एक ग्रन्थि है जो एक हार्मोन निकालती है जो वहाँ से निकलकर शरीर में मणिपूरचक तक जाता है। जिसमें शरीर वृद्धता (जीर्णता) प्राप्त करता है। योगी इस हार्मोन को नियंत्रित कर मणिपूर तक नहीं जाने देते जिससें वृद्धता नहीं आती वृद्धता न आने से मृत्यू भी नहीं आता है। यह अमरत्व है।

(3) उड्डियान बन्ध और कुण्डलिनी :– घेरण्ड ने उड्डियान बन्ध को सभी बन्धों में श्रेष्ठतम बताते हुऐ इसका लाभ यह बतलाया है कि इससे स्वाभाविक रूप से मुक्ति प्राप्त होती है। कुण्डलिनी जब जाग्रत होती है तो शनैः शनैः ऊपर की ओर उठती है। तब साधना की कमी होने पर पुनः सुषुप्त अवस्था में जाने की सम्भावना रहती है यही साधक का पतन है। यदि कुण्डलिनी एक बार मणिपूर चक्र को भेद कर आगे बढ़ जावे तो फिर पतन नहीं होता । इसीकारण मणिपूर चक्र का जागरण मोक्ष द्वार का खुलना कहा जाता है। उड्डियान बन्ध का अभ्यास यही कार्य करता है।

(4) महाबन्ध और कुण्डलिनी :– यह बन्ध मूलबन्ध, जालन्धरबंध और उड्डियान बन्ध के लाभों के साथ ही पीनियल ग्रंथि के स्त्राव को प्रभावित करता है तथा अन्तः स्त्रावी तन्त्र का नियमन करता है। साधक के शरीर का क्षय हास जीर्णता को रोकता है तथा कोशिकाओं को पुर्नज्जीवन प्रदान करता है। काया कल्प हेतु यह बन्ध विशेष लाभकारी है। यह सभी चक्रों का जागरण कर प्राण–अपान और समान का अग्निमण्डल में विलय करता है जो प्राणों के अधिकतम आयाम की अवस्था है।

(5) पर्थिवीमुद्रा या अधोधारणामुद्रा :– मूलाधार में स्थित चुर्तुदल कमल में अधोमुखी त्रिकोण के बीच शिवलिंग में $3^{1/2}$ फेरे लिये लिपटी है। यह पृथ्वीतत्व का प्रतीक इस चक्र का जागरण ध्यान और धारणा द्वारा किया जा सकता है। पृथ्वी तत्व विजय से प्रकृति पर साधक का अधिकार हो जाता है।

(6) आम्भसी धारणा मुद्रा :– स्वाधिष्ठान चक्र जल (पालन पोषण) का प्रतीक है। यह चक्र मनुष्य को अचेतन अवस्था का प्रतीक है संस्कार और कर्म अचेतन मन में पड़े रहते है। यह इनका कर्म क्षेत्र है। अर्थात् उत्पति और भण्डार इसी क्षेत्र में है। जब कर्म और संस्कार जीवन को नकारत्मकता की ओर ले जाने लगते है तब इस मुद्रा की साधना करना चाहिये। निर्बोज अवस्था इस चक्र के भेदन से प्राप्त होती है।

(7) आग्नेयी मुद्रा (अग्नि या वैश्वानर धारणा) :– सभी धारणाओं में पूरक के बाद कुंम्भक का निर्देश है। कुंम्भक ही चक्रों को जगाता है। इस धारणा द्वारा मणिपूर चक्र का जागरण होता है। मणिपूरचक्र अग्नि क्षेत्र या नाभि स्थान है।

कुण्डलिनी योग के अनुसार प्राण की उत्पत्ति मूलाधार में होती है। प्राण का संचय मणिपूर में होता है। तथा प्राणों का वितरण आज्ञा चक्र में होता है। यह आग्नेयी मुद्रा हमारे प्राण संग्रह को संतुलित कर हमारी जीवनीशक्ति, गति, क्रियाशीलता को सम्यक बनाती है। तथा आलस्य, प्रमाद, शिथिलता को दूर करती है। इस मुद्रा के सिद्ध होने से काल का भय नहीं रह जाता साधक को अग्नि भी नहीं जला सकती।

(8) वायवीय धारण (वायु धारणा) :– अनाहत चक्र का तत्व वायु है। यह भावना या अनुभूति से सम्बंध रखता है। हमारे भीतर द्विविध भावनायें होती है। जैसे– प्रेम और द्वेष तथा क्रोध आदि। इस धारणा का अभ्यास अवचेतन मन की प्रतिक्रियाओं से है जिनका प्रभाव अनाहत चक्र पर होता है। भावना, अनुभूति और व्यवहार पर पूर्ण नियंत्रण इस धारणा की सिद्धि से संभव है। इस धारणा से आकाश गमन की शक्ति प्राप्त होती है।

(9) आकाशी धारणा :– विशुद्धि चक्र का तत्व आकाश है। पूर्व में हमने जो चार धारणायें देखी उनमें चेतना की अशुद्ध अवस्थायें विकार, भावनायें, अनियन्त्रित ऊर्जा, भय, असुरक्षा आदि ही थी। विशुद्धि चक्र चेतना की शुद्ध अवस्था का प्रतीक है। और यहां मन बुद्धि चित या अहंकार नही रह जाता केवल शुद्ध चैतन्य चेतन स्थिति होती है यह धारणा विशुद्धि चक्र का भेदन कर मोक्ष का द्वार खोलती है।

(10) महामुद्रा :– महा का अर्थ उच्चतम तथा मुद्रा का अर्थ मानसिक वृत्ति है। अतः वह मुद्रा जिसमें मानवीय चेतना अपनी उच्चतम अवस्था में गमन करती है। सक्रिय रहती है। यह मुद्रा मूलाधार और आज्ञाचक्र को जोड़ने वाले ऊर्जा परिपथ को उद्दीप्त करती है। इस कारण सम्पूर्ण तन्त्र प्राण ऊर्जा से भर जाता है। और जिससे सजगता बढ़ जाती है।

(11) नभो मुद्रा :– शरीर के सभी रोगों को दूर करने हेतु इस मुद्रा का अभ्यास किया जाता है।

(12) खेचरी मुद्रा :– जिव्हा को मक्खन लगाकर दोहन करते हुऐ रोज खीचे। धीरे–धीरे जिव्हा लम्बी होकर तालूमूल में प्रविष्ठ हो सकें। इस मुद्रा से मूर्च्छा, भूख प्यास, तृष्णा, आलस्य आदि नहीं सताते। रोग जरा मृत्यु नहीं होती। अग्नि वायु विष का प्रभाव नहीं होता। नवयौवन आ जाता है। तथा निश्चल समाधि प्राप्त होती है। खेचरी मुद्रा का अभ्यास चेतना को स्थूल शरीर से पृथक कर कारण शरीर में प्रवेश करवा सकता है।

(13) महाबेध मुद्रा :– यह मुद्रा महामुद्रा की पूरक है और उसके बाद इसका अभ्यास किया जाता है। यह शरीरिक मानसिक और प्राणिक स्तर पर शक्तिशाली प्रभाव दर्शाती है। घरेण्ड के अनुसार महाबन्ध, मूलबन्ध और महाबेध का सतत् अभ्यास साधक को **योग विशेषज्ञ (योगवित्)** बना देता है।

(14) विपरीतकरणी मुद्रा :– नाभिमूल में सूर्य और तालू मूल में चन्द्र का स्थान है। सूर्य द्वारा चन्द्र से स्त्रवित अमृत का पान करने से प्राणी की मृत्यू होती है। परन्तु चन्द्र नाड़ी के अमृत पान से अमरता प्राप्त होती है। इस कारण सूर्य और चन्द्र को विपरीत करने की स्थिति विपरीत करणी मुद्रा है।

(15) योनिमुद्रा :– सिद्धासन में बैठकर योनि मुद्रा का अभ्यास करते समय काकी मुद्रा द्वारा प्राण को खींचकर अपान से मिला देते है। और षट्चक्रों का ध्यान हंस या हूँ से कुण्डलिनी शक्ति को जगाकर सहस्त्रार चक्र में ले जाते है। वहाँ यह भावना करें कि मैं शिव के साथ शक्ति सम्पन्न होकर विहार कर रहा हूँ। शिव शक्ति के मिलन से मैं आनन्दमय स्वयंभू ब्रहा हो गया हूँ। इससे ब्रह्य हत्या, सुरापान, गुरूतत्व गमन आदि के दोष मिट जाते है।

(16) वज्रोणि मुद्रा :– यह मुद्रा इन्द्रियों को मजबूत और शक्तिशाली बनाने हेतु वीर्य रक्षा करती है। वीर्य की रक्षा से जीवनी शक्ति सूक्ष्म शरीर में प्रवेश कर चक्रों को प्रभावित करती है। जिससे उर्ध्वरेतस्त्व बनने में समर्थ होती है। इससे सभी कार्यो की सिद्धि प्राप्त होती है। बिन्दू सिद्धि से पृथ्वी तत्व मूलाधार का जागरण सिद्ध होता है।

(17) शक्तिचालिनी मुद्रा :– मूलाधार में सुप्त कुण्डलिनी का शयन अज्ञानता का प्रतीक है। कुण्डलिनी का जागरण (ब्रम्ह्यरंध्र का खुलना) शक्ति चालिनी मुद्रा द्वारा किया जा सकता है। यह मुद्रा सिद्ध होने पर योनिमुद्रा भी सिद्ध हो सकती है। इस शक्ति चालिनी मुद्रा की सिद्धि से विग्रह सिद्धि सहित सभी सिद्धियाँ प्राप्त होती है। तथा समस्त व्याधियों का नाश हो जाता है।

(18) तड़ागी मुद्रा :– पश्चिमोत्तान आसन में बैठकर की जाने वाली यह मुद्रा शारीरिकि और आन्तरिक या अध्यात्मिक लाभ देने वाली है। इससे मणिपूर चक्र में जो कि सम्पूर्ण शरीर में ऊर्जा के वितरण का केन्द्र है, जाग्रति आती है तथा प्राण का स्तर धीरे–धीरे बढ़ता है।

(19) माण्डुकी मुद्रा :– यह मुद्रा मुख बन्द कर तालू मूल में जिव्हा को घुमाने से सहस्त्रार से स्त्रावित सुधा रस का पान बली, पलित आदि रोगों को दूर कर शरीर में झुरियां पड़ना और बालों का सफेद होना रोक देती है। तथा स्थायी यौवन की प्राप्ति करवाती है। कुण्डलिनी योग की दृष्टि से मूलाधार के जागरण तथा ध्यान साधना में दिव्यगन्ध की प्राप्ति में सहायक है।

(20) शम्भवी मुद्रा :– दोनों भौहों के मध्य आज्ञाचक्र पर स्वयं अर्थात अपनी आत्मा का ध्यान शम्भवी मुद्रा है। इसका अभ्यास नर से नारायण बनाने वाला है। इसी के साथ **पंचधारणा मुद्रा** को भी बतलाया गया है जो आप पूर्व में अध्ययन कर चुके है। शम्भवी मुद्रा का अभ्यास बच्चों के भावनात्मक विकास के लिए 8 वर्ष की अवस्था से करने का निर्देश है।

(21) अश्विनी मुद्रा :– गुदा का बार–बार अंकुचन एवं प्रसरण करना अश्विनी मुद्रा है। इससे कुण्डलिनी का जागरण होता है। यह मुद्रा गुह्य रोगों को नष्ट करने वाली शरीरिक बल को विकसित करने और अकाल मृत्यु पर विजय दिलाने वाली है। (मूला धार चक्र जागरण में सहायक है)

(22) पाशिनी मुद्रा :– दोनों पैरों को कठं के पीछे की ओर ले जाकर उन्हें परस्पर मिलाकर पाश के समान मजबूती से पकड़ने को पाशिनी मुद्रा कहते है। यह शक्ति को जाग्रत कर बल और पुष्टि दायक है। सिद्धि और अकांक्षाओं वाले योगियों को इसे नित्य अभ्यास करना चाहिये।

(23) काकी मुद्रा :– मुख को कौवे की चोंच के समान करके, उससे धीरे–धीरे वायु का पान करना चाहिये। इसके अभ्यास से साधक कौवे के समान रोग रहित हो जाता है।

(24) मातंगनी मुद्रा :– कंठ तक जल वाले स्थान पर खड़े होकर एकान्त में ध्यान पूर्वक नासिका से जल खींचकर मुख से बाहर करें तथा मुख से जल खींचकर नासिका द्वारा निकालें। यह मुद्रा हाथी के समान बल प्रदान करने वाली है। तथा सदैव आनंद रखने वाली है।

(25) भुजंगिनी मुद्रा :– मुख को फैलाकर खोलकर कण्ठ द्वारा वायु को पियें। यही भुजंगिनी मुद्रा है। यह अमरत्व प्रदान करने वाली है। नवजीवन देने वाली है।

उपरोक्त प्रकार से घेरण्ड ने 25 मुद्राओं **मुद्रया स्थिरता चैव** मुद्रा द्वारा स्थिरता का अनुभव का जो निर्देश दिया है वह **प्राणमय कोश** एवं **मनोमय कोश** की स्थिरता से सम्बंधित है। घेरण्ड ने इन मुद्राओं में तीन प्रकार के अभ्यास एक साथ ही बललायें है ये हैं–

(1) बन्ध
(2) धारणा
(3) मुद्रा

घेरण्ड ने मुद्राओं का वर्णन करते समय चक्रों और कुण्डलिनी पर अधिक जोर दिया है। उनका आशय मुद्रा के अभ्यास से कुण्डलिनी शक्ति (आत्मशक्ति) जाग्रत करने से है। जिसके बल पर प्राणमय और मनोमय कोश को नियंत्रित किया जा सकें। प्राणमय और मनोमय कोश की स्थिरता को बनाये रखने हेतु धैर्य (धीरता) की आवश्यकता होती है जिसे उन्होंने प्रत्याहार के रूप में आगामी प्रकरण (अध्याय) में वर्णित किया है।

8.5.3 घेरण्ड संहिता में प्रत्याहार

योग साधक को सप्तांग साधना में चौथा अंग **धैर्यम्** की आवश्यकता पग–पग में पड़ती है। साधक हर परिस्थिति से अप्रभावित रहे, अपना धैर्य बनाये रखे, उद्विग्न न हो, अपनी सहनशीलता न खोये। यह मानसिक गुण है क्योंकि शरीर तो धैर्य खोता नहीं **मन ही धैर्य खोता है**। इस धैर्य को प्राप्त करने का साधन **प्रत्याहार** है।

प्रत्याहार का व्यावहारिक अर्थ है इन्द्रियों को उसके अपने–अपने विषयों से हटाना या परावृत करना। घेरण्ड भी इसी अर्थ को लेकर प्रत्याहार का वर्णन करते है। घेरण्ड की इस संदर्भ में दो मौलिक विशेषताएँ है–

(1) प्रत्याहार यद्यपि मानसिक अभ्यास है। फिर भी इसको स्थूल रूप में शारीरिक स्थिरता या अभ्यास से भी प्राप्त किया जा सकता है।
(2) पाँच ज्ञानेन्द्रियों को अपने अपने विषयों से लौटाने का अभ्यास अलग–अलग करना चाहिये।

इस कारण ही घेरण्ड ने पाँच प्रकार के प्रत्याहारों का वर्गीकरण किया है जो उन्हें अन्य ग्रंथकारों से विशिष्ट बनाते है ये पाँच प्रत्याहार निम्नांकित है–

(1) चक्षुरिन्द्रिय प्रत्याहार
(2) श्रवणेन्द्रिय प्रत्याहार

(3) त्वगेन्द्रिय प्रत्याहार
(4) ध्राणेन्द्रिय प्रत्याहार
(5) रसनेन्द्रिय प्रत्याहार

महर्षि घेरण्ड ने मात्र 5 श्लोकों में प्रत्याहार की परिभाषा एवं उनके पाँच प्रकारों का सुन्दर वर्णन निम्नानुसार किया है। अपने शिष्य राजा चण्डकपालिक से कहते है प्रत्याहार के करने से षट्रिपु (छः शत्रु) का विनाश होता है। ये छः शत्रु है (प) काम (पप) क्रोध (पपप) लोभ (पअ) मोह (अ) मद और (अप) मात्सर्य। मन जहाँ–जहाँ भी विचरण करता है उसे वहां से वापिस लौटाने का प्रयत्न कर मन को आत्मा में लगाने का प्रयत्न करना चाहिये। सांसरिक जीवन में मनुष्य को अनेक मनोभावों का सामना करना पड़ता है। जैसे (प) पुरूस्कार (पप) तिरस्कार (पपप) प्रिय वाणि (पअ) अप्रिय वचन। इन सबसे मन को हटाकर इसे आत्मस्थ करना चाहिये। मन अनेक इन्द्रियों के पीछे भागता है तथा आहत भी होता है। अतः सुगन्ध और दुर्गंध से, मीठा, खट्टा और तीखा आदि रसों से मन के चांचल्य को लौटाकर आत्मा में स्थित करना ही प्रत्याहार करना है। प्रत्याहार जब इन्द्रियां अपने नियंत्रण में आ जाती है तब मनः स्वतः अपने उछल कूद (उत्कटवृति) बंद कर स्वतः आत्म नियंत्रण में आ जाता है। इच्छाएं ही दुख का कारण है जब वही वश में होंगी तब दुख कैसा होगा इस प्रकार प्रत्याहार मानसिक क्लेशों से साधक को दूर कर साधना की उच्च अवस्थाओं की ओर बढ़ाता है।

8.5.4 घेरण्ड संहिता में प्राणायाम

योग साधना के घेरण्ड वर्णित सप्तांग साधना में पाँचवा साधन **लाघव** है। लाघव अर्थात् हल्कापन। योगी का शरीर हल्का रहना चाहिए, भारी भरकम नहीं। मोटे चर्बीयुक्त शरीर में कई विकार उत्पन्न होते रहते है। इनका शमन् करने हेतु जिस अंग का उपदेश महर्षि घेरण्ड ने किया है। वह है **प्राणायाम** इसके द्वारा योग प्राप्ती के पाँचवें साधन लाघव को प्राप्त किया जा सकता है। प्राणायाम की तैयारी हेतु महर्षि घेरण्ड ने चार प्रमुख तत्वों पर विशेष ध्यान आकृष्ट किया है ये तत्व निम्नलिखित है। इसके बाद ही प्राणायाम का अभ्यास शुरू करना उचित है।

आदौ स्थानं तथा कालं मिताहारं तथा परम्।
नाड़ी शुद्धिंश्च तत् पश्चात् प्राणायामंच साधयेत्।।

(घे. सं. 5/2)

(1)	(2)	(3)	(4)
स्थान	काल	मिताहार	नाड़ी शुद्धि

(1) स्थान

प्राणायाम् की साधना से मनुष्य देवता के समान बन सकता है इस कारण इस महत्वपूर्ण योगांग को निर्दिष्ट प्रक्रिया से ही करना चाहिये। इस हेतु स्थान निर्णय सर्वप्रथम आवश्यकता है। जिसमें निम्नांकित विशेषताएँ होनी चाहिये।

स्थान **दूर देश** में न हो, अत्याधिक सघन वन (अरण्य) में न हो। और **राजधानी** अर्थात अत्याधिक धना शहर न हो। यदि इनका ध्यान नही रखा गया तो सिद्धि की जगह हानि हो सकती है। क्योंकि दूर देश मे किसी का विश्वास नही होता, अरण्य (वन) रक्षक रहित रहता है और राजधानी में अधिक जनसमूह रहने के कारण प्रकाश, ध्वनि, वायु, जल, प्रदूषित रहते है। इस कारण ये तीन स्थान प्राणायाम हेतु वर्जित है। उपयुक्त स्थान वह है जहां सुन्दरता हो, धार्मिक स्थल हो, भोजन के लिए आवश्यक खाद्य सहजता से उपलब्ध हो जावें

तथा वह स्थान **उपद्रव रहित** भी हो अर्थात, युद्ध बाढ़ भूकम्प या चोरी डकैती वाला या अत्याधिक जीव जन्तु वाला स्थान न हो। ऐसे स्थान में सुन्दर कुटी जिसके चारों ओर चारदीवारी हो भूमि न बहुत ऊँची और न बहुत नीची ही हो। गोबर से लिपी हुई कीट पतंगों से रहित और एकान्त स्थान में हो। अर्थात व्यवधान रहित स्थान होना चाहिये। ऐसा स्थान प्राणायाम हेतु उपयुक्त होता है।

(2) काल

प्राणायाम हेतु द्वितीय महत्वपूर्ण तत्व काल है। अर्थात किन समयों में प्राणायाम किया जावे। घेरण्ड के अनुसार हेमन्त, शिशिर, ग्रीष्म और वर्षा ऋतु में प्राणायाम शुरू नहीं करना चाहिये। इन ऋषियों में प्राणायाम प्रारम्भ करने से रोग हो जाता है। **वसन्त** और शरद ऋतु में अभ्यास शुरू करना उचित होता है। इन ऋतुओं में अभ्यास करने से सिद्धि मिलती है। और रोगों से निवृति होती है। यह सत्य है। चैत और फाल्गुन माह तक वर्ष में बारह महीने होते है, इनमें दो दो महीने की छः ऋतुएँ होती है। माघ से अगले वर्ष के फाल्गुन तक चौदह महीने होते हैं। दो दो महीने की एक–एक ऋतु और चार–चार महीने की भी अनुभूति होती है। चैत्र वैशाख में वसन्त ऋतु, ज्येष्ट–आषाढ़ में ग्रीष्म श्रावण–भद्रपद में वर्षा, आश्विन–कार्तिक में शरद मार्गशीर्ष–पौष में हेमन्त और माघ–फाल्गुन में शिशिर ऋतु होती है। माघ से वैशाख पर्यन्त वसन्त का अनुभव होता है, चैत्र से आषाढ तक ग्रीष्म का, आषाढ़ से अश्विन के अन्त तक वर्षा का, भद्रपद से मार्गशीर्ष तक शरद का तथा कार्तिक से माघ तक शीत का अनुभव होता है। वसन्त और शरद ऋतु में योगारम्भ करने से सिद्धि का होना कहा गया है।

(3) मिताहार

प्राणायाम हेतु तृतीय महत्वपूर्ण तत्व मिताहार है। जो साधक प्राणायाम करने के काल में मिताहार नहीं करता उसके शरीर में अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं और उसको योग की सिद्धि नहीं होती। साधक को चावल जौ का सतु, गेहूँ का आटा, मूँग, उड़द चना आदि का भूसी रहित स्वच्छ करके भोजन करना चाहिए। परवल कटहल ओल, मानकन्द, कंकोल, करेला, कुदरू, अरवी, ककड़ी, केला, गुलर और चौलाई आदि का शाक भक्षण करें। कच्चे या पक्के केले के गुच्छे का दण्ड और उसका मूल, बैंगन, ऋद्धि, कच्चा शाक, ऋतु का शाक, परवल के पत्ते, बथुआ और हुरहुर का शाक खाया जा सकता है। उसे स्वच्छ, सुमधुर स्निग्ध और सुख द्रव्य से सन्तोषपूर्वक **आधा पेट भरना** और **आधा खाली** रखना चाहिये। विद्धानों ने इसे मिताहार कहा है। पेट के **1/2** भाग को अन्न से शेष आधे के आधे को जल से भरना चाहिये तथा शेष आधे अर्थात 1/4 भाग को संचालन हेतु खाली छोड़ देना चाहिये।

प्राणायाम में मिताहार के अलावा **निषिद्ध आहार** का भी ज्ञान होना चाहिये। ये निषिद्ध आहार इस प्रकार है। कड़वा, अम्ल, लवण और तित्क – ये चार रस वाली वस्तुएं भुने हुए पदार्थ, दही, तक्र शाक, उत्कट, मद्य, ताल और कटहल का त्याग करें। कुलथी मसूर, प्याज, कुम्हड़ा, शाक–दण्ड, गोया, कैथ, कफोड़ा, ढाक, कदम्ब, जम्बीरी, नीबू, कुदरू, लहसुन, कमरख, पियार हींग, सेम, और बंड़ा आदि का भक्षण योगारम्भ में निषिद्ध है। मार्ग–गमन, स्त्री–गमन तथा अग्नि–सेवन (तपना) भी योगी के लिए उचित नहीं। मक्खन, धृत, दूध, गुड़ शक्कर, दाल, आँवला, अम्ल रस आदि से बचें। पाँच प्रकार के केले, नारियल, आनार, सौंफ आदि वस्तुओं का सेवन भी न करें।

इलाइची लौंग, जायफल, उत्तेजनात्मक पदार्थ जामुन, जाम्बूल, हरड़ और खजूर का सेवन न करें। शीघ्र पचने वाले प्रिय, स्निग्ध, धातुओं को पुष्टिदायक मनोनुकूल पदार्थ ही खाने चाहिये। कड़ी वस्तुएँ, दूषित वस्तुएँ, उत्तेजना उवं वासना उत्पन्न करने वाली उष्ण, बासी, अधिक ठण्ढ़ी और अति गरम वस्तुओं को न खायें। प्रातः कालीन स्नान एवं उपवासादि शरीर को कष्ट पहुंचाने वाली क्रियाएँ छोड़ देनी चाहिए। एक बार भोजन

करना, निराहार रहना अथवा प्रत्येक पहर बाद भोजन करना भी योगाभ्यास में त्याज्य है। इस प्रकार विधि विधान से प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिये। प्राणायाम आरम्भ करने के पूर्व नित्य–प्रति दूध–धृत का सेवन और मध्यान्ह एवं सायं दोनों समय का भोजन करना चाहिये।

(4) नाड़ी शुद्धि

प्राणायाम के अभ्यास के पूर्व सबसे महत्वपूर्ण तत्व नाड़ी शुद्धि। बिना नाड़ी शुद्धि के प्राणायाम हानिकारक हो सकता है। महर्षि घेरण्ड कहते है प्राणायाम हेतु **कुश** या माटा आसन, **मृगचर्म** या **सिंहचर्म** अथवा कम्बल में से किसी प्रकार के आसन पर **पूर्व** या **उत्तर** की दिशा में मुख करके नाड़ी शुद्धि होने पर ही **प्राणायाम** की साधना करना चाहिये। नाड़ी शुद्धि के सम्बंध में चण्डकपालि ने दो महत्वपूर्ण प्रश्न महर्षि घेरण्ड से उठाये।

(1) नाड़ी शोधन किस प्रकार किया जावे ?

(2) नाड़ी शोधन का स्वरूप क्या है ?

इनका समुचित समाधान महिर्षि घेरण्ड न इस प्रकार किया है।

नाड़ियाँ मल से भरी हुई होती है। इसके कारण उनमें वायु का प्रवाह नहीं हो पाता, तब प्राणायाम की सिद्धि कैसे हो सकेगी। तथा तत्व ज्ञान कैसे उत्पन्न हो ? इस हेतु नाड़ी शोधन अनिवार्य है। नाड़ियों के दो प्रमुख भेद है– (1) समनु (2) निर्मनु।

(1) समनु नाड़ी :– इनका शोधन बीज मंत्र के द्वारा होता है।

(2) निर्मनु नाड़ी :– इनका शोधन धौतिकर्म के द्वारा होता है। इसका स्वरूप हमने शोधन क्रिया रूपी प्रथम अंग में विस्तार से अध्ययन कर लिया है। अतः यहां समनु नाड़ी शुद्धि की प्रक्रिया का वर्णन इस प्रकार है।

समनु नाड़ी शोधन की प्रक्रिया

(1) साधक उपयुक्त आसन एवं दिशा में बैंठकर पद्यासन लगाकर और गुर्वादि न्यास करें। फिर गुरू उपदिष्ट विधि से प्रणायाम के साधनार्थ नाड़ी शोधन का संकल्प लें। वायु बीज मंत्र **यं** का ध्यान कर 16 बार जपता हुआ बायीं नासिका द्वारा वायु खींचे। ध्यान में इस वायु बीज को तेजयुक्त धूम्रवर्ण का माने। इस प्रकार चन्द्र मार्ग से पूरक करने के पश्चात चौंसठ बार जप करता हुआ कुम्भक करे और फिर बत्तीस बार जपता हुआ दायीं नसिका द्वारा रेचक करे, अर्थात वायु को निकाले।

(2) इसके बाद नाभि में अग्नि तत्व को प्रकट कर **लं बीज** युक्त पृथ्वी तत्व सहित ध्यान करना चाहिये। सोलह मात्रा **रं** बीज का ध्यान करते हुए सूर्य नाड़ी (दयीं नासिका) से **पूरक**, चौंसठ मात्रा से **कुम्भक** और बत्तीस मात्रा से जप करता हुआ चन्द्र नाड़ी (बायीं नासिका) से **रेचक** करें।

(3) नासिका के अग्रभाग में चन्द्र बिम्ब के ध्यान पूर्वक 16 मात्रा तक है। बीज का जप करता हुआ इड़ा नाड़ी से **यं** बीज का पूरक करे। चौंसठ मात्रा तक **षं** बीज जपता हुआ सुषुम्ना में कुम्भक करे। उस समय नासिका से अमृत के टपकने और उससे शरीर की सब नाड़ियों के धुलने का ध्यान करे। फिर **लं** बीज का 32 मात्रा तक जप करता हुआ पिंगला नाड़ी से रेचक करें। इस प्रकार नाड़ी शुद्धि करके एक स्थिर आसन में बैठकर प्राणायाम का अभ्यास किया जा सकता है।

घेरण्ड संहिता के अनुसार प्राणायाम भेद

घेरण्ड संहिता में महर्षि घेरण्ड ने प्राणायाम के निम्नलिखित 8 भेद निरूपित कीये है –

सहितः सूर्यभेदश्च, उज्जायी शीतली तथा।
भस्त्रिका भ्रामरी मूर्च्छा केवली चाष्ट कुम्भकाः।।

(घे. सं. 5/45)

(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)	(7)	(8)
सहित	सूर्यभेदी	उज्जायी	शीतली	भस्त्रिका	भ्रामरी	मूर्च्छा	केवली

(1) सहित कुम्भक (प्राणायाम) :– यह प्राणायाम दो प्रकार का होता है –

(प) सगर्भ कुम्भक – यह बीज मंत्र द्वारा किया जाता है।

(पप) निगर्भ कुम्भक – यह बिना बीजमंत्र के किया जाता है।

(प) सगर्भ कुम्भक की विधि – पूर्वमुख या उत्तरमुख बैठकर लाल वर्ण रजोमुखी ब्रह्म का ध्यान करते हुये बाये नासिका रन्ध्र से **अँ** बीज मंत्र को 16 बार जपते हुऐ वायु का पूरक करे कुम्भक के पहले और पूरक के बाद में उड्डीयन बन्ध लगावें। फिर सत्वगुण युक्त **उकार** बीज रूप कृष्ण वर्ण हरि का ध्यान और जप करते हुए चौंसठ मात्रा तक कुम्भक करें। फिर तमोगुण युक्त **मकार** रूपी शुक्ल वर्ण के शिवजी के ध्यान के साथ **म** बीज मत्र जपते हुऐ रेचक करें। इसके बाद इसी प्रकार से दायीं नसिका से पूरक कुम्भक और बायीं नासिका से रेचक करें। इस प्रकार अनुलोम विलोम के अभ्यास करते हुऐ तर्जनी और मध्यमा अंगुलियों को न लगायें।

(पप) निगर्भ कुम्भक की विधि :– यह बीज मन्त्र के बिना ही किया जाता है। पूरक कुम्भक और रेचक वाले प्राणायाम की एक से सौ तक मात्राएँ होती है। इसी प्रकार उत्तम प्राणायाम की बीस मात्राएं, मध्यम की सोलह और अधम की बारह होती है। इस प्रकार प्राणायाम के तीन अंग होते है। अधम प्राणायाम से स्वेद निकलता है, मध्यम से मेरूकम्प होता है और उत्तम से पृथ्वी से उठकर आकाश होना और पृथ्वी से उठना तीनों लक्षण सिद्धि के समझने चाहिये।

प्राणायाम के साधन से आकाश–गमन रोग–नाशन और कुण्डलिनी जागरण होता है। प्राणायाम का साधन करने वाले पुरूष के चित्त में परमानन्द की उत्पति होती है। और वह सुखी बनता है।

(2) सूर्यभेदी कुम्भक

(1) सर्वप्रथम सूर्य नाड़ी से यथा शक्ति वायु भरकर, जालन्धर बन्ध लगाकर कुम्भक करें ओर जब तक पाँव से केश पर्यन्त पसीना न आ जाये, तब तक कुम्भक द्वारा वायु धारण किये रहें।

(2) प्राण अपान, समान, व्यान, उदान, नाग, कूर्म कृकंल देवदत्त और धनंजय ये 10 प्राण है। हद्य में प्राण, गुदा में अपान, नाभि में समान, कण्ठ में उदान और पूरे शरीर में व्यान, ये पाँच प्राण प्रमुख हैं नागादि पाँच उपप्राण हैं उदर में **नाग** उन्मीलन में **कूर्म**, भूख में **कृकंल**, जँभाई लेने में **देवदत्त** और मरने पर भी जो नहीं छोड़ता वह धनंजय कहलाता है। नाग से चैतन्य, कूर्म से निमेषण, कृकंल से भूख प्यास, देवदत्त से जंभाई और **धनंजय** कभी भी नहीं निकलने वाला हैं तथा उससे वाणी निकलती है।

(3) कुम्भक करने के समय उक्त प्राणादि वायुओं को पृथक करके सूर्य नाड़ी द्वारा नाभिमूल से समान वायु को उठाना चाहिये और बांयी नासिका से धीरे–धीरे रेचक करना चाहिए। फिर दाहिनी नासिका से वायु पूरित कर विधिवत् कुंभक करें और वायीं नासिका से रेचक करें। इस क्रिया को बार–बार करना चाहिये। यही क्रिया सूर्यभेदन कहलाती है। यह सूर्यभेदन संज्ञक प्राणायाम जरा–मृत्यु का नाश करने वाला है। इससे **कुण्डलिनी** का जागरण होता है शरीरस्थ अग्नि प्रदीप्त होती है। इस प्रकार यह सूर्य नामक श्रेष्ठ

प्राणायाम है।

(3) उज्जायी कुम्भक :– इसमें बाह्म वायु को दोनों नासिका छिद्रों से खींचकर, आन्तरिक वायु को हृद्य एवं कंठ से खीचें और कुम्भक द्वारा धारण करें। फिर मुख का प्रक्षालन कर जालन्धर बन्ध लगा कर विध्नरहित विधि ा से यथाशक्ति वायु को धारण करें। यह उज्जायी कुम्भक कहलाता हैं इससे सभी कार्य सिद्ध हो जाते है। कफ रोग क्रूर वायु और आजीर्ण की उत्पत्ति नहीं होती। आम वात क्षय कास ज्वर प्लीहा राग नहीं रहते। यदि उज्जायी कुम्भक को सिद्ध कर लें तो जरा–मरण भी नष्ट हो जाते हैं।

(4) शीतली कुम्भक :– इसमें जिह्वा के द्वारा वायु को खींचकर उदर को परिपूर्ण करें। फिर कुछ काल तक कुम्भक द्वारा वायु को धारण कर दोनों नासिका छिद्रों से निकाल दें। यह शीतली प्राणायाम कहलाता है। इसका साधन सदैव करना चाहिये। इससे अजीर्ण तथा कफ–पित्त के विकार उत्पन्न नहीं होते।

(5) भस्त्रिका कुम्भक :– इसमें लोहार द्वारा धौकनी से वायु भरने के समान नासिका द्वारा वायु के उदर को पूरित करें और उदर में ही धीरे –धीरे चलायें इस प्रकार बीस बार करके कुम्भक द्वारा वायु धारण करें। तत्पश्चात लोहार की धौकनी से वायु निकलने के समान नासिका द्वारा वायु निकाल लें। विद्वानों ने इसे भस्त्रिका कुम्भक कहा हैं इस प्रकार तीन बार करना चाहिये। इससे किसी प्रकार के रोग नहीं होते और दिनों दिन आरोग्य की वृद्धि होती हैं

(6) भ्रामरी कुम्भक :– अर्ध रात्रि व्यतीत होने पर जब किसी जीव जन्तु का शब्द सुनायी न दें, तब एकान्त स्थान में जाकर योगी को अपने हाथों से दोनों कानों को बंद करके पूरक–कुम्भक करना चाहिये। इसमें साधक को दायें कान में अनेक प्रकार की ध्वनियाँ सुनायी देती है। प्रथम झींगुर की ध्वनि, फिर बंशी की ध्वनि, फिर मेघ गर्जन का शब्द फिर बाजे बजने का झर्झर शब्द फिर भौरों का गुजंन घण्टा, घड़ियाल, तुरही भेरी, मृदंग, दुढ़भी आदि का निनाद सुनायी देता है। इस प्रकार नित्य अभ्यास करने से अनेक प्रकार के नादों के श्रवण का अनुभव होता है और अनाहत में शब्द की ध्वनि होती है। निमीलित नेत्रों से हद्य में बारह दल के कमल की प्रति ध्वनि के मध्य जो ज्योति दिखाई देती है, वही ब्रह्य है। इसमें मन का विलय होकर विष्णु भगवान के परमपद की प्राप्ति होती हैं इस प्रकार भ्रामरी कुम्भक सिद्ध होने पर समाधि की सिद्धि हो जाती है। जप से आठ गुना उत्तम ध्यान है, ध्यान से आठ गुना तप है तथा तप से आठ गुना संगीत (नाद) हैं संगीत से बढ़कर कुछ नहीं हैं

(7) मूर्च्छा कुम्भक :– सर्वप्रथम सुखपूर्वक पूर्वोक्त कुम्भक का अभ्यास करके मन को विषयों से हटाकर भौंहों के मध्य में स्थित आज्ञा चक्र में लगायें और इस पद्म में विद्यमान परमात्मा में लींन कर दें। यह मूर्च्छा कुम्भक कहलाता है। इस कुम्भक की सिद्धि से आनन्द की प्रप्ति होती है।

(8) केवली कुम्भक :– इसमें प्रत्येक पूरक क्रिया के साथ हर जीव की आत्मा **''सो''** एवं रेचक के साथ **हं** मंत्र का जप करती है। प्रत्येक जीव **24 घंटे** में इक्कीस हजार छः सौ **21,600 श्वास** लेता है यह दिन–रात में श्वासों की संख्या हैं इसे **'ह' सो'** अथवा विलोम से **सोऽहं'** अजपा गायत्री कहते हैं प्राणी इसे सदा जपता रहता है। मूलाधार, हृद्य कमल और नासापुट, इन तीनों स्थानों में वायु का आवागमल होता है। स्थूल शरीर **छियानवे अँगुल,** परिणाम का है और स्वाभाविक बहिर्गत वायु की गति द्वादश अँगुल होती है। यह गति गायन में सोलह अँगुल, भोजन में बीस अँगुल, मार्ग चलने में चौबीस अँगुल, निद्रा में तीस अँगुल , मैथुन में छत्तीस अँगुल और व्यायाम में और भी अधिक होती है।

स्वाभाविक प्राण की गति बाहर अँगुल है। यदि इससे न्यून गति हो जाये तो आयु वृद्धि होती है। बारह अँगुल से अधिक होने पर आयु का क्षय होता है। शरीर में जब तक **प्राणवायु** की स्थिति रहती है, तब तक मृत्यु नहीं होती। कुम्भक के अभ्यास से **प्राणवायु** को मुख्य समझें। जब तक शरीर स्थित रहे, तब तक केवली कुम्भक करता हुआ अजपा मन्त्र जपता रहे। केवली करने, अर्थात **इक्कीस हजार छः सौ बार** जप पूर्ण हाने पर गति घट जाती है और आयु में वृद्धि होती है। इसलिए योगियों को इसे अवश्य करना चाहिए। अजपा की संख्या से दुगना जप करें तो मन में अत्यन्त आनन्द उत्पन्न हो जाता है। ।।90–93।।

नांसापुटों से वायु को खींचकर केवली संज्ञक इस कुम्भक को करें। प्रथम दिन साधना करने पर चौंसठ बार तक श्वास–प्रश्वास को धारण करें, केवली कुम्भक का नित्यप्रति **आठ प्रहर** में आठ बार अभयास

करना चाहिए। **प्रातःकाल, मध्याह्न, सांयकाल, तीनो** समय समान संख्या में साधन करे। जब तक इस कुम्भक की सिद्धि न हो जाये तब तक अजपा गायत्री के साथ प्रमाण से पाँच–पाँच बार वृद्धि करते जायें।

8.5.5 घेरण्ड संहिता में ध्यान

महर्षि घेरण्ड ने सप्तांगयोग के छठवें अंग के रूप में **ध्यान** का उपदेश निम्नलिखित प्रकार से किया है।

स्थूलं ज्योतिस्थासूक्ष्मं ध्यानस्य त्रिविधं विदुः।
स्थूलं मूर्तिमयं प्रोत्कं ज्योतिस्तेजोमयं तथा।
सूक्ष्मं बिन्दुमयं ब्रह्य कुण्डली परदेवता।।

(घे.सं. 6/1)

(1)	(2)	(3)
स्थूल ध्यान	ज्योर्तिध्यान	सूक्ष्म ध्यान

घेरण्ड ने ध्यान के तीन विभाग कर विस्तार से उनका वर्णन किया है। ये तीन ध्यान **(1) स्थूल ध्यान (2) ज्योर्तिध्यान एवं (3) सूक्ष्म ध्यान है।** इनमें स्थूल ध्यान से सौ गुना उत्तम ज्योर्तिध्यान या तेजोध्यान को कहा जाता है। और तेजोध्यान से लाख गुना उत्कृष्ट सूक्ष्म ध्यान को कहा गया है। इसमें एक विशेषता यह है कि सूक्ष्मध्यान की प्रक्रिया में इन्होंने कुण्डलिनी जागरण के बाद शाम्भवी मुद्रा की प्रक्रिया के साथ इस ध्यान की सम्भावना का वर्णन किया है।

(1) स्थूल ध्यान :– नेत्र बन्द करके अपने हद्रय में सुधा–सागर का ध्यान करें। कल्पना करे कि वहां एक बड़ा सागर अमृत से भरा हुआ है। उसके बीच में एक द्वीप है, जो रत्नों से भरा हुआ है और वहाँ की बालू भी रत्न चूर्णो की है। इस द्वीप में फलों से लदे अनेक वृक्ष है। जो द्वीप की शोभा बढ़ा रहे हैं। ये पुष्प द्वीप की खाइयों की भाँति प्रतीत होते हैं। बहुत सारे वृक्ष सुगन्धित पुष्प, मालती, मल्लिका, चमेली, केशर, चम्मा, पारिजात, **स्थल पद्म** आदि बिखरे हुए है। द्वीप के कोने–कोने में इन पुष्पों की सुगन्ध फैली हुई है। इस द्वीप के मध्य में कल्पवृक्ष नामक पेड़ है। इसकी चार शाखायें चारों वेदों का प्रतिनिधित्व करती है। यह वृक्ष सुन्दर फल–फूलों से लदा हुआ है। सम्पूर्ण द्वीप में कोयल पक्षी की मधुर बोली एवं भ्रमर के गुंजन की ध्वनि सुनायी दे रही है। इस द्वीप में एक चबूतरा है। यह चबूतरा हीरे, नीलम आदि अनेक प्रकार के रत्नों से सजा हुआ है। पुनः कल्पना करें उस चबूतरे के ऊपर आपके इष्ट देव का सतत् ध्यान करना होता है। जैसेः– आपके इष्ट आपके गुरू है, तो उनके स्वरूप को स्मरण कीजिये। उनके शरीर में ध्यान वस्तुओं जैसे– वस्त्र, माला आदि पर ध्यान को क्रमशः एकाग्र करते जाते है। इस प्रकार स्थूल रूप ध्यान किया जाता है।

स्थूल ध्यान की द्वितीय विधि (प्रकारान्तर)

स्थूल ध्यान की उपरोक्त वर्णित विधि के अलावा भी एक और विधि है इसमें ब्रह्मरन्ध में सहस्त्रार नामक सहस्त्र दल वाला महापद्य है, उसके मध्य में बारह दल का एक कमल है यह शुभ्र वर्ण तथा परम तेज सम्पन्न है। इसके बारह दल में क्रमशः **ह स क्ष म ल व र यूँ ह स ख फ्रें** – ये बारह अक्षर लिखे है। उसकी कर्णिका में अ क थ इन तीन अक्षरों की तीन रेखायें है, मध्य में ह ल क्ष इन त्रिकोणाकार अक्षरों के मण्डल में ऊँ बना है। पुनः नादविन्दुमय एक पीठ विराजमान है। उस पीठ पर दो हंस खड़े हैं। वहीं पादुका भी है। इसी स्थल पर गुरूदेव विराजित होते हैं। उनकी दो भुजाएँ है। श्वेत रंग के शुक्र वस्त्र पहने हैं। शुभ्र चन्दन चर्चित

हैं। शुभ्र वर्ण की माला धारण कीये हुए है। उनके बायें भाग में रक्त वर्ण की शक्ति शोभा दे रही है। ऐसा ध्यान करने से स्थूल ध्यान सिद्ध होता है।

(2) ज्योतिर्ध्यान

ज्योतिर्ध्यान या तेजोध्यान वह ध्यान है जिसमें योग–सिद्धि तथा आत्म–प्रत्यक्ष होता है। इसमें मूलाधार में सर्पाकार कुण्डलिनी शक्ति है। इस स्थान में दीपक की लौ के रूप में आत्मा का निवास है। यहां तेजोमय परात्पर ब्रह्म का ध्यान करना ही तेजोध्यान होता है इसे ज्योति ध्यान भी कहते है। भौहों के बीच और मन के उर्ध्व भाग में जो **प्रणवात्मक रूप (ॐ आकार)** ज्योति है, उस ज्योति (लौ) रूप का ध्यान ज्योतिर्ध्यान है।

(3) सूक्ष्म ध्यान

महर्षि घेरण्ड ने सूक्ष्म ध्यान की बड़ी प्रभावशाली व्याख्या अपने उपदेश में की है। उन्होंने बतलाया कि बड़े प्रयत्न से विरले पूर्व सुकृत कर्मों वालों की ही कुण्डलिनी जाग्रत होती है। तथा यवृ कुण्डलिनी शक्ति आत्मा के साथ मिलकर नेत्ररन्ध्र से निकालकर उर्ध्वभागस्थ राजमार्ग नामक स्थान (मेरू दण्ड पर्वत) में धूमती है। घूमते समय सूक्ष्मतत्व चंचलतत्व (वायु रूप) के कारण उसे देखना दुर्लभ होता है। योग साधक शाम्भवी मुद्रा के अभ्यास के द्वारा कुण्डलिनी का ध्यान करता है। इस ध्यान को ही सूक्ष्म ध्यान कहते है। यह दुर्लभ एवं गोपनीय ध्यान है। अर्थात इसकी साधना कठिन एवं गुप्त रखी जाना चाहिये। इससे आत्मसाक्षात्कार तथा ध्यान सिद्धि होती है।

8.5.6 घेरण्ड संहिता में समाधि

घेरण्ड संहिता में उपदेशित सप्तांगों में **समाधि** सातवाँ एवं अन्तिम अंग बतलाया गया है। महर्षि घेरण्ड ने राजा चण्ड को उपदेशित किया कि **समाधि** सबसे बड़ा **योग** है। अच्छे कर्मफलों एवं भाग्योदय के बल पर समाधि गुरू भक्ति एवं उनकी कृपा से ही प्राप्त है। विद्या की प्रतीति, स्वगुरू की प्रतीति और आत्मा की प्रतीति एवं मन का प्रबोध जिसको दिन–दिन बढ़ता है– वही योगी समाधि–योग–साधन के अभ्यास का अधिकारी होता है। मन को शरीर से पृथक करके परमात्मा में लगाने से योगी संसार से मुक्त हो जाता है। मैं ब्रह्म से भिन्न नहीं हूँ। मैं ब्रह्म ही हूँ, शोक युक्त नहीं हूँ। मैं सच्चिदानन्दरूप नित्यमुक्त स्वभाव वाला हूँ ऐसी प्रतीति होना ही समाधि है।

शाम्भव्या चैव भ्रामर्या खेचर्य्या योनिमुद्रया।
ध्यानं नादं रसानन्दं लयसिद्धिश्चतुर्विधा।।
पन्चधा भक्ति योगेन मनोमूर्च्छा च षड्विधा।
षड्विधोयं राजयोगः प्रत्येकमवधारयेत्।।

(घे. स. 7/5–6)

(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)
ध्यानयोग	नादयोग	रसानन्दयोग	लयसिद्धियोग	भक्तियोग	राजयोग
शाम्भवीमुद्रा	खेचरीमुद्रा	भ्रामरीमुद्रा	योनिमुद्रा	मनोमूर्च्छा	कुम्भक

इस श्लोक के अनुसार समाधि के छः भेद है। तथा ये छः भेदों वाली समाधि साधना हेतु छः

अलग–अलग मुद्राओं का विधान भी महर्षि घेरण्ड ने स्पष्ट कर दिया है। समाधि के भेद और भेद के अनुसार समाधियां निम्नलिखित है–

(1) **ध्यान** योग समाधि इसकी साधना हेतु **शाम्भवी** मुद्रा का अभ्यास।
(2) **नादयोग** समाधि इसकी साधना हेतु **खेचरी** मुद्रा का अभ्यास।
(3) **रसानन्द** योग समाधि इसकी साधना हेतु **भ्रामरी** मुद्रा का अभ्यास।
(4) **लयसिद्धि**योग समाधि इसकी साधना हेतु **योनि मुद्रा** का अभ्यास।
(5) **भक्तियोग** सामाधि इसकी साधना हेतु **मनोमूर्च्छा** मुद्रा का अभ्यास।
(6) **राजयोग** समाधि इसकी साधना हेतु **कुम्भक** का अभ्यास।

(1) ध्यानयोग समाधि

शाम्भवी मुद्रा करके आत्मा को प्रत्यक्ष रूप में देखने का प्रयत्न करें, और फिर बिन्दुमय ब्रह्म का साक्षात्कार करते हुए मन को बिन्दु में लगा दें। तत्पश्चात् मस्तक में विद्यमान ब्रह्मलोकमय आकाश के मध्य में आत्मा को ले जायें और जीवात्मा में आकाश को लय करें तथा परमात्मा में जीवात्मा का लय करें। इससे योगी सदानन्दमय एवं समाधिस्थ हो जाता है।।7–8।।

(2) नादयोग समाधि

मन्द वेग से वायु लेकर भ्रामरी–प्राणायाम करते हुए मन्द वेग से ही क्रमशः वायु को निकालें, अर्थात् रेचक करें। रेचक करते समय भौरे के गुन्जार के समान ध्वनि उत्पन्न होती है। यह नाद् जहाँ हो रहा हो, वहां मन को लगा दें। यह नाद् **समाधि** है।।9–10।।

(3) रसानन्दयोग समाधि

जब खेचरी मुद्रा लगायी जाती है और जिह्वा ऊपर की ओर मुड़ती है। तब इस साधारण यौगिक क्रिया के अभ्यास से समाधि की सिद्धि होती है।।11।।

(4) लयसिद्धियोग समाधि

योनिमुद्रा का साधन करके योगी स्वयं में शक्ति की भावना और परमात्मा में पुरूष की भावना करे। फिर यह भावना करे कि मुझमें और परमात्मा में शक्ति और पुरूष का विहार हो रहा है। तत्पश्चात् आनन्दमय ऐक्य स्थापित करता हुआ यह चिन्तन करे कि ' मैं अद्वैत ब्रह्म हूँ।' इससे जो समाधि होती है, उसे लयसिद्धि योग समाधि कहते हैं।।12–13।।

(5) भक्तियोग समाधि

अपनें हद्रय में परम आह्लाद सहित भक्तियोग के द्वारा इष्टदेव के स्वरूप का चिन्तन करना चाहिए। इससे आनन्द के आँसू बहने लगते और शरीर पुलकायमान होता है तथा मन में चैतन्य और एकाग्रता आकर ब्रह्म से साक्षात्कार होता है। यह भक्तियोग समाधि कहलाती है।।14–15।।

(6) राजयोग समाधि

मनोमूर्च्छा कुम्भक करता हुआ योगी मन को एकाग्र करके ब्रह्म में लगाये। इस प्रकार परमात्मा के साथ समायोग होने को मनोमूर्च्छा या राजयोग समाधि कहते है।।16।।

बोध प्रश्न :

टिप्पणी क : अपने उत्तर नीचे दिये गये स्थान में लिखें।

ख : इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

प्रश्न 5 घेरण्ड संहिता के अनुसार मुद्राओं से आप क्या समझते हैं लिखिये ?

प्रश्न 6 घेरण्ड संहिता में वर्णित समाधि के प्रकार बतलाइयें ?

8.6 सारांश

द्वितीय प्रश्न पत्र के लिए खण्ड 8 में आपने महर्षि घेरण्ड की कृति घेरण्ड संहिता का परिचय प्राप्त किया। इस खण्ड में आपने 3 इकाईयों का अध्ययन किया। इस खण्ड के अध्ययन में आपने महर्षि रचित घेरण्ड संहिता ग्रंथ का सम्यक ज्ञान भली–भांति प्राप्त किया।

महर्षि घेरण्ड का समय 1650 ई. से 1750 ई. के बीच माना जाता है। इनकी कृति घेरण्ड संहिता **हठयोग** का एक प्रणाणिक ग्रंथ स्वीकार किया जाता है। इस ग्रंथ में योग विषयक अनेक मौलिक एवं व्यवहारिक तत्व प्राप्त होते है। जैसे इस ग्रंथ में **घटयोग** या **घटस्थयोग** पद का विस्तार से विवेचन किया गया है। यहाँ घट का अर्थ शरीर से लिया जाता है। और शरीर शुद्धि या घटशुद्धि पर विशेष जोर दिया गया है। घेरण्ड संहिता घटशुद्धि द्वारा ही योग के अन्तिम लक्ष्य को प्राप्त करने का विधान बतलाते है। तथा योग के सर्वप्रथम अंग के रूप में शुद्धि क्रियाओं को स्थान दिया गया है।

शुद्धि क्रियाओं के द्वारा शारीर शुद्धि हेतु सर्वप्रथम योगांग प्रतिपादन महर्षि घेरण्ड की अपनी मौलिक देन है। उन्होंने इस हेतु छः प्रकार की शुद्धि क्रियाओं का उपदेश दिया है। ये छः क्रियायें (षट्कर्म) **धौति, वस्ति, नेति, त्राटक, नौलि, एवं कपालभाति है।** ऐसा ही हठ्प्रदीपिका में स्वात्माराम जी ने भी वर्णित किया है। इन छः क्रियाओं के महर्षि घेरण्ड ने 21 उप प्रकार बतलायें है। और प्रत्येक का विस्तार से विवरण भी दिया है। इनमें 4 प्रकार की धौति, (अर्न्तधौति, दन्तधौति, हद्धौति, तथा मूलशोधन) इनमें अन्तधौंति के 4 प्रकार (वातसार, वारिसार, वन्हिसार तथा बहिष्कृत) बतलाये है। दन्त धौति के पाँच प्रकार (दन्तमूल, जिव्हामूल, दो कर्णरन्ध्र तथा कपालरन्ध) इनमें हद्धौति के 3 प्रकार (दण्डधौति, वमनधौति, तथा वासधौति) का विस्तृत वर्णन किया गया है। इनमें मूलशोधन का एक ही प्रकार है। इस प्रकार कुल धौति की संख्या 13 है। बस्ति भी दो प्रकार की बतलाई गयी है (1) जलबस्ति और (2) शुष्कबास्ति। इसी प्रकार नेति, त्राटक और नौलि के एक–एक प्रकार उपदेशित किये गये तथा कापालभाति के तीन (3) प्रकार बतलाये गये है वातक्रम, व्यूतक्रम व शीतक्रम। कपालभाति को यहां भालभाति भी कहा गया है। इस प्रकार कुल **21 प्रकार** की शुद्धि क्रियाओं की प्रक्रिया एवं महत्व का विस्तार से अध्ययन आप ने किया है। घेरण्ड का मत है कि शरीर शुद्धि के बिना योगाभ्यास में आगे बढ़ना निरर्थक ही नहीं हानिकारक भी है। इनमें भी घेरण्ड की मौलिक विशेषता यह है कि अभ्यासियों की रूचि और शिकायतों के अनुसार उन्होंने इन छः क्रियाओं के भेद–प्रभेद किये हैं। इन क्रियाओं के माध्यम से जब शरीर निरोग शुद्ध और स्वस्थ हो जाता है। तो आसनों के अभ्यास द्वारा शरीर को सुदृढ़ बनाया जा सकता है।

आसन को द्वितीय अंग के रूप में घेरण्ड ने इसका फल शारीरिक दृढ़ता प्राप्त करना बतलाया है। घेरण्ड ने 32 आसनों का वर्णन किया है। जिसमें 15 हठप्रदीपिका के अनुरूप ही है। इन विविध आसनों का प्रयोजन ध्यानात्मक आसनों में अधिक समय तक स्थिरता एवं सुख पूर्वक बने रह सकने की योग्यता हासिल करवाना ही है। **मेरूदण्ड** जितना लचीला बनेगा शरीर उतना ही स्वास्थ्य एवं निरोग होगा इस कारण मेरूदण्ड़ को क्या 6 प्रकार से इन आसनों द्वारा मोड़ा जा सकता है। आसनों के नियमित अभ्यास से शरीर में लचीलापन, नयी स्फूर्ति नया रक्त संचरण, तथा उत्साह पूर्ण निरोगी काया की उपलब्धता होती है। घरेण्ड़ जी ने कुछ आसनों का प्रयोग कुण्डलिनी जागरण हेतु भी उपदेशित किया है। पद्यासन और सिद्धासन के अभ्यास से **मोक्षकपाट** खुल जाने तक आसन के महत्व को उपदेशित किया है।

मुद्रा को सप्तांग साधना में तृतीय स्थान पर उपदेशित कर इसके 25 प्रकारों का बड़ा व्यावहारिक एवं सारगर्भित स्वरूप प्रस्तुत किया गया है।

मुद्रा प्रत्याहार और धारणा का सम्मिलित प्रयोग ही है। ऐसा घेरण्ड संहिता से दृष्टव्य होता है। घेरण्ड संहिता में मुद्रा प्रकरण में एक और विशेषता है कि धारणा नाम अलग से रखते हुए भी पॉच धारणाओं (अधो, आम्भसी, वैश्वानरी, वायवी और नभो) को मुद्रा के अभ्यास के अंतर्गत ही माना है। मुद्राओं का अभ्यास घेरण्ड ने मानसिक और आध्यात्मिक अनुभवों हेतु करने का निर्देश किया है। अभ्यास एवं लाभ की दृष्टि में परिवर्धन घेरण्ड की अपनी

मौलिक विशेषता है। प्राणायाम के पूर्व मुद्राओं को संख्या में परिवर्धन घेरण्ड की अपनी मौलिक विशेषता है। प्राणायाम के पूर्व मुद्राओं का वर्णन कर घेरण्ड ने अपनी व्यावहारिक साधकता का परिचय दिया क्योंकि मुद्राओं द्वारा अधिकाधिक शारीरिक मानसिक स्थिरता प्राप्त करने के उपरान्त ही प्राणायाम् का अभ्यास पूर्ण फलकारक होगा। एक और विशेषता घेरण्ड की यहाँ यह कि उन्होंने **कुण्डलिनी** जागरण हेतु **मूलाधार** से सहस्त्रार तक अलग अलग चक्रों के जागरण का महत्व एवं प्रक्रिया भी दर्शायी हैं।

घेरण्ड ने **प्रत्यहार** के रूप में चतुर्थ उपदेश का वर्णन किया है। प्रत्याहार का प्रचलित अर्थ इन्द्रियों को वश में करना अर्थात् इन्द्रियों को अपने विषयों से हटाना है। घेरण्ड जी ने भी इसी सैद्धान्तिक धरातल में इसे प्रयुक्त करने हेतु निदेर्शित किया है। प्रत्याहार के पाँच प्रकारों का वर्णन भी इनकी अपनी मौलिक विशेषता है। इसमें सबसे पहले नेत्र इन्द्रियों के द्वारा बाहर जाने वाले मन को पृथक करना है। इसी प्रकार श्रवणेन्द्रिय, त्वगिन्द्रिय, ध्राणेन्द्रिय और अंत में रसनेन्द्रिय के द्वारा फिर त्वागिन्द्रिय फिर ध्राणेन्द्रिय और रसनेन्द्रिय के द्वारा ही मन को एकाग्र करना है।

प्राणायाम को पंचम उपदेश के रूप रख कर महर्षि घेरण्ड ने अपने योगानुभवों का द्वार ही खोल दिया। यहां प्राणायाम का विशद विवेचन महर्षि करते है। इस हेतु **स्थान काल मिताहार** एवं **नाड़ीशुद्धि** की अनिवार्यता बतलाई गयी है। महर्षि घेरण्ड में प्राणायाम् को सभी अंगों के बीच विशिष्ट स्थान दिया गया है। स्थान काल, मिताहार एवं नाड़ीशुद्धि एवं नाड़ीशुद्धि में सर्वाधिक महत्व नाड़ी का ही है। नाड़ीशुद्धि की प्रक्रिया में घेरण्ड जी ने **समनु** और **निर्मनु** नामक दो नाड़ियों को **बीज मंत्र** तथा **कुम्भक** के प्रयोग द्वारा शोधित करने का निर्देश दिया है। घेरण्ड जी ने अनुलोम विलोम व अन्य सभी प्राणायाम कुम्भक के साथ ही करने का निर्देश किया है। **निर्मनु** नाड़ियों की शुद्धि **षटक्रियाओं** से हो जाती है। तथा **समनु** नाड़ियों की शुद्धि के लिए **बीज मंत्र** के साथ कुम्भक (प्राणायाम्) का विधान बताया है। कुम्भक के **8 भेद** सहित, सूर्यभेदी, उज्जायी, शीतली, भस्त्रिका, भ्रामरी मूर्छा और केवली इन्होंने निर्देशित कीये है। इनमें सहित के दो भेद (1) सगर्भ और (2) निगर्भ है। बीजमंत्र सहित कुम्भक के सगर्भ और बीजमंत्र रहित कुम्भक को निगर्भ प्रणायाम् कहा जाता है। कुम्भक में त्रिबंध (मूलबंध, उड्डियान बंध एवं जालंधर बंध) की आवश्यकता पर इन्होंने जोर दिया है। तथा उड्डियान बंध का विशेष महत्व का बतलाया है।

ध्यान को छटवें अंग के रूप में महर्षि घेरण्ड ने कुम्भक की सिद्धि के उपरांत करने को कहा है। यान के तीन प्रकारों **स्थूल ध्यान, ज्योति र्ध्यान** तथा **सूक्ष्म ध्यान** में बाँटकर इनकी क्रमशः उत्तमता बतलाई है।

समाधि के रूप में सप्तांगों की पूर्णता करते हुए घट (शरीर) से मन को पूर्णतः पृथक कर अर्थात शारीर के मान (अस्तित्व) को न अनुभव करते हुऐ मन को अन्य (परम) आत्मा में विलीन करने को समाधि के रूप में वर्णित किया है। इस समाधि के इन्होंनें छः भेद कीये है। ये है– (1) शाम्भवी समाधि (2) भ्रामरी समाधि (3) खेचरी समाधि (4) योनिमुद्रा समाधि (यह क्रमशः ध्यान–नाद रसानन्द एवं लय के वाचक है।) (5) भक्ति योग समाधि तथा (6) मनोमूर्छा समाधि। घेरण्ड ने समाधि के ये प्रकार बताकर अपने नवीन विचारों का बीजारोपण योग साधना के क्षेत्र में किया है। समाधि की प्राप्ति हेतु प्राणायाम एवं मुद्रा को ही इन्होंने आधार बनाया है। तथा इन्हीं प्राणायाम एवं मुद्रा को मिलाकर समाधि के भेद बतलाना इनकी अपनी मौलिकता है।

उपर्युक्त विवेचन से हम निष्कर्षतः यह कह सकने में सक्षम हुए है कि प्रथम दृष्टया तो यह ग्रंथ **'घटयोग'** विषयक प्रतीत होता है। किन्तु वास्तव में यह हठयोग–सम्प्रदाय का एक महत्वपूर्ण ग्रंथ है। हठयोग के अर्न्तगत इसका विभाजन करने का एक और महत्वपूर्ण कारण यह भी दिखाई देता है कि इन ग्रंथों की विषय वस्तु करीब एक समान (समस्त्रोत) होना है। वह चाहे हठयोग हो, घटयोग हो कुण्डलिनी योग हो या प्राणायाम हो सभी का मूल स्त्रोत तंत्रशास्त्र ही है। इस कारण हम घेरण्ड संहिता को हठयोग का अद्वितीय ग्रंथ मान सकते है। इसकी व्यावहारिक उपयोगिता 21वीं शताब्दी की संस्कृत एवं दिनचर्या में और भी महत्वपूर्ण हो चली है।

8.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

प्रश्न 1 महर्षि घेरण्ड का संक्षिप्त परिचय दीजिये ?

उत्तर –वर्तमान योगाचार्यो की परम्परा में महर्षि घेरण्ड अत्यन्त प्राचीन योगी माने जाते है। इनके जन्म समय एवं स्थान का अभी तक कोई स्पष्ट विवरण नहीं मिल सका है वैसे इनका काल विभिन्न हस्तलेखों के आध ार पर 1650 ई. से 1750 ई. के बीच माना जाता है। राजा चण्डकपालिक को संवाद शैली में याग ज्ञान का जो उपदेश इन्होंने दिया वही ग्रन्थ रूप में **सप्तांगयोग** अथवा **घटस्थयोग** के रूप में घेरण्ड संहिता नामक ग्रंथ में प्राप्त होता हैं। यह घेरण्ड संहिता योग के अनेकों ग्रंथों के बीच अपनी मौलिकता तथा नये व्यावहारिक पद विन्यास के कारण अपनी अलग–अलग पहचान रखतें है। इसी कारण महर्षि घेरण्ड के सिद्धहस्त योगी होने की पुष्टि भी हो जाती है। इस प्रकार महर्षि घेरण्ड योग साधना के व्यावहारिक क्षेत्र में एक **आदर्श उपदेशक** का स्थान रखते है।

प्रश्न 2 महर्षि घेरण्ड द्वारा प्रतिपादित सप्तांगों का संक्षिप्त विवरण दीजियें ?

उत्तर – महर्षि घेरण्ड द्वारा प्रतिपादित **घटस्थयोग** सप्तांगों में विभाजित किया गया है ये सप्तांग निम्नलिखित हैः–

1. प्रथम अंग शोधन (शुद्धि क्रियाये हैं)
2. द्वितीय अंग आसन (दृढ़ता हेतु)
3. तृतीय अंग मुद्रा (स्थैर्य हेतु)
4. चतुर्थ अंग प्रत्याहार (धैर्य हेतु)
5. पंचम अंग प्राणायाम (लाधव हेतु)
6. षष्ठम अंग ध्यान (प्रत्यक्ष हेतु) तथा
7. सप्तम अंग समाधि (र्निलिप्तता हेतु) का वर्णन अपने सप्तांगों में किया है।

प्रश्न 3 महर्षि घेरण्ड के अनुसार आसनों की संख्या लिखिये ?

उत्तर – महर्षि घेरण्ड के अनुसार आसनों की संख्या 32 है। ये आसन निम्नलिखित हैः–

(1) सिद्धासन (2) पद्मासन (3) भद्रासन (4) मुक्तासन (5) वज्रासन (6) स्वास्तिकासन (7) सिंहासन (8) गोमुखासन (9) वीरासन (10) धनुरासन (11) मृतासन (12) गुप्तासन (13) मत्स्यासन (14) मत्स्येन्द्रासन (15) गोरक्षासन (16) पश्चिमोत्तानासन (17) उत्कटासन (18) संकटासन (19) मयूरासन (20) कुक्कुटासन (21) कूर्मासन (22) उत्तानकूर्मासन (23) मण्डूकासन (24) उत्तानमण्डूकासन (25) वृक्षासन (26) गरूड़ासन (27) वृषभासन (28) शलभासन (29) मकरासन (30) उष्ट्रासन (31) भुजंगासन (32) योगासन।

प्रश्न 4 महर्षि घेरण्ड द्वारा बताये किसी एक आसन का पूर्ण विवरण दीजियें ?

उत्तर– महर्षि घेरण्ड द्वारा बताये गये 32 आसनों में पद्मासन जो कि एक ध्यानात्मक आसन है। का विवरण निम्नलिखित है–

पद्मासन (Lotus Pose)

वामोरूपरिदक्षिणं च चरणं संस्थाप्य वाम तथा,
दक्षोरूपरिपश्चिमेन विधिना धृत्वा कराभ्यां दृढ़म्।
अङ्.गुष्ठौ हृद्वये निधाय चिबुकं नासाग्रमालोक्ये,
देतद्वयाधिविनाशकारि यमिनां पद्मासनं प्रोच्यते।।

(ह.प्र. 46)

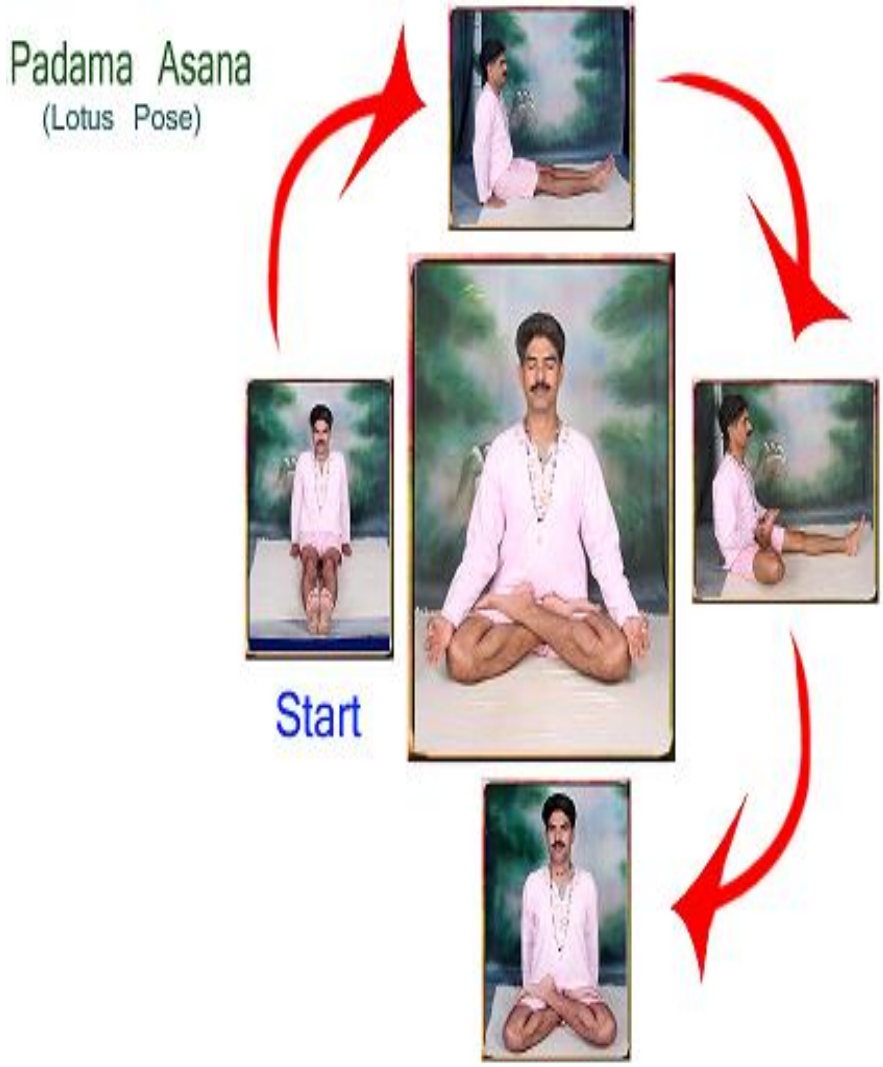

चित्र क्र 54

नामकरण

इस आसन को लगाने के बाद साधक की शरीर स्थिति पद्य अर्थात कमल के पुष्प के समान दिखाई देने से इसे पद्यासन कहा जाता है।

विधि

(अ) सर्वप्रथम दोनों पैंरों को फैलाकर बैठ जाते है, मेरूदण्ड सीधा रखते है।

(ब) दहिने पैर को उठाकर दाहिनी जांघ पर रखते है। दोनों पैरों की एड़िया कूल्हें की हड्डी के किनारे पर स्पर्श करती रहें।

(स) हाथ अंजलि बनाकर या ज्ञान मुद्रा या चिन मुद्रा में रखते है। दृष्टि भूमध्य या नासाग्र रखते है।

(द) पद्यमासन के कई भेद है जैसे– (1) अर्द्धपद्मासन (2) बद्धपद्मासन (3) उत्थितपद्मासन (4) गुप्तपद्मासन आदि।

लाभ

- पैरों की नस नाड़ियाँ शुद्ध होती है।
- यह आसन प्राणशक्ति को मूलाधार चक्र (गुदा एवं जननेन्द्रिय के मध्य) से सहस्त्रारचक्र (सिर के ऊपरी भाग में) तक उचित रूप से प्रवाहित करता है। यह कुण्डलिनी जागरण में सहायक है।
- रीढ़ के निचले भाग एवं आमाशय में फैले स्नायु–जाल को अतिरिक्त रक्त पहुंचाकर पुष्ट करता है।
- यह आसन आमाशय को खून की अतिरिक्त आपूर्ति करता है।
- यह आसन शारीरिक, स्नायविक, एवं भावनात्मक विकारों के सामंजस्य हेतु सहायक है।
- इसके अभ्यास से जठराग्नि तीव्र होती है तथा भूख बढ़ती है।
- फाइलेरिया, गठिया, आमवात तथा जनन रोगों को ठीक कर देता है। दमा एवं मिर्गी रोग दूर हो जाते है।
- सुषुम्ना को सक्रिय करने मन को स्थिर एवं एकाग्र करने में सहायक आसन है।

सावधानियाँ

- पैरों पर पर्याप्त लोच आने के बाद करना चाहिये।
- साइटिका, मेरू रज्जु के पास दर्द या अन्य रोगों की स्थिति में नहीं करना चाहिये।
- इसका अभ्यास धीरे–धीरे बढ़ाना चाहिये।

प्रश्न 5 घेरण्ड संहिता के अनुसार मुद्राओं से आप क्या समझते हैं लिखिये ?

उत्तर –घेरण्ड संहिता में महर्षि घेरण्ड ने तृतीय अंग के रूप में तृतीय उपदेश में मुद्राओं का वर्णन किया है। इन मुद्राओं की संख्या 25 बतलाई गई है। राजा चण्डकपालिक को उपदेश करते हुऐ महर्षि घेरण्ड ने मुद्राओं को योग साधक की मानसिक स्थिरता (स्थैर्य) के लिए आवश्यक योगाभ्यास बतलाया है। मन के नियंत्रण हेतु मुद्राओं की साधना आवश्यक होती है। **मुद्रायें मनोकायिक क्रियायें है**। अर्थात ये उभयमुखी फलदायिनी है। एक तरफ तो ये बर्हिमुखी वृत्ति से स्वास्थ्य वर्धन में सहायक है तो अर्न्तमुखी वृति से ये मानसिक बल और स्थैर्य को भी प्राप्त करवाती है। मुद्राओं का सम्बंध शरीर में फैली 72 हजार नाड़ियों के सम्यक् स्वास्थ्य से सम्बध रखती हैं ये मुद्रायें तन्त्रिका तंत्र की संवेदनाओं और उत्तेजनाओं को शांत एवं सयंत करने में सहायक होती है। ये भावना प्रधान स्थितियाँ है अर्थात अन्दर के मानसिक भावानुरूप बाह्य शरीर की स्थितियाँ है। इनके द्वारा हम चित को शान्त, प्रसन्न और आनन्द के भावों से भर सकते है।

प्रश्न 6 घेरण्ड संहिता में वर्णित समाधि के प्रकार बतलाइये ?

उत्तर –घेरण्ड संहिता में उपदेशित सप्तांगों में समाधि सातवाँ एवं अन्तिम अंग बतलाया गया है। समाधि सबसे बड़ा योग है। समाधि के छः भेद महर्षि घेरण्ड ने छः मुद्राओं के साथ किया है ये निम्नलिखित है–

(1) ध्यान योग समाधि यह शाम्भवी मुद्रा से प्राप्य है।
(2) नादयोग समाधि यह खेचरी मुद्रा मुद्रा से प्राप्य है।
(3) रसानन्दयोग समाधि यह भ्रामरी मुद्रा से प्राप्य है।
(4) लयसिद्धियोग समाधि यह योनि मुद्रा से प्राप्य है।
(5) भक्तियोग सामाधि यह मनोमूर्च्छा मुद्रा से प्राप्य है।
(6) राजयोग समाधि यह कुम्भक (प्राणायाम) से प्राप्य है।

इस प्रकार 6 मुद्राओं के साथ 6 सामाधियों का वर्णन महर्षि घेरण्ड नें अपने ग्रंथ घेरण्ड संहिता में किया है।

8.8 उपयोगी सन्दर्भ ग्रंथ

(1) घेरण्ड संहिता — **भाष्यकार राष्ट्रगुरू**
श्री 1008 श्री स्वामी जी महाराजः
प्र का. श्री
पीताम्बरापीठ–संस्कृत–परिषद्
दतिया (म.प्र.)

(2) घेरण्ड संहिता — **स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती**
प्रका. बिहार योग भारती मुंगेर बिहार

(3) घेरण्ड संहिता — **डॉ. चमन लाल गौतम**
प्रका. संस्कृति संस्थान
ख्वाजाकुतुब (वेदनगर)
बरेली उ.प्र. 343003

(4) योग परिचय — **डॉ. पीताम्बर झा**
प्रका. गुप्ता प्रकाशन
डी.–35 साउथ एक्सटेंशन
भाग एक नई–दिल्ली – 110049

(5) योग का परिचयात्मक स्वरूप — **डॉ. ओमनारायण तिवारी**
प्रका. कुलसचिव पं. सुन्दरलाल शर्मा
(मुक्त) विश्वविद्यालय छत्तीसगढ़,
बिलासपुर– 495001

(6) म्दबलबपवचमकपब क्पबजपवदंतल — **ळमवतह थ्मनपतेजमपद**
वि लवहं छमू लवता छल च्तंहवद
भ्वनेम न्वैण।ण

;7द्ध जीम लवहं वि स्पहीज — **टपतपबी त्पमामत भ्ंदे**
जीम बसेंपब म्वेजमतपब
भ्ंदक इववा वि।नदकंसपदपलवहं
ब्समंतसांम ब्ण।ण जीम कूंद
भ्वतेम च्तमेण

;8द्ध ल्वहं ावें ;टवसण 1.2द्ध — **ू ँउप क्पहंउइंतरप ंदक**
क्तण डींरवज ौंप
ज्ञंपअंसलंक ींउं
ँडल्ड ँउपजपण
स्वदंअसं प्दकपं

...0...

खण्ड – 9

अष्टांग योग ग्रंथ का परिचय

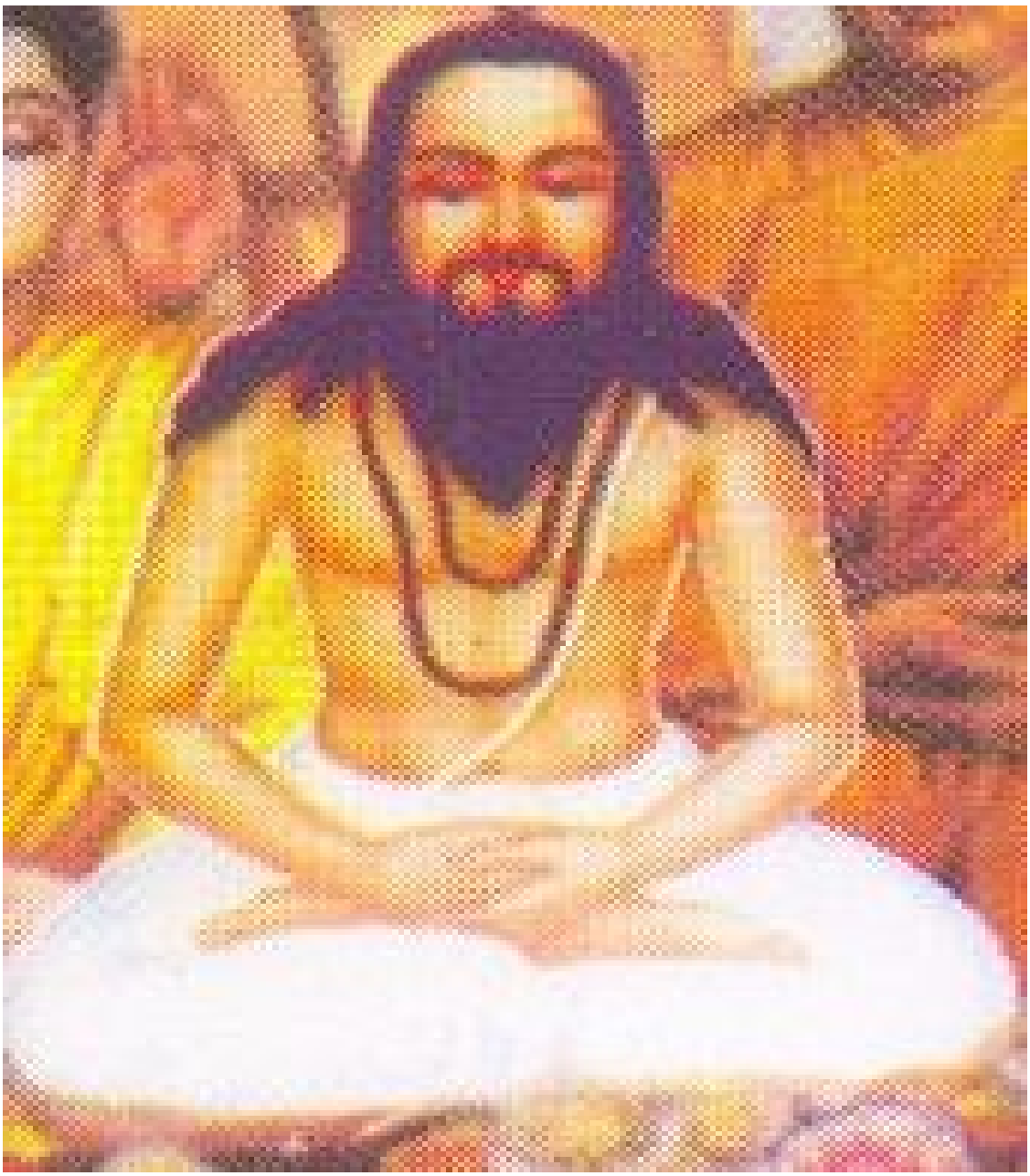

स्वामी चरणदास

खण्ड – 9 अष्टांगयोग ग्रंथ का परिचय

योग विज्ञान में डिप्लोमा कार्यक्रम के द्वितीय प्रश्न पत्र **अष्टांगयोग ग्रंथ का परिचय** के नवम् खण्ड का अध्ययन आप यहाँ करेगें। इस खण्ड के अर्न्तगत इकाई क्रमाँक 20, 30, एवं 31 इन तीन इकाईयों का अध्ययन निम्नलिखित खण्ड संरचना के अनुसार आप करने जा रहे है।

खण्ड संरचना

पृष्ठ क्र.

9.0 प्रस्तावना ———————————————————— 173

9.1 उद्देश्य ———————————————————— 173

9.2 विषय प्रवेश ———————————————————— 174

9.3 इकाई 29 अष्टांग योग ग्रंथ का परिचय ————————— 174–196

9.3.1 स्वामी चरणदास का परिचय

9.3.2 अष्टांग योग ग्रंथ की विषय वस्तु

9.3.3 अष्टांग योग चरणदास कृत मूल ग्रंथ

9.4 इकाई 30 अष्टांग योग में संयम, यम, नियम एवं आसन —— 197–204

9.4.1 अष्टांग योग में संयम

9.4.2 अष्टांग योग में यम

9.4.3 अष्टांग योग में नियम

9.4.4 अष्टांग योग में आसन

9.5 इकाई 31 अष्टांग योग में प्रत्याहार, धारणा, ध्यान एवं समाधि – 205–208

9.5.1 अष्टांग योग में प्रत्याहार का स्वरूप

9.5.2 अष्टांग योग में धारणा का स्वरूप

9.5.3 अष्टांग योग में ध्यान का स्वरूप

9.5.4 अष्टांग योग में समाधि का स्वरूप

9.6 सारांश ———————————————————— 209

9.7 बोध प्रश्नों के उत्तर ————————————————— 210–211

9.8 उपयोगी सन्दर्भ ग्रंथ ———————————————— 212

9.0 प्रस्तावना

द्वितीय प्रश्न पत्र खण्ड 9 के अर्न्तगत इकाई क्रमांक 29, 30 एवं 31 का अध्ययन आप करने जा रहे है। इस खण्ड में आप योग के सबसे **अर्वाचीन** योगाचार्य चरणदास जी एवं उनके ग्रंथ **अष्टांगयोग** का विस्तार से अध्ययन करेगें।

अष्टांग योग ग्रंथ चरणदास जी द्वारा उनके योग शास्त्र में लिखे गये ग्रंथों में दो ग्रंथों का एक साथ सम्मिलित रूप में प्रकाशन है। अष्टांग योग ग्रंथ मूलतः **साधुक्कड़ी** भाषा में लिखा गया है जिसमें कई भाषाओं के शब्दों का सम्मिश्रण होता है। कृष्णमार्गी होने के कारण चरणदासजी का योग से संबंध नैसर्गिक ही रहा है। यौगिक उपनिषदों एवं अन्य यौगिक ग्रंथों जैसे हठप्रदीपिका इत्यादि के मूल उद्देश्य के अनुरूप ही जाति–पांति, धर्म सम्प्रदाय की संकीर्णताओं को दूर करते हुऐ योगाचार्य चरणदास जी ने **अष्टांयोग** नामक पद्यानुवाद ग्रंथ की रचना की जन समान्य को इस ग्रंथ की व्यवहारिकता, सहजता एवं साधना की उच्चता सटीक एवं बेजोड़ है। संवाद शैली में लिखा गया यह ग्रंथ अपनी मौलिक विशेषताओं से युक्त है। जिसमें **संयम** को नया अर्थ सर्वप्रथम अष्टांग योग ग्रंथ में ही दिया गया है। संयम की साधना साधक को शरीरिक एवं मानसिक दोनों ही स्तरों पर योग के अन्य अंगों की साधना में बढ़ने के लिये तैयार करता है। हठयोग साधना के सभी अंगों का सुन्दर समन्वय चरणदास जी ने अपने दृष्टिकोण से किया है जिसमें उन्होंने उपनिषदों, वशिष्ठ संहिता वृहदयोगियज्ञवल्कयस्मृति पंतजलि योगसूत्र आदि अनेक ग्रंथों के विषयों का यथास्थान उपयोग किया है। जैसे यम नियम के दस अंग उन्होंने वसिष्ठ संहिता के अनुसार ही प्रस्तुत कीये है।

अष्टांग योग में चरणदास जी ने योग के आठ अंगों यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि की सरल एवं स्पष्ट व्याख्या तो की है। साथ ही साथ तांत्रिक साधना एवं हठयौगिक साधना के सम्मिश्रण नाड़ी, वायु (प्राण), चक्र, कुण्डलिनी, मुद्रा बंध, एवं अष्टसिद्धियों आदि पर भी अपने दृष्टिकोण से पर्याप्त विवेचन प्रस्तुत कर दिया है। 4 बहिरंग एवं 4 अन्तरंग साधना के क्रम को इन्होंने भी अन्यपूर्ववर्ती योगियों के अनुरूप सिद्धांतः माना है। प्राणायाम में मात्रा (समय) और आवृति का विस्तारपूर्वक विवेचन भी इनकी अपनी एक और मौलिक विशिष्टता है। इस प्रकार हम कह सकते है कि चरणदास जी योग विज्ञान की विविध ा विधाओं के व्यवहारिक ज्ञाता एवं कुशल उपदेशक रहे है। इस कारण इस ग्रंथ की लोकप्रियता योग शिक्षण के सभी उपक्रमों में आवश्यक बन गई है।

9.1 उद्देश्य

खण्ड 9 के अर्न्तगत इकाई 29, 30 एवं 31 के अध्ययन का उद्देश्य योगाचार्य चरणदास जी के अष्टांगयोग के हठयौगिक स्वरूप के समन्वयात्मक अध्ययन की जानकारी प्रदान करना है जिससे आप समझ सकेगें कि –

- अष्टांग योग ग्रंथ की विषय वस्तु एवं ग्रंथकार कौन है।
- अष्टांग योग की क्रमवार व्यावहारिक साधना का समन्वयात्मक स्वरूप कैसा है।
- अष्टांग योग साधना के विविध अंगों की अपनी लक्ष्य स्वातंत्रता किस प्रकार है।
- स्वास्थ्य रक्षण एवं रोग निवारण में उद्देश्य साम्यता का स्वरूप कैसा है।
- अनुभव सिद्ध प्रायोगिक विधियों का व्यावहारिक योग साधना में प्रयोग करने की क्षमता विकसित करना।
- आपको इस खण्ड की इकाईयों के अध्ययन द्वारा योग के लक्ष्य को प्राप्त करने हेतु विस्तृत दृष्टिकोण से शरीर रूपी साधन के विविध सोपानों पर शोधन की प्रक्रियाओं से अवगत करवाना।
- उपरोक्त उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु योगाचार्य चरणदासजी के व्यवहारिक अनुभवों का लाभ उठाने

हेतु

उनके द्वारा रचित अष्टांग योग की विषय वस्तु का प्रभावी प्रस्तुतीकरण कर सकने की योग्यता हासिल करवाना।

9.2 विषय प्रवेश

योगी चरणदास जी ने अपने साधना परक व्यावहारिक अनुभवों के आधार पर लोककल्याण हेतु प्राप्य 17 लघु ग्रंथों की रचना की थी। इन ग्रंथों में हठयोग, राजयोग, मंत्रयोग एवं लययोग अर्थात् योग चातुष्ट्य की सभी साधनाओं का सार रूप समीक्षात्मक तौर पर समाहित किया गया है। इन सभी 17 रचनाओं को एक ही ग्रंथ के रूप में जिसका नाम इन सत्रह रचनाओं में से एक रचना **भक्तिसागर** के नाम पर ही रख दिया गया। इन सत्रह रचनाओं को भक्तिसागर नामक ग्रंथ रूप में **श्री व्येकेटेश्वर प्रेस** मुम्बई ने प्रकाशित किया। इस श्रंखला में भक्तिसागर ग्रंथ में सम्मिलित 17 ग्रंथों में से ग्रंथ क्रमांक 4 जिसका नाम **अष्टांगयोग** है तथा ग्रंथ क्रमांक 5 जिसका नाम **षट्कर्म हठयोगवर्णन** है। को संयुक्त रूप से एक ही ग्रंथ के रूप में जिसे **अष्टांगयोग** नाम देकर सर्वप्रथम कैवल्यधाम लोनावाला के आजीवन सचिव श्री ओमप्रकाश तिवारी जी ने हिन्दी एवं अग्रेंजी माध्यम से सुलभ करवाया है। अष्टांगयोग नामक इस संयुक्त ग्रंथ में प्रश्नोत्तर शैली में 153 दोहा और अष्टपदी छन्द में गुरू शिष्य संवाद दिया गया है। इसी प्रकार षट्कर्म हठयोग ग्रंथ भी कुल 41 दोहा और अष्टपदी छन्द के रूप में गुरू शिष्य संवाद शैली में प्रस्तुत किया गया है। ग्रंथ में चरणदास जी की साधनानुभूति साधकों के लिए ग्रंथ को महत्व को स्वमेव बढ़ देती है। खण्ड 9 में आपके अध्ययन का क्षेत्र ग्रंथ क्रमांक 4 अष्टांग योग को रखा गया है। जिसमें कुल 153 दोहा और अष्टपदी छंद है।

9.3 इकाई 29 अष्टांग योग ग्रंथ का परिचय

9.3.1 स्वामी चरण दास का परिचय

स्वामी चरण दास जी योगाचार्यो की श्रृंखला में सबसे अर्वाचीन योगी के रूप में जाने जाते है। इनका जन्म् सन् 1706 ई0 में **डेहरा** ग्रांम राजस्थान प्रदेश के जिला अलवार (मेवाड़ क्षेत्र) में हुआ था। बचपन में इनकी माता का देहान्त हो गया था। इनके पिता ने भी इस समय गृह त्याग दिया था। इस कारण चरणदास जी को उनके नाना जो कि दिल्ली में निवास करते थे अपने साथ दिल्ली ले कर आ गये। इस समय चरणदास जी मात्र 7 वर्ष की आयु के थे। इस काल में भारत अनेकों सामाजिक कुरीतियों का शिकार था। ऊँच नीच जाति पांति का विकृत स्वरूप था। जनता मनसबदारों से त्रस्त थी। समाज में समाजिक मूल्यों का पतन हो चुका था। तांत्रिक बौद्धों के प्रभाव अभी जीवित बने हुऐ थे। छोटे–छोटे राजा आपस में लड़कर पाश्चात्य राजसत्ता के समक्ष अपना सब कुछ गवाँ रहे थे। अषतोष असुरक्षा सांस्कृतिक धार्मिक शून्यता फैलती जा रही थी। ऐसे समय में चरणदास जी **कृष्ण भक्ति** की सशक्त डोर लिए जीवन के लक्ष्य साधन हेतु अष्टांग योग की साधना का प्रचार करने लगे। 79 वर्ष की अवस्था में सन् 1785 ई0 में चरणदास जी समाधिस्थ हुए। एक ही स्थान पर जीवन पर्यन्त इनकी योगसाधना चलती रही। आज भी जामा मस्जिद के पास इनका आखाड़ा इनके बतायें अनुशासनों के अनुसार सक्रिय है। हजारों योग अनुयायी आज भी इनके बताये मार्ग पर साधना शील है।

9.3.2 अष्टांग योग ग्रंथ की विषय वस्तु

अष्टांग योग ग्रंथ शिष्य की जिज्ञासाओं का समाधान गुरूवचनों द्वारा की जाने वाली संवाद शैली मे प्रस्तुत किया गया है। शिष्य का प्रश्न शुरू होता है कि मैं योग साधना में पूर्णतः (निपट) आज्ञानी हूँ, कृपया मुझे योग के आठ अंगों के बारे में समझाइये तथा उनको साधने की (अभ्यास करने की) विधि बतलाइये। यह भी स्पष्ट कीजिये की इसे अष्टांग योग क्यों ? कहा जाता है। गुरू वंदना के बाद शिष्य के इस प्रश्न के उत्तर में चरणदास जी गुरूवचन के रूप में अष्टांग योग तथा उनके अलग–अलग अंगों की साधना विधि को बतलाने का आश्वासन इस आधार पर देते है कि पहले साधक को इन्हें समझने के लिए **संयम** का पालन करना होता है जिससे योग के अभ्यास में बाधा नहीं होती है।

यहाँ गुरू वचन से यह भी ध्वनित होता है कि योग **समझने का विषय नहीं** है। यह **अभ्यास के सोपान है।** तथा **होने का विषय** है। अर्थात् योग को समझ कर योगी नहीं बना जा सकता, योग करके (साधना द्वारा) ही योगी हुआ जा सकता है। योग क्रियापरक धातु है।

संयम की साधना का चरणदास द्वारा दिया गया यह सर्वथा नवीन प्रस्तुतीकरण है जो उनकी व्यावहारिक मौलिकता का अनुठा उदाहरण है। यहां यह भी जान लेना आवश्यक है कि पूर्व योग ग्रंथों में योग की साधना का प्रारंम्भ यम से शुरू होता है। जबकि चरणदास जी के समय में सामाजिक सांस्कृतिक परिवर्तनों के कारण योग साधना के क्रम में **संयम** से शुरूआत को व्यावहारिक माना गया है। क्योकि इनके समय तक खान–पान रहन सहन आदि में अनेक गिरावटों का और अनेक प्रदूषण शुरू हो चुके थे ऐसा प्रतीत होता है कि व्यक्ति अनेकों सामाजिक राजनैतिक परिवर्तनों के कारण दैनिक जीवनचर्या के मूल्यों को भुला बैठे थे जो भी हो चरणदास जी द्धारा संयम की प्रतिपदित आवश्यकता योग साधकों हेतु आज अनिवार्य आवश्यकता के रूप में स्थान पा चुकी है।

इसप्रकार **शिष्य प्रश्न** और **गुरू के वचन** (उत्तर) के रूप में चरणदास जी के इस अष्टांग योग ग्रंथ के वर्ण्य विषय निम्नांकित है–

(1) संयम
(2) यम–नियम
(3) आसन
(4) प्राणायाम
(5) प्रत्याहार
(6) ध्यान
(7) सामाधि।

☞ छात्रों को मूल पाठ की कमी न होने पावें इस हेतु चरणदास जी, द्वारा वर्णित विषय वस्तु के चतुर्थ ग्रंथ **अष्टांग योग** का मूल पाठ यहाँ दिया जा रहा है।

9.3.3 चरणदासकृत मूल ग्रंथ (अष्टांग योग)

शिष्यवचन

व्यासपुत्र धनि धनि तुम्हीं, धनि धनि यह अस्थान। मम आशा पूरी करी, धनि धनि वह भगवान ।। 1
तुम दर्शन दुरलभ महा, भये जु मोको आज। चरण लगो आपा दियो, भये जु पूरण काज।। 2
चरणदास अपनो कियो, चरणन लियो लगााय। शिरकरधरिसबकछुदियो, भक्ति दई समुझाय।। 3
बालपने दरशन दिये, तबहीं सब कुछ दीन। बीज जु बोया भक्तिका, अब भया वृक्ष नवीन।। 4
दिन दिन बढ़ता जायगा, तुम किरपा के नीर। जब लगमाली ना मिला, तबलग हुता अधीर।। 5
अरू समुझाये योगही, बहु भांति बहु अंग। उरधरेता ही कही, जीतन बिद अनंग।। 6
अरू आसन सिखलाइया, तिनकी सारी विद्धि।। तुम्हरी कृपा सो होहिंगे, सबहीसाधन सिद्धि।। 7
इक अभिलाषा और है, कहि न सकूं सकुचाय। हिये उठै मुख आयकरि, फिरि उलटी ही जाय।। 8

गुरूवचन

सतगुरू से नहिं सकुचिये, एहो चरणहि दास। जो अभिलाषा मन विषे, खोलि कहौ अब तास।। 9

शिष्यवचन

सतगुरू तुम आज्ञा दई, कहूँ आपनी बात। योगअष्टांग बुझाइये, जाते हियो सिरात।। 10
मोहि योग बतलाइये, जोहै वह अष्टांग। रहनीगहनी विधिसहित, जाके आठो आंग।। 11
मत मारग देखे घने,ह्यां सियरे भये प्रान। जो कुछ चाहौ तुम करौ, मैं हौं निपट अयान।। 12

गुरूवचन

योग अष्टांग बुझाइहैं, भिन्न सब अंग। पहिले संयम सीखिये, जाते होय न भंग।। 13

शिष्यवचन

संयम काको कहत हैं, कहौ गुरू शुकदेव। सो सबही समुझाइये, ताको पावै भेव।। 14

गुरूवचन

प्रथम सूक्ष्म भोजन खावै। क्षुधा मिटैं नहि आलस आवै।।
थोड़ासा जल पीवन लीजै। सूक्ष्म बोलै वाद न कीजै।।
बहुत नींद भर सोवै नहीं। दूजा पुरूष न राखै पाहीं।।
खट्टा चरपरा खार न खावै। बीरज क्षींण होन नहीं पावै।। 15
करै न काहू बैरी मीता। जगवस्तु की रखे न चीता।।
निश्चल हवे मनको ठहरावै। इन्द्रिन के रस सब बिसरावै।।
तिरया तेल नाहिं देह छुवावै। अष्ट सुगन्ध अंग नहिं लावै।।
पुरूषन की राखै नहि आसा। गुरूका रहै चरणही दासा।। 16

काम क्रोध मद लोभ अरू राखै ना अभिमान।
रहै दीनताई लिये, लगै न माया बान।। 17

छल नहिं करै न छल में आवै। दम्भ झूठके निकट न जावै।।
टोना यंत्र भूत नहिं ध्यावै। झूठ जानके सब बिसरावै।।
धातु रसायन मन नहिं लीजै। झूठ जानि याहू ताजिदीजै।।
स्वांग तमाशे बाग न जैये। आसन ऊपर बैठा रहिये।। 18
दृढ़ हवे लगै युक्तिके माहीं। ताते विध्न होय कछु नाहीं।।
रूठा रहै जगत लोगन सों। न्यारा रहै सबही भोगन सों।।
इन्द्र आदि लौं सुख संसारी। नेक न चाहै चित्त मँझारी।।
सिमिटि रहै हिय माहिं समावै। ऐसे योग सधे सिधि पावै।। 19

ऋद्धि–सिद्धि अरू कामना, तिनकी रखै न आस।
मान बड़ाई चपलता, त्यागै चरणहिं दास।। 20

गहि संतोष क्षमा हिय धारै। संयम करिकरि रोग निवारै।।
अहंकार को छोटा करिये। कुटिल मनोरथ मन नहिं धरिये।।
बसिये जितहि देश सुस्थाना । निरउपाधि धरती अस्थाना।।
भली भूमि लखि गुफा बनावै। नीची ऊंची रहन न पावै।। 21
जिमी बराबर चौरस होई। होय लदाव कि मधरी सोई।।
साँकर द्वार कपाठ लगावै । कहूँ छिद्र रहने नहिं पावै।।
तामें बैठि योग तप कीजैं दूंजो पुरूष न भीतर लीजै ।।
कहि शुकदेव चरणही दासा । जगसो रहिये सदा उदासा।। 22
दोहा. यह सब निश्चयही करै , योग युक्ति के साध ।
पहिले ऐसा होय करि , पीछे साधन साध ।।
आठ आंग कहूँ योग के , सूनो चरणहीं दास ।।
मेरे वचनन के विषे, चितदै करौ निवास ।। 23
यमके अंग प्रथम सुनि लीजै। दूजे नियम कहूँ चित दीजै।
तीजै आसन हितकरि साधौ । प्राणायाम 1 चौथे आर
प्रत्याहार पाँचवां जानौ । छठे धारणा को पहिंचानौ।
सतवें ध्यान मिटै सब बाधा। कहूँ आठवां अंग समाधा। 24

शिष्यवचन

धन्य धन्य तुम श्री गुरूदेवा। मेरे प्राणनाथ शुकदेवा।।
व्यास पुत्र तुम दीन दयाला। मम अनाथ को कियो निहाला।।
आठ अंग मोहिं दिये सुनाई। अब कहु भिन्न भिन्न समुझाई।।
एक एकको जुदा बखानो। जासों जाय दास पर जानो ।। 25

गुरूवचन

एक एक का कहतहौं, जुदा जुदा विस्तार। श्रवणन सुनी विचारिकै, लैलै हियमें धार।। 26

(1) अथ यमअंग वर्णन

प्रथमकहौ यम के दश अंगा 2। समझै योग न होवैं भंगा।।

प्रथम अहिंसाही सुन लीजै। मनकरि काहू दोष न कीजै।।
कहुवा वचन कठोर न कहिये। जीवघात तनसों नहि दहिये।।
तन मन वचन न कर्म लगावै। यही अहिंसाधर्म कहावै।। 27
दूजे सत्य सत्यही बोलै। हिरदै तौलि वचन मुख खोले।।
तीजे असते त्याग सुनीजै। तन मन सों कछु नहिं हरीजै।।
तन चोरी के लक्षण नाखै। मनकी चारी को नहिं राखै।।
चौथा ब्रह्मचर्य 1 बतलाऊं। भिन्न–भिन्न करि ताहि सुनाऊं।। 28

ब्रह्मचर्य यासों कहैं, सुनहु चरणही दास।
आठ अंग सो नारिकी 2, नेक न राखै आस।। 29

यती होय दृढ़ काँछ गहीजै। वीर्य क्षीण नहीं होने दीजै।।
मैथुन कहुं अष्ट परकारा। ब्रह्मचर्य रहै इनसे न्यारा।।
सुमिरणतिरियाको नहिं करिये। श्रवणनसुरति रूप नहिं धरिये।।
रस श्रृंगार पढ़े नहिं गावै। नारिनसों नहिं हंसै हँसावै।।
दृष्टि न देखै विष नहि दौरै। मुख देखै मन होजा औरै।।
बात इकन्त करै नहिं कबहीं। मिलन उपाय जुत्यागै सबहीं।।
शअष्टम निकट न जावै। कामजीति योगी सुखपावै।।
अष्टप्रकारके मैथुन जानों। इन्हैं तजै ब्रह्मचर्य पिछानों।।
कहैं शुकदेव चरणहीदासा। ब्रहा सत्य में करै निवासा।। 30

पँचवीं सुखदायी क्षमा, जलन बुझावै सोय।
जोटुक आवै घटविषे, पातक डारै खोय।। 31

कोई दुष्ट कछू कहिजावो। गाली दैकर कोई खिझावो।।
कै कोई शिरपर कूड़ा डारो। कै कोइ दुखदेखो अरू मारो।।
बाकी कछू न मन में लावें। उलटा उनको शीश नवावै।।
ऐसी क्षमा हिये में लावो। बोलौ शीतल अग्नि बुझावो।।
छठां अंग धीरज का जानौ। धीरजही हिरदय में आनौ।।
योगायुक्ति धीरज सों कीजै। सब कारज धीरज सों लीजै।।
धीरज सों ठे अरू डोलै। धीरज सों दृढ़ता गहिलावै।।

धीरज रहा तौ सब रहा, काहूसे न डराय।
सिंह प्रेत अरू कालका, धीरज सों डरजाय।। 32

दया सातवीं अब सुनि लीजै। सब जीवन की रक्षा कीजै।।
लख चौरासी का सुखदाई। सबके हित की कहै बनाई।।
रहिये तन मन बचन दयाला। सबही सों निर्वैर कृपाला।। 33
अठवै कहूँ आर्य्यवै खोलै। कोमलहृदय सों कोमलबोलै।।
सबको कोमल दृष्टि निहारै। कोमलता तन मन में धारै।।
कोमल धरती हिया बनावै। योग सिद्धिकरि पद पहुंचावै।।
यही आर्य्यव लक्षण जानों। शुकदेवकहैं रणजीतपिछानी।। 34

मिताहार जो नवें की, समझ लेहु मनमाहि। सतगुप भोजन खाइये, ऐसा वैसा नाहिं।।
खावै अन्न बिचारिकै, खोंटा खरा संभार। जैसाही मन होत है, तैसा करै अहार।।

सूक्ष्म चिकना हल्का खावै। चौथाभाग छोड़ि करि पावै।।
वानप्रस्थ कै हो संन्यासै। भोजन सोलह ग्रास गिरासै।।
अरू गृहस्थ बत्तीस गिरासा। आव नींद न बहुत न श्वासा।।
ब्रह्मचारी भोजन करै इतना। पठनमाहंबीरजर है जितना।। 35
दशवां शौच पबित्तर रहिये। कर दातौन हमेश नहइये।।
जो शरीर में होवै रोगा। रहै न तन जल छूबन योगा।।
तौ तन माटी से शुद्धि कीजै। अबअंतरकी शुधि सुनलीजै।।
राग द्वेष हिरदय सों टारै। मन सों खोंटे कर्म निवारै।।

इति यमअंग सम्पूर्णम्

दशप्रकारका कहा यह, पहिल योगकी नीव।
नेम कहुं अब दूसरा, सों हैं साधन सीव।। 36

(2) अथ नेमअंगवर्णन

गुरूवचन

दूजा अंग नियम का गाऊं। भिन्न भिन्न सब अंग सुनाऊं।।
पहला तप इन्द्री वश कीजै। इनके स्वाद सभी तजि दीजै।।
खातें पीतें सोवत जागत। योगी इन्द्रिन कूं वश राखत।।
तनकूं वश कर मनकूं मारै। एसी विधि तपका अंगधारे।। 37
दूजाअंग कहूं संतोषा। हानि भये नहिं माने शोका।।
लाभ भये नाहीं हरषावै। ऐसी समुझ हिये में लावै।।
परारब्ध तन होय सु होई। संकलपबिकलप रखैनकोई।। 38

तीजा आस्तिक अंग है, जाका सुनो विचार।
समझ–समझ मन में धरो, ताको गहो संभार।। 39

शास्त्र सुने परतीत जो कीजै। सतब्रह्म निश्चय करिलीजै।।
बध निश्चय आतम के माहीं। जगत सांच करि मानै नाहीं।।
चौथा दान अंग विधि होई। पात्र कुपात्र विचारै सोई।।
एक दान उपदेश जु दीजै। भवसागर सों पार करीजै।
दूजा दान अन्न अरू पानी। दीजै कीजै बहु सनमानी।।
और पराये दुख की बूझै। सुखदानी परमारथ सूझै।। 40
पंचम ईश्वर पूजा करिये। तन मन बुद्धि जहांलै धरिये।।
हवै निष्काम तजै सब आसा। सेवा करै होय निजदासा।।

पान फूल जु भाव सों, सह सुगन्ध करि धूप।
शुकदेव कहैं यों कीजिये, पूजा अधिक अनूप।। 41

छटें सिद्धांत श्रवण सुन बानी। करि विचार गहिये मनमानी।।

सार असार विचार जु कीजै। पानीको तजि पयको पीजै।।
अरू सतगुरूसों निश्चय करिये। परखि संभारि हियै में धरिये।।
करणी करै जिन्हौं से मिलना। वचन अयोगी केनहिं सुनना।। 42
सतवां वही जु कहिये लाजा। सो वह सकल सँवारन काजा।।
साधु गुरूसें लाज करीजै। तन मन डोलन नहीं दीजै।।
करम विपर्यय सब परिहरिये। हिय आंखिन में लाज्जा भरिये।।
शुकदेव कहै सुनिचरणहिंदासा। लज्जा भवन माहिं करि बासा।।

कुटुंब मित्र जन लोगही, सबसूं कीजै लाज।
बड़ी लाज हहिसूं करो, नीके सुधरै काज।। 43

अष्टम हूँ मति दृढ़ जो कहिये। सो विशेष साधनकू चहिये।।
शुभ करमनकी इच्छा करनी। हो न सकै तौभी हिय धरनी।।
बहँकै ना काहू बहँकाये। केसेहू नहिं हलै हलाये।।
जग सुख देखि न मन में आनै। स्वर्गआदि सुख तुक्ष्छहिजानैं।।
कोई अस्तुति आदर करि सेवै। कोई कुभाव करि गाली देवै।।
दोनों में निस्चल रहै जोई। शुकदेव कहै दृढ़मति है सोई।। 44
नवयें जाप करै गहि मौना। मन जिहवासूं कीजै जौना।।
होयसकै मन पवन गहिजै। गुरूमन्तर जप तामें कीजै।।

हरिगुरूकी अस्तुति पढ़ै, सो भी कहिये जाप। शुकदेव कहैं रणजीत सुनि, त्रैविधि नाशै ताप।।
45

दशवें समझौ होमही, कीजै दोय प्रकार। आँगन माहिं साकिल्ल कूं, वेद कहै ज्यों डार।।
दूजै पावक ज्ञानकी, तामें इन्द्री होम। वाकूं परगट भूमि है, याकूं हिरदा भौम।। 46

यमका अंग सभी कह दीन्हा। नेम कहा सोभी तुम चीन्हा।।
निरैयोगही के मत जानौ। सबके कारज को पहिंचानौ।।
औपै योग पहल ये चाहिये। शुभकरमन के मारग गहिये।।
जोये होय तौ होवै योग। नहीं बहै जगत के भोग।।
जज्ञासीकूं पहल सुनीजै। पाछे भेद योगको दीजै।।
यम अरू नियम दोऊ बतलाये। अक्ष्छी 1 नीकी भांति सुनाये।।
अब तीजै आसन समझाऊं। जुदे जुदे कहि सबै सुनाऊं।।
योग पहिल आसनही साधै। आसनविना योग बरबादै।। 47

इति नियमअंग सम्पूर्णम्

(3) अथ आसनवर्णन

गुरूवचन

चरणदास निश्चय करौ, बिन आसन नहिं योग।
जो आसन दृढ़ होय तो, योग सधै भजि रोग।।

चौरासीलख आसन जानौ। योनिनकी बैठक पहिंचानौ।।

तिन में चौरासी चुग लीन्हें। दुरलभ भेद सुगम सों कीन्हें।।
सो तुमकूं पहिले बललाये। जिनकूं साधकूं साधौगे चितलाये।।
तिनमें दोय अधिक पराधानैं। तिनकूं सब योगेश्वर जानैं।।
आसन सिद्ध पदम कहलावै। इनकूं करि निश्चय ठहरावै।।
अरू आसन सब रोग जजावैं। ये दो आसन योग सधावैं।।
इन कूं साधै जो जन कोई। ध्यान समाधि लगावै सोई।।
चरणदास शुकदेव कहैं यों। आसन दोनों बरणौ हैं ज्यों।। 48

अथ पदमासनविधि

पहिले आसन पदम बताऊं। ज्यों की त्यों मूरति दिखलाऊं।।
पहिले बावां पांव उठावै। दाहिनी जड.घा ऊपर लावै।।
दहिना पांव फेरि यों लावै। बांवी साथल ऊपर राखै।।
बावां कर पीछे सों लावै। बाम अंगूठा गहि तन तावै।।
ऐसे हाथ दाहिना लावै। दहिन अंगूठा पकड़ दृढ़ावै।।
ग्रीवा लटक चिबुक हिये आवै। नासा आगे दीठि लगावै।।
दिव्यदृष्टि हो कौतुक दरशै। कहै शुकदेव अभैपद परशै।।

कै हिरदै राखै चिबुक, कै सम राखै देह।
कै वौटों दोउ हाथ रखि, कै अंगूठा गहिलेह।। 49

अथ सिद्धासनविधि।।

दूजा आसन सिद्ध जु कीजै। बावां पांव गुदाढिंग दीजै।।
दाहिन पांव लिंगपर आवै। दृष्टि सुभकुटी पै ठहरावै।।
अचरज चहां अधिक दारशावै। खुले कपाट मोक्ष गति पावै।।
आसन साधि व्याधि परिहरै। भूख नींद जोपै वश करै।।

एडी बावैं पांव की, सीवन मध्ये राख। लिंग गुदा के मध्य में, मूल बोलिये साख।।
संयम सूं इन्द्री गहै, राखै सरल शरीर। दृष्टि उठा भृकुटी धरै, मिटै जु दोनों पीर।।
दहिनी लावै लिंगपर, भाग बराबर राखि। बारी बारी कीजियै, शुकदेबा कहै भाखि ।। 50

इति आसनअंग सम्पूर्णम्

(4)अथ प्राणायामअंगवर्णन।।

गुरूवचन

चौथे प्राणायामही, कहूं सुनौ चित लाय। जा बल जीबै पवनकूं, चढ़े गगन कूं धाय।।
षटचक्कर कूं छेदि करि, सुख मनही की राह। दलसहस्त्रके कमल में, पहंचै करै उछाह।।

51

हिरदै में अस्थान है, प्रानवायु का जान। बाके रोंके सबरूकैं, वायुन में परधान।।
जैसे गंगा एकही, घाट घाट के नावँ। ऐसे प्राणाहि वायुके, नावं कहे वहु ठावं।।
चौरासी अस्थान पर, चौरासीही वायु। तामें दश ये मुख्य हैं, बननौं सुनिये ताय।। 52
प्राण अपान समानही, और ब्यान उद्यान। नाग धनंजय देवदत, कूरम किरकल जान।।

दशवायु जो एकही, तिनमें दीरघ दोय। सोवे प्राण अपानहैं, तिन्हैं पिछानै कोय।।
प्राणजाय प्राणै मिलै, रहै प्राणके प्रान। शुकदेव कहि वर्णन करूं, अब इनके अस्थान।। 53

प्राणवायु हिरदै के ठाहीं। बसै अपान गुदा के माहीं।।
वायु समान नाभि अस्थाना। कंठ माहि बाई उद्याना।।
व्यान जु व्यापक है तन सारै। नाग वायु सों उठै डकारै।।
पलक उघाडै कूरमबाई। देवदत्तसूं होय जँभाई।।
किरकल वायु जु भूंख लगावै। मुखै धनजय देह फुलावै।।
सब में प्राण वायु मुखजानौं। सो हिरदै के मध्य पिछानौं।।
हिरदाही देही के माहीं। जो कुछ है से झांही झांही।।
योगेश्वर ह्यांई फल पावैं। ह्यांसूं अनहद नाद जगावैं।। 54

अथ कुण्डलिनी (चक्कर) वर्णन

अब चक्कर बरणन करूं, पाछे प्राणयाम। बरणूं नारी सुषमना, सुधरै सबही काम।।
हैं वे सूरति कमल की, छोटे और विशाल। मूलसूं लेकर शीशलौं, एकहि जिनकी नाल।। 55

लालरंग पहिला कहुं चक्रधार तिहि नावँ। चार पैंखरी[2] तासु की हैं जु गुदा के ठावँ।।
हैं जु गुदा के ठावं देह ताही पर राजै। चारौं अक्षर तहां देव गणेश विराजै।।
पवन सुरत हवां लैधरै खोलि कहैं शुकदेव। दूजा लिंगस्थानही जाको सुन अब भेव।। 56
पीतवरण षट पैंखरी नामजु स्वाधिष्ठान। षट अक्षर जापे दिये ब्रह्या दैवत जान।।
बह्या दैवत जान संग सापित्री[1] दासा। इन्द्र सहित सब देव तहां सबही का वासा।। 57
मणिपूरक चक्कर कहूं तीजा नाभिस्थान। नीलबरण दश पैखरी दश अक्षर परमान।।

विष्णु जहां का देवता, महालक्षिमी संग।
चरणदास अब कहता हूँ, चौथे को परसंग।। 58
अनहदचक्र हिरदयबिषे, द्वादशदल अरूश्वेत।
शिवशक्ती 2 जहां देवता, द्वादश अक्षर भेद।। 59
पँचवां चक्कर कंठ में, विशुद्ध नामजिहिकेर।
षोडश दल जीव देवता, षोडश अक्षर हेर।। 60
छठयों भोंहन बीच में, अज्ञा चक्कर सोय।
ज्योति देवता जानियें, दो दल अक्षर दोय।। 61

शिष्यवचन

कमलौं पर अक्षर कहे, समझ न आई मोहि।
कौन कौन अक्षर जहां सतगुरू कहिये सोहि।। 62

गुरूवचन

पहिला कमल अधार सुनाऊ। वशषश अक्षर वरण बताऊं।। 63
दूजा कमल जू स्वाधिष्ठाना। बा भा मा या र ल जु बखाना।। 64
तृतिये मणिपूरक जो कहिये। डा ढा णा ता था ही लहिये।।
दा धा ना पा फा जो गाये। ये दश अक्षर वरण बताये।। 65
चौथे चक्र अनाहद माहीं। द्वादश अक्षर वरण बताहीं।।
का खा गा घा ड.ा जो जान। चा छा जा झा अ ट ठ जु मान।। 66
पँचवां षोड़श विशुद्ध जो आछे। आदि अकार अकार सुपाछे।। 67

छठा जो अज्ञा चक्कर मानी। हंस वरण दो अक्षर जानौ।। 68

भवँर गुफा मंडल आखँड, तिरवेणी जहां न्हान। नित परवी जहां होत है, करै पाप ही हान।। 69

उलट पवन बेध षटन, ऊपर पहुंचै जाय। शुकदेव कहैं चरणदासजू, सुषमन सहज समाय।। 70

कमलसहसदल सातवां, शीश मध्यही वास। तहां देवता ततगुरू, पूरी करै जो आस।। 71
ह्यांतक सुषमन का सिरा, सो सातौ की नाल। हैं वे उलटे षटकमल, तलै अपान बयान।। 72

अपान वायुकूं साधिकरि, ऊपर लावै मोड़। जब होवै उलटे कमल, मुख अकाशकी ओड़।। 73

अपानवायु आवै जबे, चक्र अनाहद माहि। दश प्रकार के नादही, शनैःशनैः खुलि जाहि।। 74

पहिले नाद सुने जो ऐसा। चिडी चीकला बोलै जैसा।।
एकहि बार कहै यों चिन्न। दूजी बार कहै चिन चिन्न।।
क्षुद्रघंट ज्यों तीजी जानी। चौथी नाद शड.ख पहि्चानी।।
पंचवी नाद बीन ज्यों गाजै। छठवीं उपज ताल ज्यों बाजै।।
सतवीं नाद मुरलिया ऐसी। अठवीं उठै पखावज जैसी।।
नवै नफीरी नाद सुनावै। दशवैं सिंह गरज उपजावै।।
नौ ताजि दशवैं सूं हित लावै। अनाहद सुनि अनहद हो जावै।।
होय जीव सो ब्रह्य अगाधा। जो कोइ सुनै सुअनहदनादा।। 75

खुलै जो अनहदनादज्यों, सो साधन सुनि लेहु।
जासों पहुंचै सिद्धि को, या करणी चित देहु।। 76
चक्राधार सो खैचिकरि, अपानवायु सजलेह।
स्वाधिष्ठान के पासही, तीन लपेटै देह।। 77

याकीविधि सब तोहिं सुनाऊं। जैसे है तैसे समुझाऊं।।
पहिले मूल द्वार को शोधै। बंध लगाय अपान निरोधै।।
पहिले चक्कर में ठहरावै। खैचि दूसरे के ढिग लावै।।
वाके आसी पास फिरावै। दहिने तीनि लपेट लगावै।।
फिरि मणिपूरक में पहुंचावै। फेरि अनाहद में ले जावै।।
अनहद खुलै सुनै सुखपावै। फिरिव्हांप्राण अपान मिलावै।।
हिरदय कंठ मध्य ठहरावै। संयम सों ताको परचावै।।
बंध दूसरो तहां लगावै। चरणदास शुकदेव बतावै।। 78

पहिले अनहदनाद खुलै हिय ऊपरै। कंठ सु नीचे रोंकि ध्यान व्हांई धरै।।
जहांअपरबल होय जु अनहद शब्दही। फिरयों जानो जाय कंठ के मध्यही।।
तहां किये अभ्यास ध्यान राखै घना। होवै अधिकीनाद सुनै साधूजना।।
केतक द्योसन माहिं ब्रह्यरन्धरकनै। जाय खुलै जहां नाद सुरतिदै ह्यां सुनैं।।
शनै शनै यो होय जानकोइ साधही। हिरदय अरू ब्रह्यलोकलों एकैनादही।।

मीठी और सवाद बहुतही पाइये। सतगुरू के परताप जहां मनलाइये।।
सबही बूझैं वस्तु जुकछू होवैं तहां।। 79

अनहद के सम औरना, फल बरणे नहिं जाहिं। पटतर कछू न देसकूं, सब कछू है वा माहिं।।

पांच थकै आनंद बढै, अरू मनुआ वश होय। शुकदेवकहिचरणदाससुनि, आपअपनजाखोय।। 80

नाड़िन में सुषमन बडी, सो अनहद की मात। कुम्भक में केवल बड़ा सो वाही का भ्रात।।
मुद्रा बडी जु खेचरी, वाकी बहिनी जान। अनहद सा बाजा नहीं और न या सम ध्यान।।
सेवक से स्वामी भवै, सुनै जु अनहद नाद। जीव ब्रह्य व्हैजात है, पावै अपनी आद।।
चरणदास अब कहत हूँ, वही जु प्राणायम। शुकदव कहै ताके किये, पावै मन विश्राम।। 81

अथ नाड़ी वार्णन

बहत्तरहजार आठसौचौसठनारी। सबकी जड़हैं नाभि मँझारी।।
तिहमहँदश नाडी शिरमौरी। पँच बायें पँच दहनी ओरी।।
जिनमें तीनि अधिक परधान। इड़ा पिंगला सुभमन जान।।
उनमें सुषमन अधिक अनूप। सो वह कहिये अग्नि स्वरूप।।
दश नाडी अस्थान बताऊं। ठौर ठौर तेहि कहि समझाऊं।। 82

नाड़ि शड़ि खनी गुदामें, किंरकल लिंगस्थान। पोषा सरवन दाहिने, जसनी बाये कान।। 83
गंधरी दृग बामही, हस्तिनि दहिने नैन। नारि लंबका जीभमें सब सवाद सुखदैन।। 84
नासा दहिने अंगहै, पिंगल सूरज वस। इड़ा सुबायें और है, जहं ससियर परकास।। 85
दोऊ मध्य में सुषमना, अद्भुत वाको भेव। ब्रह्य नाडिहूं कहत है, यौं कह सो शुकदेव।। 86
इड़ा ब्रह्या जमुना जहां, सुषमन विष्णु निवास। और सरस्वति जानिये, येहो चरणहिं दास।।
शिव पिंगल गंगा सहित, सो वह दहिने अंग। तिरवेणी जाते भई, मिली जु तीनौ संग।। 87
कबहुं इड़ा स्वर चलत है, कबहूँ पिंगल माहिं। तिरवेणी याते भई, मिली जु तीनौ संग।। 88
सो वह अग्नि स्वरूप है, बडी योग सरदार। याहीते कारज सरै, एसी सुषमन नार।। 89

इनसौं प्राणायम करीजै। पूरक कुम्भक रेचकहीजै।।
इड़ा पिंगला मारग थाकै। उलटि सुषमना चालनलागै।।
बायें खैंचना पूरक जानौ। ठहरावन को कुम्भक मानौ।।
फेरि उतारै रेचक वोई। प्राणायाम कहावै सोई।। 90

इड़ा पवन पूरक करै, कुम्भक राखै रोक।
रेचन पिंगल सों करै, मिटैं पापके थोक।। 91

पिंगल रौके पवन न जावै। इड़ा ओर से वायु चाढ़ावै।।
कुम्भककरि हिय चिबुक लगावै। जितकातित मनको ठहरावै।।

सोलह मात्रा पूरक लीजै। चौंसठि कुम्भकमें जपकीजै।।
रेचक फिरि बत्तीस उतारै। धीरे धीरे ताहि निवारै।। 92
पहिल पहिलही कीजै आधे। तीनि महीने ऐसे साधे।।
यासे आगे फेरि बढ़ावै। दोय आठ अरू चारि चाढ़ावै।।
बढ़त बढ़त ऐसेही बढै। योही चौंसठि ताहीं चढै।।
इड़ा वायुसों पूरक कीजै। पिंगल सों रेचक तजिदीजै।।
फिर पिंगलसों पूरक धारै। बहुरि इड़ाहीसों निरबारे।।
ऐसे बारीबारी करिये। जीते प्राण वायु अघ हरिये।।
होय सके कुम्भक सरकावै। चौंसठि से भी परै बढावै।। 93

शिष्यवचन

चरणदास करजोरिकह, सुनौ गुरू शुकदेव।
कौन समै याको करै, राति दिना कहिदेव।।
मात्रा कासों कहत हैं, जो बतलायो जाप।
केतौ करै अहारही, जाको कहिये नाप।। 94

गुरूवचन

ॐ बिन्दी के सहितही, ताही मात्रा जान। बीजमंत्र तासों कहत, प्रणव को पहिंचान।। 95
कोमल भोजन कीजिये, आधी रखिये भूख। पवन बसै सुखसों जहां, तन नहि पावै दूख।।
साठिघरी दिनराति की, आठ तासुके याम। लीजै चौथा भागही, कीजै प्राणायाम।।
चारभाग ताके करै, चार समै ठहराय। चार चार घटिका करै, दृढ़व्रत चितलगाय।। 96

और दूसरी भांति सुनीजै। हो न सकै तौ याको कीजै।।
बारह ॐ पवन चढ़ापै। कुम्भक माहि बीस ठहरावै।।
बारह पिंगल पवन उतारै। राति दिनामें चारहिबारै।।
फेरि बढ़ावै कुम्भक दुगुनी। केते द्यौसन में फिर तिगुनी।।
फिर पिंगल सों पूरक लीजे। इड़ा वायु रेचकही कीजे।।
बिरिया एक इड़ा सों खेंचे। पिंगल दूजीबार जु एंचे।।
कबहुँ यासू कबहूँ वासों। रेचक करे जो पूरक जासों।।
कुम्भक तिगुनी सो अधिकावे। होयसके जितनी सरकावे।।97

भांति दूसरी और सुनि, साधन अधिक अनूप।
गुरू बिन भेद न पाइये, महा गुप्त सों गूप।। 98

प्राण वायुकी युक्ति कहौं जेहि बात है। द्वादश अंगुल नासिका आगे जात है।।
संयमही सों सहज जु उलट घटाइये। शनै शनै ही साधु जु ताहि समाइये।।
अपान वायुको खैंचि प्राण घर लाइये। फिरि बाहर सों रोंकि जु तिन्है मिलाइये।।
तीनि कर्म पूरक के कुम्भकके कहे। रेचक के कर्म दोय निश्चय भये।।
दो रेचक के कर्म पूरक के तीन हीं। ये सबही रहिजांय होय जब छीनहीं।
पूरक रेचक छुटैं केवल कुम्भकयही। ठौर समैका बंध न राखै नाशही।।
या किरयाको अन्त मानौ तुम व्हां तहीं। प्राणवायु को रोंकै कायाके महीं।।99

साठहजार इक्कीसलख, सबके श्वास परमान।
यह तौ रोंके देह में, जबलग एकहि प्रान।।
याकेहू ये सौ दिना, साधन भवै जु सिद्धि।
केवल कुम्भक जानिये, पूरी हवै जु विद्धि।। 100

इतनी होवै शक्ति रूकन जब श्वासको। रहै नहीं परमाण जु गिनती मासकी।।
द्वादशकै सौ वरष सहष कै लाखही। चाहै जब लग रखै सांच यह साखही।।
गुप्त महा यह जान कठिन है साधना। कोटिन में कोई एक करै आराधना।।
देखा देखी बहुत मनुष याकू लगैं। कोई चढै परमान धने मग में थकै।।
चरणदास यह समझि कहैं शुकदेवही। शनैशनै सों करै पाय या भेवही।। 101

मूल बंध अरू खेचरी, मुद्राही की जान।
दोनों के साधे बिना, होय अपान न प्रान।। 102

खेचरि मुद्राकहूँ बखानै। जाको कोटिन में कोइ जानै।।
सकल शिरोमणि योग मंझारी। ज्यों मनुषों में छत्तर धारी।।
शीश फूल ज्यों गहनो माहीं। या बिन ताडी लागै नाहीं।।
साधन कर कर जीभ बढ़ावै। सो ब्रह्मरंधरताई लावै।।
उरैताल वा ठौर कहावै। रसना सूं व्हां बंध लगावै।।
जासूं पवन न सरकन पावै। श्रवण नैनजू बाट रूकावै।।
प्राणवायु बाहर नहिं आवै। मुखनासा हो निकस न जावै।।
शुकदेव कहै चरणदास बताऊं। आगे मूलबंध समुझाऊं।।103

मूल बन्ध जानी यही, एंडी गुदा लगाव।
थक दहनी बावीं कभी, सिध आसन ठहराव।।

मूलबन्ध जा कारण दीजै। सो मैं कहूँ सवै सुनि लीजै।।
आधार चक्रसूं पवन उठावै। स्वाधिष्ठानहिं के ढिग लावै।।
दाहिनी ओर कूं ताहि फिरावै। ऐसी तीन लपेट लगावै।।
सीधा हो ऊपर कूं धावै। मणिपूरक चक्कर में आवै।।
शनई शनई ताहि चाढ़ावै। चक्कर चक्कर में पहुंचावै।।
भूचक्कर के ऊपर ताई। ब्रह्मरंध्र के लावै ठाई।।
ऐसे षट चक्कर कूं शोधै। प्राणवायु को यों परबोधै।।
अपान वायु जो ह्यांतक आवै। प्राणवायु व्है सहज समावै।।
शुकदेव कहै सुन चरणहिं दासा। सहज शून्य में करै निवासा।। 104

अथ कुम्भक वर्णन

शिष्यवचन

प्राणायाम की विधि सबै, गुरू तुम दई सुनाय।
सो लेकरि हिरदै धरी, ताहि न देउं भुलाय।।
चरणदास के शीश पर, तुमहीं गुरू शुकदेव।
कुम्भक अष्ट प्रकार के, तिनको कहिये भेव।।

लक्षण नाम स्वभाव गुण, जुदे जुदे समुझाय।
चरणदास के मन विषे, सुनबेको अति चाय।। 105

गुरूवचन

अब आठौ कुम्भक कहुँ, नावँ भेद गुण रूप। शुकदेव कहैं परसिद्ध हैं, योगहि माहि अनूप।।
प्रथमै कुम्भक ही कहुं, पँचवीं भस्त्रक जान। छठीं जु भ्रमरी नाम है, नीके समझि पिछान।।
नावं मूर्छा सातवीं, अठवीं केवल होय। रणजीता सबसे बड़ी, आयु बढ़ावै सोय।।106

पवन पूर पूरकही कीजै। पाछे बन्ध जलन्धर दीजे।।
कुम्भक रेचकके मधि जानौ। हवाई बन्ध उडयान पिछानौ।।
पवन जोरही सूं गहि लीजै। अर्ध ऊर्ध्व संकोचन कीजै।।
मध्यम कीजै पश्चिम तानै। ब्रह्म नारिके माहि समानै।।
नाडी पवन खैंचिये ऐसे। भरिये सब संध्यान जु जैसे।।
अपान वायु कूं ऊपर लावै। प्राण वायु नीचे लै जावै।।
जोपै यह साधना बनि आवै। योगी बूढ़ा होन न पावै।।
तरूण अवस्था देखै ऐसी। नितहीर है जानिये जैसी।।107

(i) अथ सूर्यभेदन।।

कुम्भक सूरज भेदही, पहिले देहुं सुनाय।
सुख आसन कै कीजिये अथवा वज्र लगाय।।
अथवा वज्र लगाय, पूरक दहिने स्वर कीजै।
नख शिख सेती रोंकि, वायु कूं बन्ध करीजै।।
बायें सेती रेचिये, हौरे हौरे जान।
कपाल धौंकनीजानिये, चरणदास पहिंचान।।
वायु किरम पीड़ा हरै, कीजै वारंबार।
कुम्भक सूरज भेदनी, शुकदेव कहै हियधार।।108

(ii) अथ ऊजाई।।

अब ऊजाई कुम्भक सुनिये। समझ सीखमन माहीं गुनिये।।
दोउ सुर समकर पवन चढ़ावै। पेट कण्ठ लौं ताहि भरावै।।
ताको रोंकै दृढ़ करि राखै। सहजइड़ा सों रेचक नाखै।।
ऐसे जो कोई साधन करै। रोग सलेषम के सब हरै।।
हिरदय कण्ठ माहिं जो होई। कफका रोग रहै नहि कोई।।
रोग जलन्धरही का भागै। भजै वायु दुख पावक जागै।।
बैठत चलत पवनको भरै। यही उजाई कुम्भक करै।।
चरणदास शुकदेव बतावै। तीजी शीतकार समुझावै।।109

(iii) अथ शीतकार।।

ओड़ जंभाई नासिका, लीजै खिंचै जु पौन। ताहि कछू ठहरायकै, छोडै मुख सों जौन।।
धीरे धीरे खैंचिये, सीसी शब्द उचार। सुन्दर हौवै तेजवन्त, अधिक रूप को धार।।
भूखप्यास व्सापै नहीं आलम नींद न होय। तनचेतनही होत है, रहै उपाधि न कोय।।
यहि विधि साधनही रहै, होय योगिन में भूप। चरणदास शुकदेव कहि, कुम्भक यही अनूप।।110

(iv) अथ शीतली।।

कहूँ शीतली कुम्भक आगे। जो कोई करै भागतिहि जागे।।
तालु मूल जिहवा बल सेती। प्राण वायु पीवै कर हेती।।
कुम्भक राखै सबतन माहीं। ढीला गात रमावै व्हाहीं।।
नासा सेती रेचक कीजै। एकमास सिधिहो सुखलीजै।।
पीजै पवन जीभको मोडे। सहजै छोडै नासा ओडे।।
दोनों रंधरसे तजि दीजै। यों अभ्यास पूर करिलीजै।।
ताप तिली गोला ज्वर होई। वाके तन में रहै न कोई।।
देह सांप केंचुली भौहिं। श्वेत बाल तजि काले होहिं।।
काहू भांतिका दुख नहिं व्यापै। भूख प्यास निसभाजै आपै।। 111

(v) अथ भस्त्रिका

अबकहुंकुम्भकभस्त्रिका, पित कफ वायु नशाय।
अगिनिबढै अभ्याससों, तीनि गांठि खुलिजाय।।

आसनपद्म सुयाविधि करै। बामजंघ दहिनो पग धरै।।
बावों पग दाहिनी पर लावै। जांघनसों दोउ हाथ मिलावै।।
ग्रीवा पेट बराबर राखै। आगे सुनु शुकदेवा भाखै।।
मुख मूंदै रेचै नाससूं । पूरक चपल करै श्वासासूं।।
रेचक पूरक ऐसे कीजै। वारंवार पूरक आतुर करै।।
करत करत जबहिं थकिजावै। नेक ठहरि दूजी विधि लावै।।
फिरि पूरक सूरजसों करै। पवन उदरके माहीं भरै।।
तर्जनि अंगुली सें दृढ़ रोंकै। नासामध्य धारकरि जोखै।। 112

कुम्भक पिछली भांतिकरि, रेच इड़ासों वाय।
कफ पित वायु नशायकै, लेवै अग्नि बढ़ाय।।
कुण्डलिनी देवैजगा, यह कुम्भक सुखदाय।
करै जुहित व्रत धारिकै, चरणदास चितलाय।।
कुण्डलिनी सरकायकै, बेधै तीनों गांठ।
ऐसी पँचवी भस्त्रिका, रहै न कोई आंठ।। 113

ब्रह्मनाड़िका के छिद्र माहीं। रोंकिरही मुखदेरहि हवाहीं।।
लाय लपेटै नाभी ठाहीं। दृढ़हवै बैठी सरकै नाहीं।।
सवा बिलस्त कि जाकीदेही। तामें अस्थित जीव सनेही।।
शक्ति नागिनी यही जु कहिये। याके भेद गुरूसों लहिये।।
महा अपरबल जागै नाहीं। ताते नर सब मरिमरि जाहीं।।
कोई इक योगी ताहि डुलावै। सुषमन बाट गगन लैजावै।।
ब्रह्मरंध में जाय समावै। लगै समाधि बहुत सुखपावै।।
जो कछु होय सो कहा न जावै। चरणदास शुकदेव सुनावै।। 114

शिव शक्ति भे लाभ वय, रहै न द्वितिया भाव।

कुण्डलिनी परबोधका, जो कोई करै उपाव।। 115

शिष्यवचन

व्यास पुत्र शुकदेवजी, किरपाकारी दयाल। चरणदास आधीनही, समझो भयो निहाल।।
एक बार फिर खोलिकै, कुण्डलिनी समुझाव। याके सबही भेद को, सुनबेको अतिचाव।। 116

गुरूवचन

फिरभी तोसौं कहतहौं, कुण्डलिनी विस्तार। ताके सगरे भेदही, सुनिकै हियकै हियमें धार।।
नाभिस्थान नागिनि रहै, कुण्डल शशी अकार। प्राण पियारा वही है, आगे सुनो विचार।।
कुम्भक कर्म्म कोई करै, दवै शक्ति जगाय। जैसे लागी लष्टिका, नागन शीश उठाय।। 117

सीखी गुरूसों कुम्भकसाधै। नीकी विधि ताको अपराधै।।
पवन ठवकलग ताहि जगावै। तब ऊरध[1] को शीश उठावै।।
नाभि ठौर ताका है वासा। पद्मराग मणि ज्यों परकासा।।
सात लपेटे वाई जानौ। ताते शक्र कुण्डली मानी।।
नाडी सहस लगी हैं वाको। सोपर छुटी जानिको ताको।।
जिनमें तीन नारी अधिकाई। इड़ा पिंगला सुषमन गाई।।
तिनके माहिं शिरोमणिसुषमन। नालकमल जालतयोगी जन।।
जायपहुंचि ब्रह्मरंधर ताही। ऊरध कमल सातवें माहीं।।
आवन जोन पवन की बाटा। सकत चढ़न ऊरधका घाटा।।
कहि शुकदेव चरणहीं दासा। आगे कहूं जु हो परकासा।।118

नागिनि सूक्ष्म जानिये, बाल सहसवां भाग।
शुकदेव कहैं अकारही, रक्त वरण ज्यों नाग।।
कुम्भक हो अत्यन्त जब, तब ऊरधको जाय।
ब्रह्मरंध्र में आयकर, घडी दोय ठहराय।।
अमृत का करि पानही, पूरण हो अभ्यास।
उड़ते देखै सिद्धि तब, वाको माहि अकास।। 119
पै देखत है नैन विनाहीं। चहै करै लीला उन माहीं।।
खेचर मिलि खेचर हवै जावै। यह भी शक्ति उड़नकी पावै।।
अधिकी ठहरै लगै समाधा। यह तो कहिये खेल अगाधा।।
शिवशक्ती जहँ मेला होई। होय लीन मन उनमन सोई।
योग युक्ति करि याको पावै। परासक्त अपने बल लावै।।
चाहै अर्द्ध ठौर लैलाव। जब चाहै ऊरध लै जावै।
कबहूं हिरदयके मधि आनै। याही को आपनपौ जानै।।
इच्छा करै सिद्धि की जैसी। होय प्राप्त सो वेगिहि तैसी।।
चहै अस्थूल सूक्ष्म तन धारूं। वैसाही होय जाय सवारूं।।
कहि शुकदेव सुन चरणहिदासै। जो कुण्डलिनी ह्दयप्रकासै।। 120

कुण्डलिनी परकाशही, भौंरा एक अनूप।
सोउ प्रकाशत है तहां, सुवरण कोसो रूप।।

हिरदय में उजियारही, होत चपल यहि भांति।
जैसे घूमर मेघमें, बिजलीही दमकाति।। 121

कहि शुकदेव चरणदास बताऊं। और अनूठी सिद्धि सुनाऊं।।
चाहै परदेही में बरूं। अपनी काया को परिहरूं।।
रेचक प्राणायाम प्रतापै। कुण्डलिनी जो अपनी आपै।।
रेचक किये बाहरे आवै। परकाया में जाय समावै।।
अस्थित होय जाय ज्यों आनो। सदा विराजत ऐसे मानो।।
ऐसे पहिली देह गिरावै। ज्यों मणिको डोरा तजिजावै।।
जब चाहै अपने घट माहीं। परासक्तही आवै व्हाहीं।।
काया पलट कहत है याको। कोई एक योगी जानत ताको।। 122

चाहै तनको छोड़ करि, देह कलप धरि और।
मनमानै जहाँ गवनकरि, फिरि आवै अपठौर।।123

(vi) अथ भ्रमरीकुम्भ

छटी जु कुम्भक भ्रामरी, सुनिये चरणहिदास। शुकदेवा हौं कहतहूं, तामें करों बिलास।।
जैसे भृंगी धुनिकरै, यों उपजै हिय माहि। दानों स्वरसों कीजिये, परगट सुनिये नाहि।।
बलसेती पूरक करै, यही शब्द लै साथ। भृंगी की सी धुनि सहित, रेचै मन्द सुहात।।
या अभ्यास के किये से, चित चंचलरहै नाहिं। योगीश्वर लीला करै, चिदानन्द के माहि।।
124

(vii) अथ मूर्च्छा

सतवीं कुम्भक मूरछा, पूरक ऐसे होय। खैंचत होवै सोरसा, मेधधार ज्यों जोय।।
बन्ध जलन्धर दीजिये, सहज कण्ठ तल ताज। रेचित बाई मूरछित, होय यही पहिचान।।
सुखदायी सुखकी करन, कही सोइ शुकदेव। केवल कुम्भक आठवीं, गुरूसों पावै भेव।।
पूरक रेचकही सहित, ये कुम्भक करि लेहि। केवल कुम्भकनामधै, जबलग ह्यां चित देहि।।
केवल कुम्भक आशधरि, येहू साधन लोग। बलपावै बशपौन हो, और भजैं तन रोग।। 125

(viii) अथ केवल कुम्भक

आयु बढ़ावै सिद्धिदे, लागै और समाधि। केवल कुम्भक गुण भरी, बिन परमाण अगाधि।।
केवल कुम्भक जब सधै, तब ये सब रहि जाहि। जैसे सूरज उदयते, तारे सब लुकि जाहि।।
केवल कुम्भक योग में, ज्यों नगरी में भूप। रेचक पूरक के बिना, जैसे बँधा जु कूप।।

सो तुम सों पहिले कही, विधिगति सब समुझाय।
सो सुनि तुम हिरदयधरी, देहौना बिसराय।। 126

प्राणायाम बड़ा तप सोई। प्राणायाम सों बल नहिं कोई।।
प्राणवायु को यह वश लावै। मन को निश्चल करि ठहरावै।।
आयुदायिको यही बढ़ावै। तनमें रोग रहन नहिं पावै।।
पाप जलावै निर्मल करै। उपजै ज्ञान तिमिर सब हरै।।

योग युक्ति की जड़ यह जानो। याहि टेकगहि करना ठावो।।
अड़ि आसनसों याको कीजै। नवो द्वारा पट नीके दीजै।।
पांचौ इन्द्रीके रस पेलौ। इड़ा पिंगला सुषमन खेलौ।।
कहि शुकदेव चरणहीं दासा। प्रत्याहार सुनि विषै निरासा।। 127

इति प्राणायामअंग सम्पूर्णम्

(5) अथ प्रत्याहार अंग वर्णन

गुरूवचन

प्रत्याहार जो पांचवां, समझाऊ चर्णदास।
शुकदेव कह कहुं खोलकहि, नीके समझौ तास।।

प्रत्याहार पांचवां कहिये। सौ योगीको निश्चय चहिये।।
विषय ओर इन्द्री जो जावै। अपने स्वादन को ललचावै।।
तिनकी ओर न जाने देई। प्रत्याहार कहावै एई।।
रोंकिरोकि इन्द्रिनको लावै। ध्यान आतमा माहिं लागावै।।
जैसे कछुआ अंग समेटै। रंक शीतकाला मं लेटै।।
जैसे माता पूत खिलावै। बालक वन्तू को ललचावै।।
सरप आग अरू शस्तर कोई। कछू और दुखदायी होई।।
तिनको बालक नाहीं जानै। पकड़नको दौड़े मन आनै।।128

बालक जानत है नहीं, दुखदायी सब एह। जो पकरूंगा हाथ से, दुख पावैगी देह।।
माता जानत है सवै, खोंटी खरी विकार। राखै सुतकी खैंचिकरि, वारंवार निहार।।
ऐसे ही बुधि ज्ञान सों पांची इन्द्री रोक। विषय ओरसों फेरिये, लहै न अपना भोग।।
ज्यों ज्यों इनको भोग दै, परबल होती जाहिं। विना भोग होहीं नहीं, वह बल रहै जुनाहिं।।
नैन जु भोगै रूप को, और गन्ध को धान। षटरस भोगे जीभ ही, शब्दहि भोगै कान।।
त्वचा भोगिं अस्पर्शको, बाढै अधिक विकार। पांचौ इन्द्री जानिले, इनका यही अहार।।
इनसेमिलमिलि मनबिगडि, होयगया कछु और। इन्द्री रोकै मन रूकै, रहै जु अपनी ठौर।।
ज्यों ज्यों होवै प्राणवश, त्यों त्यो मन वश होय।
ज्यों ज्यों इन्द्री थिर रहैं, विषयजाय सब खोय।।
ताते प्राणयम करि, प्राणायमहिं सार।
पहिले प्राणयामकर, पीछे प्रत्याहार।। 129

इति प्रत्याहार अंगसम्पूर्णम्

(6) अथ षष्ठधारणाअंग वर्णन

तत्वनकी कहुं धारणा, तिनमें करै प्रवेश।
शनईशनई साधिकारि, पहुंचे निर्भयदेश।। 130

पहिले भूमि धारणा कीजै। ठौर काल जी में चितदीजै।।
पीतबरण चौकोर अकारो। विधि दैवत है तहां विचारो।।
प्राण लीनकरि पांचघडीहीं। चित अस्थिर होवैगा जबहीं।।
यासों पृथिवीको वश करिये। यही धारणा जो चित धरिये।।
हिरदय से ऊपर जल जानो। कण्ठतई ताको पहिचानो।।
चन्दफाक अरू श्वेत अकारो। हृषीकेश तहं देव निहारो।।
ह्य हूं पांच घरी अस्थापै। प्रानलीन करि चितदै आपै।।
व्यापैना विष काहूविधिको। शुकदेवकहै फलजलकेसिधिको।। 131

कण्ठ से ऊपर तालुका, लो पावक अस्थान। लालरंग तिरकोन है, रूद्र देवता मान।।
तहां लीन करि प्राणको, पांच घड़ी परमान। भय व्यापै नहिं ज्वालको, अग्निधारणा जान।।
जाके आगे वायु है, भृकुटीलौ मय्यदि। मेघ बरण षटकोन है, ईश्वर देवत साध।।
प्राणलीन तहँ कीजिये, पांच घड़ी रे तात। पैंहै खेचर सिद्धिही, तत् पदही हवै जान।।
ब्रह्मरंध्र आकाश है, बड़ा जु तत्वन मांहि। श्याम बरण ब्रह्म देवता, योगी जहां सिराहिं।।
प्राण लीन घटि पांचकरि, पावै मुक्ति अनूप। व्योमतत्व की धारणा, जहाँ छाहं नहिं धूप।।
पृथ्वी सग लकारही, जलके संग बकार। पावक रंग रकार है, पारूत संग मकार।।
पंचम तत्व आकाश ही, सब के ऊपर जान। अक्षर जहां हकारही, शुकदेव कहै बखान।।
132

पहिलि धारणा थंभनी, दूजी द्रवण होय। तीजी दहनी जानिये, चौथी भ्रामिनी सोय।।
पाँचवीं नाम जु शंखिनी, इनको लेवो जान। शुकदेवा अब कहत है, आगे और विधान।। 133

गुरू की प्रथम धारणा लीजै। अपना रूप उन्हीं सा कीजै।।
ऐसे ध्यान सभी सुधि पावै। जैसी धारै सो होय जावै।।
वेगिहि सब साधन सधि आवै। आलस कायरता भजिजावै।।
लोक प्रलोक सभी सुख लेवै। जो गुरू को ऐसो व्रत सेवै।।
दूजे परमातम की धारणा। मुक्तिदेन अरू बंध निवारण।
धारणसों चित घना लगावै। सिमिटि सभी ओरनसों आवै।।
जो कछु होय सो आगेहि आगे। टेक पकरि मारग मे लागै।।
चरणदास शुकदेव बतावै। सती शुरमा ज्यों मन लावै।। 134

प्राण वायुकी धारणा, परमेश्वर पहिंचान।
परमातम हवै जात है, जोपे रोके प्रान।।
बारह मात्रा सों चढ़े, हवां तक पहुंच जाय।
बारह सै अरू छानबे, कुम्भक में ठहराय।।
यही धारणा अंग है, शनै शनै कर ध्याव।
याते दुगुनी ध्यान में, प्राण वायु परचाव।।
दूजा जानि समाधि लो, ध्यानहिं सेती एहु।
पांच सहस अरू एकसौ, चौरासी गिनिलेहु।। 135

(7) अथ सातवां अंग वर्णन

शिष्यवचन

अंग धारणा का कहा, सो धारा चितमाहिं। ध्यान अंग वर्णन करौ, मै रहुं चर्णन छाहिं।। 136

गुरूवचन

चरणदास अब ध्यान सुन, कहूं तोहिं समुझाय। कहिशुकदेवसोसुनिसमुझि, करौ ताहि चितलाय।

ध्यान जु चारि प्रकार के, कहूं जु उनकी रीत। पदस्थ पिंड रूपस्थ है, चौथा रूपातीत।। 137

(i) अथ पदस्थध्यान

हिय पदपंकज ध्यानकरि, फिरि करि सारी देह। नखशिखलौं छविनिरखिकै, चरणन में चितदेह।।

कै कुंभकही कीजिये, हवां प्रणव का जाप। मन निश्चल हो सहजमें, भाजैं त्रैविधि ताप।।

पदस्थ ध्यान याको कहैं, करैसौ जानै भेव। पिंडस्थ ध्यान वर्णन करैं, खोलिखोलि शुकदेव।।138

(ii) अथ पिंडस्थध्यान

ब्रह्म सोई यह पिंड है, यामें करि करि वास। कमलन के लखि देवता, लहो परापत तास।।
सोधे सिगरे पिंडको, षट चक्रहु को ध्यान। शोधत शोधत आचढै, भवंर गुफा अस्थान।।
तिरवेणी संगम बहै, ज्योति जहां दरशाय। सातजन्म सुधि होय जब, हंस करै जहँ न्हान।।
ऊपर तेजहि पुंज है, कोटि भानु परकास। शून्य शिखर ताऊपरै, योगी करै विलास।। 140

(iii) अथ रूपस्थध्यान

रूपस्थ ध्यानको भेह सुनि, कीजै मन ठहराय। देखै त्रिकुटी मध्य हवै, निश्चल दृष्टि लगाय।।

ध्यान किये पहिले जहां, अगन फूल दृष्टाय। केते द्योसन माहिहीं, दीप ज्योति प्रकटाय।।

शनै शनै आगे जहां, दीपमाल दरशाय। फिरि तारों की मालसी, दामिनी बहु दमकाय।।
बहुत चन्द सूरज घने, देखे कोटि अनन्त। अणुज्यों करि सूभर भरे, ध्यान माहिं दरशन्त।।
झिलमिल झिलमिल तेजमय, भासै सब संसार। तन मन उपजे सुखघना, आनन्द अधिक अपार।

जल अथाह में डूबिज्यों, देखै दृष्टि उघार। जो दीखै तौ नीरही, दश दिशि अपरम्पार।।
यही ध्यान प्रत्यक्ष है, गुरू कृपासों होय। कह शुकदेव चर्णदासकर, तन मन आलस खोय।।141

(iv) अथ रूपातीतध्यान

रूपातीत शून्यध्यानहिंजानो। शून्यहि को परब्रह्म पिछानो।।
त्रिकुटी परै शून्य अस्थान। सो वह कहिये पद निर्वान।।
चिदानन्द ताकी हिय आनो। वाही में मनहीं को सानो।।

आठपहर जहं चित्त लगावो। याके कीन्हे सों लयपावो।।
ज्यों अकाश में पक्षी धावै। धावत धावत दृष्टि न आवै।।
बहुरि अचानक दीखै आई। वह ध्यानी ऐसा हवै जाई।।
परमशून्यकाअधिकीध्याना। सब ध्यानी में है परधाना।।
जो योगी यह लहै ठिकाना। सयुज्यमुक्तिहोइजायनिदाना।। 142

यासों लगै समाधिही, निद्रा कहिये योग।
ध्याता होवै लीनही, रहै न त्रिकुटी रोग।। 143
समवां कहाजु ध्यानहीं, आठवीं कहूं समाधि।
ज्ञान ध्यान जहं बीसरै, तहां न विद्यावाद।। 144

इति ध्यानांगसम्पूर्णम्।।

(8) अथ आंठवा समाधि अंगवर्णन

गुरूवचन

अठवीं कहूं समाधि लक्षण वर्णन करूं। तोको सब समुझाय तेरी दुबिध हरूं।।
जबहीं लगै समाधि योगी आनन्द लहै। योग भया सिध जानि क्रिया कोई ना रहै।।
मिलि ध्याता अरू ध्यान एक होवे जहां। दूजा रहै न भाव मुक्ति बर्ते जहां।।
निरउपाधि निर्खेद ऐसा वह देश है। करम भरम अरू धरम नहीं कोई लेश है।।
आपा रहै न कोय सकल आशागरै। चिन्ताका दुख नांहि वासना सब जरै।।
पंच विषय जहैं नाहि नहीं गुणतीगहीं। होबै ब्रह्म स्वरूप जीवताक्षी नहीं।।
जाग्रत स्वप्न सुषोप्ति जहां होवै नहीं। चौथे पद को पाय होय जहां लीनहीं।।
ऐसे कहै शुकदेव सुनौ चर्णदासही। यह निर्द्वन्द्व समाधि करौ तहं वासही।। 145

जहां कछु गम ना रहै, विद्या वेद न वाद।
ऋधिसिधि मिटि आनंदलहै, ऐसी शून्य समाधि।।146

तहां किये परवेश रहै न अकारही। रूप नाम गुण क्रिया यही साकारही।।
पाप पुण्य सुख दुःख जहां नहिं पाइये। मतमारग कुल धर्म न देत दिखाइये।।
भूख प्यास अरू उष्ण जहां नहिं शीत है। हर्ष शेक नहिं नेक वैर नहिं प्रीत है।।
इन्द्री मन नहिं रहत गलित हवै जात है। सिध साधक गुरू शिष्य न भाव रहात है।।

उडुगन चन्द्र न सूर न दिवस न रात है। त्वंपद ईश्वर ब्रह्म न जान्यो जात है।।
जैसे जल में नीर क्षीर में क्षीरही। असि पद में यों जीव नीर में नीरही।।
अहं मिटै मिटि जाय जू आपा थोकही। ना परपातम आतम बंध न मोक्षही।।
ऐसे कह शुकदेव यों होय समाधि में। वैसाही हवै जाय सोई था आदि में।। 147

हुता आदि परमात्मा, बिचउठि लगा विकार।
मिलि समाधि निर्मन भवै, लहै रूप ततसार।। 148

जहँ आतमदेव अभेव सेवक नहि सेवहै। स्वामी भी हवां नाहि पूजा नहि देव है।।
नौधा नेम न प्रेम ज्ञान नहिं ध्यान है। जड़ चेतन कछु नाहिं सुरति नहिं ज्ञान है।।

विधि निषेध नहि भेद अन्वैवितरेकना। निश्चय अरू व्यवहार कछु तामें न हवा।।
उत्तम मध्यम भाव न शुभ ना अशुभहै। सिंह सर्प डरनाहिं औ शस्तर को ना भै है।।
पावक दग्ध न करै बहावै जल नहीं। हवां नहि पहुंचै कान न ज्वालाहै तहीं।।
ऐसा भवन समाधि भाग्य सों पाइये। ताजि कै जक्त उपाधि तहां मठ छाइये।।
यतन करै लख माहि और सब भेषही। कोटन में कोइ होय समाधी एकही।।
हवांतक पहुंचै जाय सोई सिध साध है। कहै शुकदेव पुकारि जु कठिन समाधि है।।

149

भक्ति योग अरू ज्ञान की, त्रैविधि कहूँ समाधि।
गुरू मिलै तौ सुगमहै, नहीं कठिन अगाधि।। 150

(i) अथ भक्तिसमाधि

सब इंद्रिन को रोंकिकै, करि हरि चर्णन ध्यान।
बुद्धि रहै सुरतिहु रहै, तौ समाधि मत मान।।
ध्याता बिसुरै ध्यान में, ध्यान होय लय ध्येह।
बुद्धिलीन सुरती न रहै, पद समाधि खिलेह।।151

(ii) अथ योगसमाधि

आसन प्राणायाम करि, पवन पंथगहिलेहि।
षट चक्कर को छेद करि, ध्यान शून्य मन देहि।।
आपा बिसरै ध्यान में, रहै सुरति नहि नाद।
लीन होय किरिया रहित, लागै योग समाधि।। 152

(iii) अथ ज्ञानसमाधि

जबलगतत्व विचारिकरि, कहैं एक अरू दोय। ब्रह्मव्रत बांधे रहै, ह्यांलग ध्यानहि होय।।
म तू यह वह भूल करि, रहै जू सहज स्वाभाय। आपा देहि उठाय करि, ज्ञान समाधि लगाय।।

ज्ञान रहित ज्ञाता रहित, रहित ज्ञेय अरू जान। लगी कभी छूटै नहीं, यह समाधि विज्ञान।।
पूछे आठों अंग तें, योग पंथ की बात। शुकदेव कहै तामें चलौं, गुरू कृपा लै साथ।। 153

इति समाधिअंगअष्टांग योग सम्पूर्णम्।

————0————

बोध प्रश्न :

टिप्पणी क : अपने उत्तर नीचे दिये गये स्थान में लिखें।

ख : इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

प्रश्न 1 स्वामी चरणदास जी का जीवन परिचय दीजिये ?

प्रश्न 2 अष्टांगयोग की विषय वस्तु पर संक्षिप्त में प्रकाश डालिये ?

9.4 इकाई 30 अष्टांग योग में संयम, यम, नियम एवं आसन

9.4.1 अष्टांग योग में संयम

स्वामी चरणदास जी ने योग साधना शुरू करने हेतु सर्वप्रमुख आवश्यकता संयम की साधना बतलाई है। इसके बिना अष्टांग योग (यम नियम आसन प्राणायाम, प्रत्याहार धारणा ध्यान और समाधि) की साधना को सतत् बनाये रखने में उन्होंने शंका जहिर की है। इनके अनुसार संयम के दो स्तरों पर प्रभाव होते है।

(अ) शारीरिक स्तर पर।

(ब) मानसिक स्तर पर।

(अ) शारीरिक स्तर पर संयम

चरणदास जी ने स्पष्ट रूप से कहा है कि बिना संयम के योगाभ्यास फलदायी नहीं है। अतः संयम हेतु निम्नलिखित बातों का पालन करना अनिवार्य है।

(1) आहार संयम की आधार शिला है अतः साधक को आहार उतनी मात्रा में ही लेना चाहिये जितनी मात्रा में भूख भी मिट जाये और साधक को आलस्य भी न आने पावे।

(2) भोजन के साथ पानी भी कम पीना चाहिये।

(3) साधक को कम बोलना चाहिये अर्थात वाणी पर नियंत्रण रखना चाहिये।

(4) विवाद (तर्क–वितर्क) कभी भी नहीं करना चाहिये।

(5) ज्यादा सोना नहीं चाहिये अर्थात नींद कम लेना चाहिये।

(6) सोते समय किसी अन्य व्यक्ति को अपने पास नहीं सुलाना चाहिये।

(7) भोजन में खट्टी, चटपटी, अत्याधिक नमकीन वस्तुओं का सेवन नहीं करना चाहिये। इससे शक्ति क्षीण होती है।

(8) कभी भी किसी से न शत्रुता रखे और न ही मित्रता रखना चाहिये।

(9) सदैव उदासीन या तटस्थ भाव ही रखना चाहिये।

(10) सांसारिक बातों का अधिक चिन्तन नहीं करते रहना चाहिये।

(11) निश्चल (स्थिर) होकर मन को सदैव स्थिर रखने का प्रयत्न करते रहना चाहिये।

(12) इन्द्रियों के अस्वाद (स्वाद लोलुपता अपने अपने विषयों में आकर्षण) को सतत् भूलने का प्रयास करना चाहिये।

(13) स्त्रियों से शरीर में तेल नहीं लगवाना चाहिये।

(14) आठ प्रकार के सुगन्धित द्रव्यों (तेल, फुलेल, चोवा, चंदन, कपूर, इत्र, केसर और कस्तूरी) का प्रयोग नहीं करना चाहिये।

(15) सदैव अन्य मनुष्यों से किसी प्रकार की आशा न करते हुऐ केवल गुरू चरणों में ही अभ्यासरत् रहना चाहिये।

(ब) मानसिक स्तर पर संयम

चरणदास जी के अनुसार मानसिक सन्तुलन हेतु निम्नलिखित प्रकार के संयम पालन करने चाहिये।

(1) काम, क्रोध, मद, लोभ और अहंकार आदि से सदैव दूर रहकर सतत् विनम्र बने रहना चाहिये। इससे सांसारिक वातावरण का प्रभाव नहीं पड़ता है।

(2) कभी न तो किसी से छल कपट करना चाहिये और न ही छले जाना चाहिये।
(3) अहंकार और झूठ से सदैव दूर रहना चाहिये।
(4) तंत्र मंत्र यंत्र, भूत तथा प्रेत का अस्तित्व नहीं है इनसे भय नहीं खाना चाहिये।
(5) धातु तथा रसायन आदि भी झूठ होते हैं। इनसे बचना चाहिये।
(6) अधिक मनोरंजन (नाटक नौटंकी फिल्म आदि) तथा अत्याधिक सैर सपाटा (बाग–बगीचा) आदि में न जाकर सतत् आसन लगाकर अभ्यास करते रहना चाहियें।
(7) अभ्यास जितना दृढ़ बनाते जावेगें विध्नों की संभावना भी कम होती जावेगी।
(8) सांसारिक भोगों से जितना हो सके दूर रहना चाहिये।
(9) अत्याधिक लोगों से सम्पर्क नहीं करना चाहिये।
(10) अपने तक सीमित रहकर अभ्यास से ही मतलब रखना। इससे योग साधना में सफलता प्राप्त होती है।
(11) योग साधना से किसी प्रकार की ऋद्धि–सिद्धि (काम्य साधना फलों) की कामना नहीं करना चाहिये।
(12) अधिक मान सम्मान या बड़ाई प्राप्त होने पर चित में चंचलता उत्पन्न होती है अतः इससे दूर रहना चाहिये।
(13) संतोष धारण करना चाहिये। तथा दूसरों की त्रुटियों को क्षमा कर देना चाहिये।
(14) पथ्य अर्थात उचित आहार (मिताहार) से रोगों का शमन (निदान) करना चाहिये।
(15) किसी का भी कभी बुरा न सोचें और अहंकार को दिनों दिन कम करते रहना चाहिये।

9.4.1.1 योग अभ्यास हेतु स्थान

चरणदास जी के अनुसार योगाभ्यास का स्थान सुन्दर (रमणीय) देश एवं वहां उचित स्थान का चयन करना चाहिये। किसी प्रकार के उपद्रव (विध्न बाँधायें या परेशानियाँ) न हो। वहां स्थायी रूप से रहकर योगभ्यास का विचार करना चाहिये।

देश एवं स्थान का चयन कर एक छोटी सी कुटिया का निर्माण करना चाहिये। कुटियों में द्वार छोटा हों, दीवार गोबर या मिट्टी से लीपकर जीवाणु रहित हो। तथा कुटियाँ में कही कोई छिद्र नहीं रखें, ऐसा लेप कर देवें। कुटी के चारों तरफ दीवार (बाड़) हो तथा जमीन समतल होना चाहिये। तथा गोबर से लिपी होना चाहिये।

कुटियाँ का निर्माण कर उचित मुहूर्त में अकेले बैठकर संसार की चिन्ता छोड़कर (संसार से अलग होकर) योग साधना करना चाहिये।

उपर्युक्त सभी संयमों एवं नियमों को अपनाकर योग साधना में दृढ़ता पूर्वक लगने से योग मार्ग में निश्चित ही सफलता प्राप्त होती है। इस कारण **संयम** योग साधना के पूर्व साधक को तैयार करने का एक आवश्यक अंग है।

9.4.2 अष्टांग योग में यम

अष्टांग योग में चरणदास जी ने **यमों** की संख्या 10 बतलाई है। ये 10 यम निम्नलिखित है। जिनका प्रभाव शारीरिक एवं मानसिक दोनों प्रकार का होता है।

(1) अहिंसाः– मन वचन और कर्म (क्रिया) द्वारा हिंसा न करना ही अहिंसा कहलाता हे। यहां तक की वाणी के द्वारा भी हिंसा नहीं करना चाहिये (कठोर वाणी बोलकर)।

(2) सत्यः– मन वचन और कर्म से कभी भी असत्य न सोचना न बोलना और न ही करना सत्य कहलाता है। इस कारण बोलने से पहले बोले जाने वाले विषय का अच्छी प्रकार विचार कर बोलना चाहिये।

(3) अस्तेयः– मन वचन और कर्म से किसी की कोई भी वस्तु की चोरी नहीं करना अस्तेय है। इससे ६

ीरे– धीरे त्याग की भावना उत्पन्न होती है।

(4) ब्रह्मचर्यः– किसी भी प्रकार से वीर्य (शक्ति) का क्षरण नहीं होने देना ब्रह्मचर्य है। इस हेतु अपनी इन्द्रियों पर संयम (नियंत्रण) दृढ़ता से करते हुऐ लंगोट धारण कर यातियों की जीवन चर्या का पालन करना चाहिये। सदैव मैथुन से बचना चाहिये। चरणदास जी ने मैथून के आठ प्रकार बतलाये है।

(प) परस्त्री या परपुरूष का स्मरण करते रहना।

(पप) उनके विषय में सुनना या सोचने की इच्छा करना।

(पपप) श्रृंगारिक साहित्य पढ़ना।

(पअ) एक दूसरे को देखकर हसँना।

(अ) सतत् टकटकी लगाकर देखते रहना।

(अप) अकेले में बात करने की इच्छा करना।

(अपप) मिलने के लिए उत्सुक रहना।

(अपपप) शारीरिक स्पर्श (छूने) का प्रयास करना।

उपरोक्त आठ प्रकार के मैथुन से मन, वचन एवं कर्म (क्रिया) से सदैव दूर रहने का प्रयास ब्रह्मचर्य साधना है।

(5) क्षमाः– क्षमा साधक के मन में उत्पन्न सभी प्रकार की ईर्ष्या (जलन) को दूर करते तथा सभी प्रकार के पापों से मुक्त कर सुख प्रदान करने में समर्थ होता है। किसी दुष्ट की दुष्टता, गाली, खींझ या शरीर पर किसी प्रकार आक्रमण गंदी वस्तु डालना या कोई अन्य दुख या कष्ट देने पर भी उसके प्रति किसी प्रकार का बैंर भाव न रखकर उल्टे उसकों सिर झुकार नमन करना। इस प्रकार की विनम्रता का मन वचन एवं कर्म से व्यवहार करना क्षमा कहा जाता है।

(6) धीरजः– योग साधना में साधक को धीरज रूपी यम का लम्बे समय तक पालन करना पड़ता है क्योंकि योग के अतिंम लक्ष्य की प्राप्ती तक योग साधना सतत चलती रहे उसमें कोई विध्न या बाधायें न आने पावे इस हेतु मन, वचन और कर्म (क्रिया) से धैर्यवान बनकर सतत् साधना करना होता है।

(7) दयाः– मन वचन एवं कर्म से सभी प्राणियों के उपर दया का भाव रखना जिससे उनके जीवन की रक्षा हो सके। प्राणिमात्र के हित के प्रति सोचना तथा किसी से भी वैर भाव न रखना दया है।

(8) आर्जवः– आर्जव शब्द की व्युतपत्ति ऋतु शब्द से बनी है। ऋजुता अर्थात कोमलता बनाये रखना ही आर्जव है। जिस प्रकार कोमल धरती पर बीज शीघ्र बढ़ने और फूलने–फलने लगते है उसी प्रकार कोमल हद्रय योग साधक को शीघ्र ही साधना में सफलता प्रदान करता है।

(9) मिताहारः– चरणदास जी ने मिताहार का बड़ा व्यावहारिक विवरण प्रस्तुत किया है। इनके अनुसार खद्य अखाद्य का ज्ञान रखना चाहिये। कम मात्रा में चिकनाई युक्त सात्विक भोजन करना तथा अपने भोजन की मात्रा का 1/4 छोड़कर पेट का तीन भाग ही भोजन एवं पानी से भरना मिताहार है। वानप्रस्थ या सन्यासी को मात्र सोलह ग्रास (कौर) गृहस्थ को बत्तीस ग्रास तथा ब्रह्मचारी को जितने से शक्ति बनी रहे उतना ही भोजन लेना चाहिये। इससे नीद कम तथा श्वास की मात्रा (आवृति) कम होती है।

(10) शौचः– चरणदास जी के अनुसार शौच के दो प्रकार है–

(प) ब्राह्य शौच (पप) आभ्यान्तर शौच।

(प) ब्राह्य शौचः– सदैव दातून आदि से मूंह साफ कर स्नान करना एवं पवित्रता बनाये रखना ब्राह्य शौच कहलाता है। इसे बीमारी की अवस्था में भी जितना संभव हो अवश्य बनाये रखना चाहिये।

(पप) आभ्यान्तर शौचः– शौच उसे कहते है जिसमें हृद्य से राग द्वेष तथा मन के सभी खोटे कर्मो को दूर किया जाता है।

उपरोक्त दस यमों का वर्णन चरणदासजी ने अपने दृष्टिकोण से किया है। इनका आचरण में प्रयुक्त होना योग साधना में सफलता प्राप्त करवाता है।

9.4.3 नियम

चरणदास जी ने **नियम** भी 10 प्रकार के बतलाये है। जिससे साधक को योग साधना में सफलता मिलती है। ये 10 नियम निम्नांकित है–

(1) तपः– सभी इन्द्रियों को उनके विषयों के स्वाद से सर्वथा दूर रखना तथा सोते–जागते, खाते–पीते, सतत् इन्द्रियों को वश में रखना, इस प्रकार प्रथम तन को वश में करना, फिर मन को वश में करना तप है।

(2) सन्तोषः– हानि होने पर शोक नहीं तथा लाभ होने पर हर्ष नहीं प्रकट करना, इस प्रकार की समझ यदि हृदय में आ जाय और जो भी होता है वह प्रारब्ध के अनुसार होता है, यह जानकर किसी भी प्रकार का संकल्प–विकल्प न रहे, तो वह सन्तोष कहा जाता है।

(3) आस्तिकताः– शास्त्रीय बातों पर विश्वास कर एक मात्र ब्रह्म को सत्य समझना और संसार को असत्य समझना, इस प्रकार का आत्मनिश्चय आस्तिकता है।

(4) दानः– पात्र–कुपात्र का विचार कर जरूरतमंद व्यक्ति की सहायता करना दान है। पहला और उत्तम दान ऐसे उपदेश का दान है, जिससे जीव इस भवसागर (संसार) से पार होकर परमगति को प्राप्त कर सके। अन्न–पानी आदि का दान द्वितीय कोटि का दान है तथा दूसरे के दुःख में सहभागी होना भी दान ही है।

(5) ईश्वरपूजनः– निष्काम होकर दास्यभाव से तन–मन से ईश्वर के प्रति पूर्णतः समर्पित हो जाना ईश्वरपूजन है। भावपूर्वक पान, फूल और सुगन्धित द्रव्यों से पूजा करना भी ईश्वरपूजन है।

(6) सिद्धान्तश्रवणः– शास्त्रीय–विषयों को पढ़–सुनकर उस पर गहन विचार करना और तब उसमें से सार–विचार को ग्रहण करना सिद्धांत श्रवण है। गृहीत विचार को सदगुरू से भी विचार कर तब हृदय में धारण करना, ज्ञानी के साथ जो क्रियावान् भी हों, ऐसे योगी से ही मिलना तथा क्रियारहित योगी की बात पर ध्यान नहीं देना चाहिए।

(7) लाजः– सभी प्रकार के बुरे कर्मो का त्याग करना और शरीर एवं मन को उधर नहीं जाने देना, हृदय और आखों में लज्जा का भाव रखना तथा साधु और गुरू से भी लज्जा करना लाज है। परिवार–मित्र एवं अन्य सभी से लाज रखना तथा सबसे बड़ी लाज ईश्वर से रखना चाहिए। अर्थात कभी अकेले में भी बुरे कर्मो को सोचते समय यह ख्याल रखना कि ईश्वर सदा साक्षी है। इस प्रकार के लाज रूपी भवन से सभी काम बनते हैं।

(8) दृढ़मतिः– शुभकर्म पर एक बार आरूढ़ हो जाने पर किसी के भी बहकाने से उससे नहीं हटना चाहिए, सांसारिक सुखों या स्वर्गादि सुखों को भी तुच्छ समझकर अपनी साधना में ही दृढ़ रहना तथा कोई स्तुति करे या गाली दे, दोनो में ही स्थिर रहना दृढ़मति है।

(9) जापः– सामान्यतया जप के तीन प्रकार हैं– बैखरी, उपांशु और मानस। आवाज के साथ किए जप को बैखरी, आवाज रहित किन्तु होठ हिलाकर जप करने को उपांशु तथा मन में ही जप करने को मौन जप कहा जाता है। वैखरी से हजार गुना उपांशु तथा उपांशु से हजार गुना मौन–जप श्रेष्ट है। चरणदास ने इसी मौन जप को प्रधानता देकर प्राणायाम की अवधि में गुरूप्रदत्त–मंत्र का मौन जप को प्रधानता देकर प्रणायाम की अवधि में गुरूप्रदत्त–मंत्र का मौन जाप करना उत्तम माना है। इसके साथ ही ईश्वर या गुरू की स्तुति को भी इन्होंने जप ही माना है।

(10) होमः– इसके दो प्रकार हैं– बाह्य और अभ्यन्तर। प्रांगण में कुण्ड बनाकर वैदिक रीति से साकल्य के द्वारा हवन करना बाह्य होम है। तथा ज्ञानरूपी अग्नि में इन्द्रियरूपी साकल्य का सतत् होम करते रहना अर्थात् ज्ञान के द्वारा इन्द्रियजन्य आनन्द को तुच्छ समझकर उसे सर्वथा छोड़ देना आभ्यन्तर

होम है।

इस प्रकार चरणदास के इन दोनों यम–नियमों को आचरण में लाने पर ही योग सम्भव हो सकता है, ऐसा उनका कहना है। अन्यथा इसके बिना मनुष्य सांसारिक भोगों के प्रति बहने लगता है। चरणदास ने यहां भी पंतजलि के पाँच नियमों में से चार लिया है और वसिष्ठ संहिता के अनुसार और छः नियमों को अपनाकर दस नियमों का वर्णन किया है।

9.4.4 अष्टांग योग में आसन

चरणदास के अनुसार **आसन** के बिना **योग** की बात करना व्यर्थ है। आसन का अभ्यास दृढ़ हो जाने पर शरीर के सभी रोग दूर हो जाते हैं और योग–साधना में **दृढ़ता** आती है। जितनी योनियाँ हैं, आसनों की संख्या उतनी ही हो सकती है अर्थात् चौरासी लाख। किन्तु उनमें से चौरासी आसन प्रमुख हैं। और उनमें से भी मात्र **दो आसन** अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं– **सिद्धासन और पद्मासन।** इन दानों के अतिरिक्त और जितने भी आसन हैं। वे सभी शारीरिक शिकायतों को दूर कर उन्हें स्वस्थ बनाते हैं। मात्र ये दो आसन योग–साधना में सफलता लाने में उपयोगी होते हैं। इन दो को जो सिद्ध कर लेते हैं, वे ध्यान–समाधि में पहुंचने की योग्यता प्राप्त कर लेते हैं।

यहाँ ऐसा प्रतीत होता है कि चरणदास ने पंतजलि का ही अनुकरण किया है। पंतजलि की आसन की परिभाषा है– ''स्थिरसुखमासनम्'' अर्थात स्थिरता से सुखपूर्वक जिस स्थिति में बैठा जाय उसे आसन कहते है। यह स्थिति अभ्यास के बाद इन्हीं दो आसनों में सम्भव है। 'आस्' उपवेशने धातु से बना शब्द 'आसन' यही अर्थ रखता है। वैसे भी चाहे जितने भी आसनों के अभ्यास किये जाएं, अन्ततः इन्हीं दो आसनों में दृढ़ता प्राप्त करना योगसाधकों का लक्ष्य रहता है। क्योंकि मात्र इन्हीं में, आसन के बाद के अंगों का समुचित अभ्यास सम्भव हो सकता है। इसी कारण सभी योग ग्रन्थ अन्तिम रूप से इन्हीं दो आसनों के अभ्यास पर बल देते हैं।

(अ) पद्मासन

इस आसन को करते समय कुछ–कुछ कमल या पद्म जैसी आकृति बनती है, इसीसे इसे पद्मासन या कमलासन कहा जाता है। चरणदास का पद्मासन अन्य योगाग्रन्थों से कुछ भिन्न व कठिन जान पड़ता है। इनके अनुसार पहले बायां पांव उठाकर दायें पर तथा दायां बायें जांघ पर रखा जाता हैं। फिर बायाँ हाथ पीठ के पीछे से ले जाकर बाँयें पांव के अँगूठे को तथा इसी प्रकार दायें हाथ से दाये पाँव अँगूठे को पकड़ा जाता है। शारीर सीधा रहता है। इसके बाद गर्दन को झुकाकर ठोढ़ी को छाती से सटाकर दृष्टि नासाग्र पर स्थिर की जाती है। इस प्रकार चरणदास का यह पद्मासन होता है। इसके अभ्यास से अर्न्तदृष्टि निर्मल होती है तथा विभिन्न प्रकार के अनुभव प्राप्त होते है। यह प्रथम प्रकार का पद्मासन है। योगाभ्यासी सामान्यतया इसे बद्धपद्मासन कहते हैं किन्तु चरणदास ने इसे उत्कृष्ट पद्मासन कहा है। पद्मासन के द्वितीय प्रकार में ठोढ़ी छाती से नहीं लगाया जाता और गर्दन सीधा रखा जाता है। तृतीय प्रकार में हाथ पीठ–पीछे न ले जाकर सामने की ओर ही रखते हैं तथा दोनों हाथों से दोनों घुटनों को दबाकर रखते हैं। चतुर्थ प्रकार में हाथों से दोनों पाँव के अंगूठों को पकड़कर बैठे रहते है। इस प्रकार चरणदास ने पद्मासन के चार प्रकार कहे हैं। देखें चित्र क्रमांक – 55।

चित्र क्र.–55

पद्मासन

(ब) सिद्धासन

सिद्ध (सफलताप्राप्त) योगियों को प्रिय होने से इस आसन को सिद्धासन कहा जाता है। या इस आसन के अभ्यास से सिद्धि (सफलता) निःसंदिग्ध रहती है, अतः इसे सिद्धासन कहा जाता है। इसमें पहले बाँये पाँव की एड़ी को गुदा के पास (सीवनी स्थान में) दृढ़ता से लगाकर रखा जाता है। फिर दांये पांव की एड़ी को लिंग के ऊपर रखा जाता है। दोनों हाथों को घुटनों पर सीधे रखा जाता है तथा दृष्टि भ्रूमध्य पर स्थिर की जाती है। इससे कई आश्चर्यजनक अनुभव होते हैं तथा ज्ञान के बन्द कपाट खुलते हैं एवं मुक्ति का मार्ग प्रशस्त होता है। इस आसन से व्याधियां भी दूर होती हैं, भूख, नींद आदि पर भी अधिकार हो जाता है। इस प्रकार चरणदास ने अनेकों आसनों में से सारभूत उक्त दो आसनों को योग–साधना में प्रगति के लिये पर्याप्त माना है। देखें चित्र

चित्र क्र.–56

सिद्धासन

बोध प्रश्न :

टिप्पणी क : अपने उत्तर नीचे दिये गये स्थान में लिखें।

ख : इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

प्रश्न 3 चरणदासकृत अष्टांग योग के अनुसार संयम को समझाइयें ?

प्रश्न 4 चरणदास द्वारा अष्टांग योग में वर्णित यम–नियम लिखिये ?

9.5 इकाई 31 अष्टांग योग में प्रत्याहार, धारणा, ध्यान एवं समाधि

9.5.1 अष्टांग योग में प्रत्याहार का स्वरूप

चरणदास जी ने अपने ग्रंथ अष्टांग योग में प्रत्याहार के स्वरूप का वर्णन अष्टपदी क्रमांक 128 एवं 129 में किया है। इनके अनुसार अष्टांग योग का पाँचवा अंग प्रत्याहार है। चरणदास के अनुसार योग–साधक को यह अवश्य ही होना चाहिए। प्रत्याहार की परिभाषा में वे कहते हैं कि विषयों की ओर जो इन्द्रियां सतत् जाती रहती हैं, उनको उधर न जाने देकर अपने अन्दर ही लौटाकर आत्मा की ओर लगाना या स्थिर रखने का प्रयास करना प्रत्याहार है। जिस प्रकार कछुआ अपने अंगों को समेट लेता है या निर्धन व्यक्ति जाड़े के मौसम में अपने अंगों को सिकोड़कर सोता है या छोटा बच्चा सर्प, आग या घातक अस्त्र को छूने दौड़ता है। और उसकी माँ उसे उधर न जाने देकर लौटाकर अपनी गोद में ले लेती है, उसी प्रकार इन्द्रियों को इन घातक विषय–स्वादों से विमुख कर अपनी आन्तरिकता की ओर लौटाने का प्रयत्न करना चाहिए।

आँख **रूप** को, नाक **गन्ध** को, जीभ षडरसों को, कान **शब्द** को और त्वचा **स्पर्श** को भोगता है। इन सबसे मन में विकार की वृद्धि होती है। ये भोग ज्यों–ज्यों बढ़ते हैं त्यों–त्यों ये इन्द्रियां और बलवान होकर मन को विक्षिप्त करती रहती हैं। अतः इनको इन भोगों से सर्वथा विरत करने तथा इन्द्रियों को लौटाकर स्थिर रखने के लिए प्राणायाम का पर्याप्त अभ्यास करना चाहिए। प्राणायाम के अभ्यास से प्राण वश में होने पर मन अपने आप वश में आने लगता है। इन्द्रियां स्थिर हो जाती हैं। सभी विषय समाप्त हो जाते हैं। अतः सार वस्तु है प्राणायाम के अभ्यास से प्रत्याहार की स्थिति अपने आप बनने लगती है।

9.5.2 अष्टांग योग में धारणा का स्वरूप

चरणदास जी ने अपने ग्रंथ अष्टांग योग में धारणा के स्वरूप का वर्णन अष्टपदी क्रमांक 130 से लेकर 135 तक में किया है। इनके अनुसार धारणा चित की शांत अवस्था है।

''देशबन्धश्चित्तस्य धारणा'' पतंजलि की इस परिभाषा के अनुसार चित्त का देशविशेष में बँध जाना धारणा है। अर्थात् प्राणायाम के पर्याप्त अभ्यास के बाद श्वास–प्रश्वास के मन्द व शान्त होने पर, इन्द्रियों के विषयों से लौटने पर, मन अपने आप स्थिर होकर शरीरान्तर्गत किसी स्थान विशेष में स्थिर हो जाता है। यही चित का देशबन्ध है। और इसी को धारणा कहा जाता है। चरणदास ने पतंजलि की इस धारणा को लक्ष्य बनाकर इसकों प्राप्त करने के लिए अपने ढंग से इसे सरल बनाने का प्रयास किया है। उनके अनुसार ऐसी स्थिति एकाएक या अल्प अभ्यास से आने वाली नहीं है। अतः उन्होने शरीरनिर्माण के लिए उत्तरदायी पांच महाभूतों में से एक–एक पर अपने मन की धारणा करने को कहा है। इन पांचों महाभूतों का शरीर में भिन्न–भिन्न स्थान, रंग, देवता आदि बताते हुए वे कहते हैं कि इन स्थानों पर इन देवताओं के स्मरण के साथ चित को स्थिर करने का अभ्यास करना चाहिए–

क्र.	महाभूत	नाम	स्थान	आकार देवता	रंग	अक्षर
1	आकाश	शंखनीधारणा	मस्तक	निराकारब्रह्म	भूरा	ह
2	वायु	भ्रामनीधारणा	भ्रूमध्य	षट्कोण ईश्वर	मेघरंग	म
3	तेज	दहनीधारणा	तालु	त्रिकोण रूद्र	लाल	र

सारणी क्र.– 16

4	जल	द्रावनीधारणा	कण्ठ	अर्धचन्द्र	हृषीकेश श्वेत		ब
5	पृथ्वी	थम्भनीधारणा	हृदय	चौकोर	विधि	पीला	ल

उपर्युक्त विवरण देकर चरणदास ने कहा है कि प्रथम हृदयस्थल में पृथ्वीधारणा करके चित का कुछ देर वहीं स्थिर रखने का अभ्यास करना चाहिए। यह अभ्यास बढ़ाते–बढ़ाते दो घण्टे तक चित को स्थिर रखने का अभ्यास करना चाहिए। यह अभ्यास बढ़ते–बढ़ते दो घण्टे तक चित्त को स्थिर रखने का अभ्यास जब हो जाता है तब चित वहीं स्थिर हो जाता है। और पृथ्वी–महाभूत वश में हो जाता है। इसके बाद कण्ठस्थान में **जलधारणा,** तालु–स्थान में **अग्निधारणा,** भ्रूमध्य स्थान में **वायुधारणा** तथा अन्त में मस्तक के सर्वोच्च स्थान में **आकाशधारणा** में क्रमशः दो–दो घण्टे तक चित्त को स्थिर करने पर चित **निरालम्ब** होकर स्थिर हो जाने का अभ्यस्त हो जाता है। और अन्त में पतंजलि की धारणा की स्थिति अपने आप आ जाती है। इस प्रकार चरणदास ने पतंजलि की धारणा को लक्ष्य में रखते हुए गोरक्षनाथ के अनुसार अपनी धारणा की व्याख्या की है।

9.5.3 अष्टांग योग में ध्यान का स्वरूप

चरणदास जी ने अपनी कृति अष्टांग योग में ध्यान का स्वरूप का वर्णन सातवें अंग के रूप में दोहा क्रमांक 136 से लेकर 144 तक में किया है। इन्होंने ही सर्वप्रथम ध्यान को भी चार प्रकारों में बटाँ ये प्रकार निमनलिखित हैः–

(1) पदस्थध्यान।
(2) पिण्डस्थध्यान।
(3) रूपस्थध्यान।
(4) रूपातीतध्यान।

(1) पदस्थध्यानः– सुखासन में बैठकर, कुम्भक लगाकर, प्रणव का जप करते हुए प्रथम अपने हृदयकमल में प्रभु के चरणकमलों का ध्यान करें, फिर उनके सम्पूर्ण शरीर की अलौकिक छवि का ध्यान कर अन्त में पुनः दोनों चरणकमलों में ही स्थायी रूप से ध्यानमग्न हो जाएँ। इससे चित्त स्थिर हो जाता है एवं आधिभौतिक, आधिदैविक तथा आध्यात्मिक दुःख नष्ट हो जाते हैं।

(2) पिण्डस्थध्यानः– यह शरीर बह्म का ही निवास स्थान है, यह समझकर अपने शरीर के प्रथम मूलाधारचक्र में ध्यान लगाये। कुछ दिनों तक इस अभ्यास के बाद फिर दूसरे–तीसरे चक्र में क्रमशः ध्यान लगाने का अभ्यास करते हुए अन्त में आज्ञाचक्र में ध्यान लगाकर चित्त को स्थिर करें। इस प्रकार से एक–एक चक्र पर ध्यान के अभ्यास से सम्पूर्ण शरीर सर्वथा शुद्ध हो जाता है। भ्रूमध्य स्थान में ध्यान लगाने से वहां एक विशिष्ट ज्योति का दर्शन होता है, जिससे जन्मान्तरों का स्मरण होने लगता है। इस अभ्यास के बाद सहस्त्रारचक में सद्गुरू का ध्यान करना चाहिए। यह वह स्थान है जहाँ अमृत का समुद्र लहराता रहता है और उसमें हंस (परमात्मा) स्नान करता रहता है। करोड़ों सूर्य का प्रकाश वहां रहता है तथा उससे भी ऊपर शून्य ही शून्य है, जहाँ योगी स्थायी रूप से ध्यानमग्न हो जाता है।

(3) रूपस्थ ध्यानः– त्रिकुटी (भ्रूमध्य स्थान) में अन्तरदृष्टि लगाकर निश्चल हो जाने के बाद प्रथम आग की चिरगारी जैसी छोटे–छोटे ज्योति–कणों का भान होता है। कुछ दिनों के इस अभ्यास के बाद दीप की ज्योतिशिखा जैसी, फिर दीपशिखा की माला (श्रेणी) जैसी, फिर तारों की माला जैसी, फिर चन्द्र, सूर्य आदि के प्रकाश जैसा अनुभव ध्यान में होने लगता है। फलस्वरूप सम्पूर्ण आन्तरिक संसार ही झिलमिल –झिलमिल प्रकाश जैसा दिखाई देने लगता है, जिससे शरीर और मन अत्यन्त

प्रफुल्लित हो आनन्दमग्न हो जाता है। अगाध जल में डुबकी लगाकर आंख खोलकर देखने से जैसे सभी ओर जल ही जल और प्रकाश ही प्रकाश दिखाई देता है, उसी प्रकार इस ध्यान में सभी ओर से आनन्द का ही अनुभव होता रहता है।

(4) रूपातीतध्यानः— इस ध्यान को शून्यध्यान भी कहा जाता है। इसमें उक्त रूप आदि भी समाप्त होकर वहीं त्रिकुटी स्थान के शून्य में चित पूर्णतः स्थिर हो जाता है, जिससे सभी दुःखों का सर्वथा अन्त होकर हृदय में आपार आनन्द का स्त्रोत फूट पड़ता है। जिस प्रकार निरभ्र आकाश में कुछ देर के लिए कोई पक्षी उड़कर आ जाता है और पुनः दृष्टि से ओझल हो जाता है, उसी प्रकार प्रारम्भ में कुछ दिनों तक इस ध्यान में बीच में कुछ विचार क्षणमात्र के लिये आ जाता है। अभ्यास बढ़ने पर यह स्थिति भी समाप्त हो स्थायी रूप से उस परमशून्य का ध्यान होता रहता है। अतः सभी ध्यानों में इस ध्यान को उत्तम और उत्कृष्ट ध्यान माना गया है।

9.5.4 अष्टांग योग में समाधि का स्वरूप

चरणदास जी ने अपने ग्रंथ अष्टांग योग के आठवें अंग के रूप में समाधि का वर्णन दोहा एवं अष्टपदी क्रमांक 145 से 153 तक में किया है। यहां भी उनकी मौलिक विशेषता समाधि के प्रकारों में विभाजन है।

इनके अनुसार समाधि भी तीन प्रकार की होती है। ये प्रकार निम्नलिखित है—

(1) भक्तिसमाधि।
(2) योगसमाधि।
(3) ज्ञानसमाधि।

(1) भक्तिसमाधिः— सभी इन्द्रियों के कार्यो को रोककर मात्र हरि के चरणों में मन को लगाकर ध्यान लगाना चाहिए। इस ध्यान में जब तक बुद्धि काम करती रहे, तब तक वह ध्यान ही है, किन्तु यही अभ्यास बढ़ते—बढ़ते जब ध्याता—ध्यान और ध्येय मिलकर एक हो जाएं, बुद्धि, स्मृति आदि सभी समाप्त हो जाएँ, तब वह भक्तिसमाधि होती है।

(2) योगसमाधिः— आसन—प्राणायाम के अभ्यास से जब प्राण सुषुम्नानाड़ी के द्वारा ऊपर की ओर प्रवाहित होकर, एक—एक कर छः चक्रों को भेदकर सातवें सहस्त्रारचक में पहुंचकर वहीं लीन हो जाता है। तब न स्मृति रहती है, न नाद बचता है और न कोई क्रियाएँ ही बची रहती हैं, अपना आपा भी विस्मृत हो जाता है। यही यह योगसमाधि है।

(3) ज्ञानसमाधिः— विभिन्न तात्विक चिन्तन के आधार पर जब तक आत्मा—परमात्मा आदि की चिन्तनधाराएँ चलती रहती हैं, और परमात्मा या ब्रह्म का ध्यान करने के लिए प्रक्रियाएं चलती रहती हैं, तब तक ध्यान की ही स्थिति होती है। चिन्तन व अभ्यास बढ़ने पर जब मैं, तू, यह, वह आदि का ज्ञान समाप्त हो जाता है और अपना आपा खोकर सहज स्वाभाव की स्थिति प्राप्त हो जाती है, तब वह ज्ञानसमाधि कही जाती है।

बोध प्रश्न :

टिप्पणी क : अपने उत्तर नीचे दिये गये स्थान में लिखें।

ख : इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

प्रश्न 5 चरणदास कृत अष्टांग योग के अनुसार धारणा से आप क्या समझते है ?

प्रश्न 6 चरणदास कृत अष्टांग योग के अनुसार समाधि के स्वरूपों की विवेचना कीजियें ?

9.6 सारांश

द्वितीय प्रश्नपत्र के लिए खण्ड 9 में आपने स्वामी चरणदास कृत अष्टांग योग ग्रंथ का परिचय प्राप्त किया। इस खण्ड में आपने **3 इकाईयों** का अध्ययन किया। इस खण्ड के अध्ययन द्वारा आपने स्वामी चरणदास जी द्वारा अष्टांग योग ग्रंथ में वर्णित विषयवस्तु का सम्यक प्रकार से ज्ञान आर्जन किया।

स्वामी चरणदास जी का समय 1706 से 1785 ई0 के बीच रहा। इन्होंने छोटे–छोटे सत्रह ग्रंथ लिखें जिसमें ग्रंथ क्रमांक 4 का नाम इन्होंने अष्टांग योग रखा। इस अष्टांग योग में संयम से लेकर समाधि तक का निरूपण व्यवहारिक ज्ञान के आधार पर किया गया है। ग्रंथ की शैली संवाद शैली है। गुरू स्मरण, वंदन के पश्चात अष्टांग योग को जानने की जिज्ञासा को शांत करने हेतु चरणदास जी सर्वप्रथम संयम के पालन पर अत्याधिक जोर देते है। चरणदास जी के अनुसार संयम के पालन का प्रभाव दो स्तरों पर होता है–

(1) शारीरिक स्तर पर।

(2) मानसिक स्तर पर।

संयम को स्पष्ट करते हुऐ चरणदास जी ने संयम का आधार **आहार** को बतलाया है। उनके संयम में आहार, विहार, निद्रा, व्यवहार, पर विशेष बल दिया गया है। मानसिक स्तर पर संयम का पालन करने हेतु काम, क्रोध, मद, लोभ और अहंकार आदि के नियंत्रण का निर्देश किया गया है।

संसारिक कर्मो एवं आचरणों को भी उन्होंने बड़े विशुद्ध रूप से समझाया है। इसके बाद योगाभ्यास हेतु उपयुक्त स्थान के चयन को भी निर्देशित किया गया है। जिसमें योग कुटी का वर्णन किया गया है।

संयम के व्यावहारिक धरातल पर परीक्षित ज्ञान के उपरांत चरणदास जी ने अष्टांग योग के प्रथम यम के भेद बतलाये है जिनकी संख्या 10 है। ये यम है अहिंसा सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, क्षमा, धीरज, दया, आर्जव, मिताहार, शौच। इसके बाद द्वितीय अंग के रूप 10 नियमों का विधान दिया है। ये है तप, सन्तोष, आस्तिकता, दान, ईश्वरपूजन, सिद्धांत श्रवण, लाज, दृढ़मति, जाप एवं होम दसके उपरांत चरण दास जी ने आसनों का विधान किया है। इनके अनुसार 84 लाख यौनियों के चौरासी लाख आसन हो सकते है किन्तु इनमें दो आसन श्रेष्ठ है। ये है–(1) सिद्धासन और (2) पद्मासन। इन आसनों से ही **योग** सिद्ध होता है। शेष अन्य आसन शारीरिक समस्याओं के निदान हेतु है। आसन के उपरांत चरणदास जी ने प्राणायाम रूपी चतुर्थ अंग का विधान किया है इसे अगले खण्ड में विस्तार से अध्ययन किया जावेगा।

प्राणायाम के उपरांत चरणदास जी ने प्रत्याहार का पाचवें अंग के रूप विधान किया है इनके अनुसार विषयों से इन्द्रियों को वापस लौटाना ही प्रत्याहार है जैसे कछुआ अपने अंगों को समेट लेता है। उसी प्रकार इन्द्रियों को विषयों से विरतकर लेना ही प्रत्याहार है। प्रत्याहार के उपरांत चरणदास जी ने धारणा का अपने दृष्टिकोण से विभाजन प्रस्तुत किया है इनके अनुसार पाँच प्रकार की धारणायें होती है ये है शांखिनीधारणा, भ्रामनीधारणा, दहनीधारणा, द्रावणीधारणा, थम्भनीधारणा तथा इनकी विधियों का विवरण दिया है। धारणा के उपरांत चरणदास जी ने ध्यान के स्परूप का विवरण प्रस्तुत किया है अपने दृष्टिकोण से चरणदास जी ने ध्यान के चार प्रकार निरूपित किये है ये है– पदस्थध्यान, पिण्डस्थध्यान, रूपस्थध्यान एवं रूपातीतध्यान इसके उपरांत अष्टांग योग का अंतिम अंग समाधि की विवेचना प्रस्तुत की है इस अंग के अन्तर्गत समाधि के स्वरूप को तीन भेदों में बांटा गया है ये है (1) भक्तिसमाधि (2) योगसमाधि (3) ज्ञानसमाधि। इस प्रकार चरणदास जी ने अपने चतुर्थ ग्रंथ अष्टांग योग का निरूपण प्रस्तुत किया है।

9.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

प्रश्न 1 स्वामी चरणदास जी का जीवन परिचय दीजियें ?

उत्तर– स्वामी चरणदास जी का जन्म् राजस्थान के अलवर जिले (मेवाड़ क्षेत्र) के ग्रांम डेहरा में सन 1706 ई0 में हुआ था। बाल्यावस्था में माता के देहान्त और पिता के गृह त्याग के बाद आपको अपने नाना के साथ दिल्ली आना पड़ा। दिल्ली को ही अपनी साधना स्थली इन्होंने जीवन पर्यन्त रखा। जामामस्जिद के पीछे इनका आखाड़ा आज भी आपकी परम्परा का पालन एवं दिल्ली के आस–पास अनेक शिष्य आपकी यौगिक परम्परा का अनुपालन करते आ रहे है।

चरणदास जी ने 17 छोटे बड़े ग्रंथों का प्रणयन किया इनमें चतुर्थ **ग्रंथ अष्टांगयोग** में योग के आठ अंगों का व्यावहारिक साधना में नया स्वरूप आपने प्रस्तुत किया है।

प्रश्न 2 अष्टांगयोग की विषय वस्तु पर संक्षिप्त में प्रकाश डालिये ?

उत्तर– अष्टांग योग ग्रंथ शिष्य की जिज्ञासाओं का समाधान गुरूवचनों द्वारा की जाने वाली संवाद शैली में प्रस्तुत किया गया है। इस ग्रंथ की अनेक अपनी मौलिक विशेषताएँ है इन मौलिक विशेषताओं में संयम की अनिवार्यता इनके व्यावहारिक साधक होने का प्रमाण है। यम के 10 प्रकार नियम के 10 प्रकार इन्होंने बतलाये है। आसन में केवल दो आसनों सिद्धासन एवं पद्यासन को ही योग साधना के आसन इन्होंने बतलाया है। प्राण और प्राणायाम का भी विशद् अध्ययन दिया है। प्रत्याहार के पाँच प्रकार धारणा के पाँच प्रकार ध्यान के चार प्रकार एवं समाधि के तीन प्रकार बतलाऐ है। इस प्रकार अष्टांगयोग में इन्होंने अपनी व्यावहारिक मौलिक विशेषताओं का स्पष्ट निरूपण प्रस्तुत किया है।

प्रश्न 3 चरणदास कृत अष्टांग योग के अनुसार संयम को समझाइये ?

उत्तर– चरणदास जी ने अष्टांग योग के निरूपण में सर्वप्रथम आवश्यकता **संयम** की प्रतिपादित की है। संयम का प्रभाव साधक के दो स्तरों पर पड़ता है।

(1) शारीरिक स्तर पर।

(2) मानसिक स्तर पर।

(1) शारीरिक स्तर पर– उन्होंने संयम हेतु आहार, का नियम बतलाया है। आहार की मात्रा, जल की मात्रा वाणी का संयम, निद्रा, व्यवहार में मित्रता, इन्द्रियों पर नियंत्रण भोगविलास से परहेज आदि बातें शामिल की है।

(2) मानसिक स्तर पर– मानसिक स्तर पर संयम हेतु काम, क्रोध, मद, लोभ और अहंकार आदि से दूर रहने पर ही मानसिक एकाग्रता संभम होती है। छल, कपट, जादू टोना, धातु रसायन, मनोरंजन, संसारिक भोग इत्यादि का नियमन ही मानसिक स्तर पर योग साधना के अनुकूल हमें बना पाती है।

इस प्रकार चरणदास ने योग अभ्यास प्रारंम्भ करने में संयम को सर्वप्रथम स्थान दिया है।

प्रश्न 4 चरणदास जी द्वारा अष्टांग योग में वर्णित यम नियम लिखियें ?

उत्तर– चरणदास जी ने अष्टांग योग के प्रथम एवं द्वितीय अंग के रूप में यम और नियम का विधान बतलाया है। संयम का ठीक से पालन करते हुऐ यम एवं नियम का पालन करना चाहिये। यम की संख्या उन्होंने निम्नलिखित बतलाई है–

(1) अंहिसा (2) सत्य (3) अस्तेय (4) ब्रह्यचर्य (5) क्षमा (6) धीरज (7) दया (8) आर्जव (9) मिताहार (10) शौच।

उपरोक्त यमों के अलावा द्वितीय अंग नियम के अर्न्तगत निम्नलिखित नियमों का विधान किया गया है।

(1) तप (2) सन्तोष (3) आस्तिकता (4) दान (5) ईश्वरपूजन (6) सिद्धांतश्रवण (7) लाज (8) दृढ़मति (9) जाप (10) होम।

उपरोक्त नियमों का पालन करने पर योग में आगे बढ़ा जा जकता है।

प्रश्न 5 चरणदास कृत अष्टांग योग के अनुसार धारणा से आप क्या समझते है ?

उत्तर– चरणदास जी के अनुसार धारणा चित्त को एक विशेष देश में बाँधना है। इस हेतु उन्होंने पाँच प्रकार की धारणाओं को उनके महाभूत, शरीर में स्थान, उनका आकार, उनके देवता, उनका रंग तथा उनके बीजाक्षर के अनुसार विस्तृत वर्णन किया है।

ये धारणायें निम्नलिखित है– (1) शंखिनी धारणा (2) भ्रामनी धारणा (3) दहनी धारणा (4) द्रावणीध ाारणा (5) थम्भनीधारणा।

इस प्रकार पाँच धारणाओं में अभ्यास से साधक का चित्त स्थिर होकर ध्यान की स्थिति बनने लगती है।

प्रश्न 6 चरणदास कृत अष्टांग योग के अनुसार समाधि के स्वरूपों की विवेचना कीजिये ?

उत्तर– चरणदास जी के अनुसार जब समाधि की स्थिति निर्मित होती है तभी योगी वास्तविक आनन्द को प्राप्त करता है। और तब उसे चरम लक्ष्य प्राप्त हो जाने के कारण कोई भी प्रक्रिया या अभ्यास करने की आवश्यकता नहीं रहती। समाधि वह स्थिति है, जिसमें ध्याता, ध्यान और ध्येय मिलकर एकाकर हो जाते है और द्वैतभाव नहीं रहता वही मुक्ति का स्थान है। वहां दुःख, सुख, आशा, तृष्णा, चिन्ता, वासना आदि सभी समाप्त हो जाते है। वहां न पाँच विषय रहते हैं न इन्द्रियां न तीनों गुण, न जाग्रत–स्वप्नादि अवस्थाएँ ही रहती हैं। इसके बाद चौथी स्थिति जिसे तुरीयावस्था कहा जाता है वहां पहुंचकर साधक लीन हो जाता है। साधकों को दृष्टि में रखकर चरणदास जी ने समाधि के तीन प्रकार बतलाये है। ये तीन प्रकार निम्नलिखित हैं–

(1) मुक्तिसमाधि।
(2) योगसमाधि।
(3) ज्ञानसमाधि।

————0————

9.8 उपयोगी सन्दर्भ ग्रंथ

(1) भक्ति सागर – प्रकाशक श्री वेंकटेश्वर प्रेस
मुम्बई

(2) अष्टांग योग – **चरणदास**
अनुवादक श्री ओ. पी. तिवारी
प्रकाशक कैवल्यधाम–एस. एम. वाई. एम.
सामिति
कैवल्यधाम लोनावाला पूना

(3) योग परिचय – **डॉ. पीताम्बर झा**
प्रका. गुप्ता प्रकाशन डी–35
साउथ एकसटैंशन भाग ८
नई दिल्ली – 49

(4) योग का परिचयात्मक स्वरूप – **डॉ. ओमनारायण तिवारी**
प्रकाशक पं. सुन्दरलाल शर्मा (मुक्त)
विश्वविद्यालय छत्तीसगढ़,
बिलासपुर (छ.ग.)

(5) ैमबतमजे वद्भिंजीं टपकलं – **क्तण टपरंलमदकतं चतंजंच**
ैझल थ्वनदकंजपवद
चैपसंकमसचीपं च्मददेलसअंदपं
न्चैण।ण

.....0.....

खण्ड – 10

अष्टांग योग एवं उच्च यौगिक क्रियायें

साधनारत स्वामी चरणदास

खण्ड संरचना

पृष्ठ क्र.

10.0 प्रस्तावना ———————————————— 215

10.1 उद्देश्य ———————————————— 215

10.2 विषय प्रवेश ———————————————— 216–217

19.3 इकाई 32 अष्टांग योग में प्राण, नाड़ियां, प्राणायाम एवं चक्रभेदन – 217–225

10.3.1 अष्टांग योग में प्राण

10.3.2 अष्टांग योग में चक्रभेदन

10.3.3 अष्टांग योग में नाड़ियाँ

10.3.4 अष्टांग योग में प्राणायाम

10.4 इकाई 33 अष्टांग योग में मुद्रा एवं बंध ———————— 226–228

10.4.1 अष्टांग योग में मुद्रा

10.4.2 अष्टांग योग में बंध

10.5 इकाई 34 अष्टांग योग में अष्ट सिद्धियाँ ———————— 229–230

10.5.1 सिद्धियों का स्वरूप

10.5.2 सिद्धियों के प्रकार

10.6 इकाई 35 अष्टांग योग में शुद्धि क्रियायें। ———————— 231–242

10.6.1 शुद्धि क्रियाओं का स्वरूप

10.6.2 शुद्धि क्रियाओं के प्रकार

10.7 सारांश ———————————————— 243

10.8 बोध प्रश्नों के उत्तर ———————————————— 244–246

10.9 उपयोगी सन्दर्भ ग्रंथ ———————————————— 246

खण्ड 10 : अष्टांग योग एवं उच्च यौगिक क्रियायें

खण्ड परिचय : प्रश्न पत्र द्वितीय **हठयोग विज्ञान** के अर्न्तगत खण्ड 10 में स्वामी चरणदास द्वारा लिखित एवं कैवल्यधाम लोनावाला द्वारा प्रकाशित भाष्यानुवाद ग्रंथ **अष्टांग योग** में योग साधना हेतु वर्णित उच्च यौगिक क्रियाओं एवं उनकी विवेचना का परिचय इस खण्ड में आपको प्रदान किया जावेगा। इस खण्ड में चार इकाईयों का अध्ययन आपको करना होगा। **इकाई क्रमांक 32** में आप अष्टांग योग ग्रंथ में वर्णित **प्राण, नाड़ियाँ, प्राणायाम, एवं चक्र भेदन** के सम्बंध में विस्तृत विवेचना प्राप्त करेंगे। **इकाई क्रमांक 33** में आप अष्टांग योग ग्रंथ में वर्णित **मुद्रा** एवं **बंध** के सम्बंध में विस्तृत विवेचना प्राप्त करेंगे। **इकाई क्रमांक 34** में आप अष्टांग योग ग्रंथ में वर्णित **अष्ट सिद्धियों** के सम्बंध में विस्तृत विवेचना प्राप्त करेंगे। **इकाई क्रमांक 35** में आप अष्टांग योग ग्रंथ में वर्णित **शुद्धि क्रियाओं** के सम्बंध में विस्तृत विवेचना प्राप्त करेगें।

इस प्रकार इस खण्ड के अध्ययन करने पर स्वामी चरणदास जी द्वारा रचित ग्रंथ क्रमांक 4 अष्टांग योग एवं ग्रंथ क्रमांक 5 षटकर्म हठयोग वर्णन में निर्देशित योग साधना की उच्च यौगिक क्रियाओं का अध्ययन कर योग साधना के सभी पक्षों को समन्वित स्वरूप को भलीभाँति जान सकने में सक्षम हो सकेगें।

10.0 प्रस्तावना

द्वितीय प्रश्न पत्र खण्ड 10 के अर्न्तगत इकाई क्रमांक 32, 33, 34, एवं 35 का अध्ययन आप करने जा रहे है। इस खण्ड में आप उच्चयौगिक क्रियाओं के अर्न्तगत प्राण, नाड़ियाँ, प्राणायाम, एवं चक्रभेदन, मुद्रा एवं बंध अष्टसिद्धियां, और शुद्धि क्रियाओं का अष्टांग योग ग्रंथ के अनुरूप विस्तार से अध्ययन करेगें।

आपने खण्ड 9 में अध्ययन किया कि स्वामी चरणदास जी ने अष्टांग योग में किस प्रकार संयम से शुरू कर यम नियम आसन प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा ध्यान एवं समाधि का सांगोपांग वर्णन किया है। इन्हीं अष्टांगों के बीच में आवश्यकतानुसार इन्होंने योग के अन्य प्रकारों से भी कुछ साधनाओं की विषय वस्तु जैसे नाड़ी, वायु (प्राण), चक्र, कुण्डलिनी, मुद्रा, बन्ध, अष्टसिद्धियों एवं षटकर्मो को समन्वित कर व्यावहारिक योग साधना को सरल एवं सहज करने का एक दक्ष योगी के अनुरूप प्रयास किया है।

व्यावहारिक योग में साधारण व्यक्ति जब योग साधना प्रारंम्भ करता है। तो उसके सम्मुख अनेक प्राथमिक समस्याओं **योग साधना के आचार, विचार** को लेकर उत्पन्न होती है इनके सम्यक ज्ञान न होने पर योगी साधना से विरत या विफल हो सकता है। इन सभी बातों को ध्यान में रखते हुए स्वामी चरणदास ने अपने पूर्ववर्ती **शास्त्रीय योग** के ऋषियों, मुनियों, आचार्यो आदि के द्वारा प्रणीत योग साधना पद्धति में एक स्वाभाविक कमी को दूर करने का एक अनुपम प्रयास किया है। इस कारण चरणदास जी द्वारा रचित ग्रंथ वर्तमान योग साधकों के अध्ययन हेतु अत्यावश्यक ज्ञान स्त्रोत के रूप में भूमिका अदा करता है। योग साधना की वृहद सैद्धांतिक मरूभूमि में यह **निर्मल जल कूप** के समान सुधी योग साधको को तृप्त करता है।

10.1 उद्देश्य

खण्ड 10 के अर्न्तगत इकाई 32, 33, 34, एवं 35 के अध्ययन का उद्देश्य योगाचार्य चरणदास जी के **अष्टांग योग** एवं **षटकर्म हठयोग वर्णन** को व्यावहारिक स्वरूप का ज्ञान करवाना जिससे आप समझ सकेगें कि–

- प्राणों का क्या स्वरूप है ?
- नाड़ियाँ क्या है ? एवं इनका योग साधना में क्या महत्व है ?
- प्राणायाम के भेद कौन–कौन से है ?

- शरीर स्थित विभिन्न चक्रों से क्या तात्पर्य है ?
- योग साधना में मुद्राओं का क्या महत्व है ?
- योग साधना में बंधों का आसन मुद्राओं एवं प्राणायाम की साधना में क्या उपयोगिता है ?
- योग साधना से उत्पन्न विभिन्न सिद्धियां क्या है ?
- योग साधना हेतु शारीरिक मलों का निष्कासन एवं ब्राह्य अभ्यान्तर शुद्धि में षट्कर्मो का क्या महत्व है?

उपरोक्त उद्देश्यों की पूर्ति हेतु खण्ड 10 में विशेष विवेचन उपरोक्त उद्देश्यों की पूर्ति में सहायक होगा जिससे आपको योग साधना में व्यावहार सिद्ध योगी बन सकने में किसी प्रकार की व्यावहारिक कठिनाई का अनुभव नहीं होगा।

10.2 विषय प्रवेश

प्राण के संबंध में योगी चरणदास जी ने अपनी कृति अष्टांग योग एवं षट्कर्म हठयोग वर्णन में उच्चयौगिक कर्मो का विधान **अन्तः** एवं **ब्राह्य शौच** हेतु किया है। इनमें मानव शरीर जो कि **पंच महाभूतों** से निर्मित हैं इन पंचभूतात्मक शरीर के संचालन शक्ति के रूप में विविध प्राणों के स्वरूप की व्याख्या चरणदास जी ने किया है। प्राण तो एक ही है उनके कार्यानुरूप विविध भेद (प्रकार) कीये गये है। इनमें प्राण एवं उप प्राणों का भी भेद किया गया है। (1) प्राण (2) आपान (3) समान (4) ब्यान एवं (5) उदान मुख्य प्राण है। इनके अलावा पाँच उप प्राण भी है ये है (1) नाग (2) देवदत्त (3) धनंजय (4) कूर्म और (5)कृकंल।

नाड़ियों को चरणदास जी ने शरीर की क्रियाओं के लिये उत्तरदायी होने के रूप में चर्चा की है ये नाड़ियाँ मनुष्य शरीर में बहत्तर हजार आठ सौ चौसठ (72864) है। इनमें सर्वाधिक प्रमुख नाड़ी **(1) सुषुम्ना** है। इसके बायें भाग में (2) **इड़ा** तथा दाहिने भाग में (3) **पिंगला** नाड़ी होती है। ये **नाड़ी त्रय** के नाम से जानी जाती है। उपरोक्त 72,864 में सर्वाधिक प्रमुख 10 नाड़ियां है। इनमें नाड़ीत्रय के अलावा (4) शंखिनी (5) कृकल (6) पूषा (7) जसनी (8) गान्धारी (9) हस्तिनी (10) लम्बिका है।

प्राणों को विस्तार (आयाम) देने की प्रक्रिया **प्राणायाम** कहलाती है उपरोक्त वर्णित दसों प्राणों को विस्तार देने हेतु चरणदास जी ने पूर्ववर्ती योगियों के अनुसार प्राणायाम के **आठ (8)** भेद बतलायें है ये है (1) सूर्यभेदन (2) उज्जायी (3) सीत्कारी (4) शीतली (5) भस्त्रिका (6) भ्रामरी (7) मूर्च्छा एवं (8) केवली।

चक्रभेदन को स्वामी चरणदास जी ने प्राणायाम प्रकरण के तहत ही बड़े व्यावहारिक रूप में समझाने का प्रयास किया है। इस हेतु उन्होंने त्रिग्रंथि द्वारा **कुण्डलिनी** के जागरण का स्वरूप समाझाया है। चेतना जब गुदास्थान से मस्तक तक उठने में शरीर के विभिन्न भागों या स्तरों से क्रमशः उठती है तो उठने वाली संवेदना शरीर के जिन भागों को पार करती है उन्हे चक्रों के रूप में बतलाया गया है। ये चक्र है– **(1) मूलाधार (2) स्वाधिष्ठान (3) मणिपूर (4) अनाहत (5) विशुद्धि (6) आज्ञा एवं (7) सहस्त्रार चक्र।** संवेदना को इच्छानुरूप मूलाधार से सहस्त्रार तक लाने ले जाने का नियंत्रण पा लोना ही **चक्रभेदन** कहलाता है। इसी प्रक्रिया में **अनाहतनाद** भी प्राप्त होता है। इस अनाहतनाद के अनुसंधान (शोध) के द्वारा भी जीव जीवभाव से ब्रह्मभाव को प्राप्त कर सकता है।

मुद्रा से तात्पर्य वह शारीरिक स्थिति जो किसी भाव विशेष को इंगित करे। अर्थात शरीर एवं मन की एकात्म स्थिति को दर्शाने हेतु प्रयुक्त शब्द **मुद्रा** कहलाता है। अर्थात् साधक की शारीरिक एवं मानसिक स्थिति का परिचयात्मक **पद** मुद्रा कहलाता है। चरणदास जी ने पाँच मुद्राओं का वर्णन किया है। ये है **(1) खेचरी (2) भूचरी (3) चाँचरी (4) अगोचरी एवं (5) उन्मनी।** ये मुद्रायें साधना में योग के लक्ष्य की प्राप्ति में सहायक होती है।

बंध योगसाधना में महत्वपूर्ण स्थान रखते है। बंध का अर्थ है प्राण शक्ति को बांधना। इसे बांधने के प्रमुख तीन प्रकार है इन तीनों को मिलाकर एक नया प्रकार बनता है। जिसे चरणदास जी ने सर्वप्रथम बतलाया है। जिससे शेष तीन उसमें ही स्वमेव समाहित हो जाते है। यह महाबंध जो तीन बन्धों के एक साथ लगाने पर पूर्ण होता है ये तीन बंध है– (1) मूलबंध (2) जालंधरबंध एवं (3) उड्डियान बंध।

अष्टसिद्धियाँ इनका तात्पर्य आठ प्रकार की सिद्धियां जो योगांगों के उपरोक्त वर्णित साधनों की साधना के फलस्वरूप प्राप्त होती है। ये सिद्धियां साधक में निम्न आठ प्रकार के प्रभाव उत्पन्न करती है। (1) अणिमा (2) महिमा (3) लधिमा (4) गरिमा (5) प्राप्ति (6) पराकाम्य (7) ईशिता एवं (8) वशीकरण। चरणदास जी के अनुसार योग के नियमित साधक को ये सिद्धियां स्वमेव ही प्राप्त होती है।

शुद्धिक्रियाओं का वर्णन चरणदास जी ने अपने पांचवे ग्रंथ **षटकर्म हठयोग वर्णन** में किया है। जो कि पृथक कृति है इसे अष्टांग योग पूर्व में जानना योग साधना की दृष्टि से उचित है लेकिन अष्टांग योग के निरूपण को जानकर अष्टांग योग की साधना की शुरूआत के प्रथम पद के रूप में भी इसे व्यावहार में लेने में कोई कठिनाई सैद्धांतिक रूप से नहीं दिखाई देती। शिष्य के अनुरोध को कि में अष्टांग योग तो समझ गया अब इस अष्टांग योग की साधना हेतु शारीरिक एवं मानसिक शौच अर्थात बाह्य एवं अभ्यंतर शुचिता के लिये षट्कर्मो का विधान बताइये। तब चरणदास जी ने (1) नेती (2) धौति (3) वस्ति (4) कुंजर (5) न्यौली एवं (6) त्रांटक इन छः कर्मो का विधान सविस्तार समझाया। इस प्रकार खण्ड 10 में आप योग साधना के सैद्धांतिक तथा व्यावहारिक दोनों पक्षों के स्वरूप से सम्यक् प्रकार से परिचित होगें।

10.3 इकाई 32 : अष्टांगयोग में प्राण, नाड़ियाँ, प्राणायाम एवं चक्रभेदन

10.3.1 अष्टांगयोग में प्राण

हमारा शरीर पंचमहाभूतों पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि और आकाश से निर्मित है। इनमें वायु महाभूत का स्थान प्रमुख है। इस महाभूत का मूलस्थान मानवीय शरीर में हद्रय को माना गया है। मानवीय शरीर में वायु महाभूत के मुख्य 84 स्थान माने जाते है। इनमें भी चरणदास जी 10 वायुओं को प्रमुख मानते है। इनके भी मुख्य एवं उप भेद से दो प्रकार कीये गये है। चरणदास जी के अनुसार निम्नलिखित तालिका क्रमांक 17 में प्राणों के नाम स्थान एवं कार्य को तालिका बद्ध किया गया है–

क्र.	नाम	स्थान	कर्म
1.	प्राण	हृदय	श्वास–प्रश्वास
2.	अपान	गुदा	मल विसर्जन
3.	समान	नाभि	पोषण
4.	व्यान	सम्पूर्ण शरीर	चेष्टा
5.	उदान	कष्ट	उन्नयन
		उप प्राण	
6.	नाग	आस्थिचर्म	वमन
7.	देवदत्त	–	तन्द्रा
8.	धनंजय	–	मुटापा
9.	कूर्म	–	निमीनल
10.	कृकल	–	छींकना

उपरोक्त तालिका क्रमांक– 17 बद्ध प्राणों को निम्नांकित चित्र क्रमांक– 57 द्वारा दर्शाया गया है।

चित्र क्र. 57

उपरोक्त शरीरान्तर्गत प्राण शरीर में विभिन्न रूपों में कार्य करता है जैसे गंगाजी एक ही रहती है पर धाटों के विभिन्न नाम रख दिये जाते है इसी प्रकार शरीर के प्रत्येक स्थान पर प्राणवायु ही है पर इसके कार्यानुरूप पृथक–पृथक नाम कर दिये गये है। ये सभी पांच प्राण एवं पांच उप प्राण शरीर में उचित स्थान पर उचित प्रकार से कार्यशील रहते हैं तब तक मनुष्य शरीर पूर्ण रूप से स्वस्थ रहता है। जब इसमें किसी प्रकार की गड़बड़ी पैदा होती है तब शरीर अस्वस्थ हो जाता है। अतः प्राण की उचित कार्यविधि के लिए योग के अभ्यासों को अपनाकर शरीरिक, मानसिक, एवं भावनात्मक स्वास्थ्य को नियंत्रण में रखा जा सकता है।

विशेष नोटः– बाह्ययाकाश का वायु महाभूत (महाप्राण) जब शरीरार्न्तगत अन्तराकाश से सीमित हो जाता है तो उसे प्राण या अन्तः प्राण कहते है। महाप्राण से अन्तः प्राण का सम्बन्ध बनाये रखने की शक्ति या स्पंदन ही श्वास प्रश्वास के रूप में समान्य वायु (जिसे हम स्पर्श द्वारा महसूस करते है) को माध्यम के रूप में प्रयुक्त करके होता है। यह सामान्य वायु प्राण नहीं है। प्राण अव्यक्त है, उसका मात्र अनुमान किया जा सकता है। उसे हम पकड़ नहीं सकतें। किन्तु उसके प्रतिनिधि के रूप में व्यक्त श्वास–प्रश्वास के नियमन या नियंत्रण द्वारा हम उसका नियमन या नियंत्रण कर सकते है।

चरणदास जी कहते है इन **दस प्राणों** में भी केवल प्राण एवं अपान वायु ही दीर्घ या महत्वपूर्ण प्राण है। प्राण प्राणों में परिवर्तित होकर भी प्राण ही रहते है।

10.3.2 अष्टांगयोग में चक्रभेदन

चरणदास जी ने प्राण (वायु) का विवेचन करने के उपरांत प्राणयाम के विवेचन के पूर्व चक्रों का वर्णन किया है। चक्रों को उन्होंने कमल पुष्प की तरह बतलाया है। प्रत्येक चक्र पर सूक्ष्म प्राणिक संवेदना का अलग –अलग स्वरूप होता है क्रमशः अधार चक्र से सहस्त्रार चक्र तक का भेदन लक्ष्य होता है। निम्नलिखित सारणी क्र. 18 में इन चक्रों के नाम, स्थान, रंग, देवता, दल और असुरों को समाहित किया गया है। जो अध्ययन की दृष्टि से सुविधा जनक होगा।

क्र.	**नाम**	**स्थान**	**रंग**	**देवता**	**दल**	**अक्षर**
1.	अधार चक्र	गुदा	लाल	गणेश	चार (4)	व –श–ष–स
2.	स्वाधिष्ठान	लिंगमूल	पीला	ब्रह्म–सावित्री–इन्द्र	छः (6)	बा,–भा,–मा,–या,–र–ल
3.	मणिपूर	नाभि	नीला	विष्णु–लक्ष्मी	दस (10)	डा,–ढ–णा–ता–था–दा–धा ना–पा–फा
4.	अनाहत	ह्रद्रय	श्वेत	शिव–शक्ति (पार्वती)	बारह(12)	का, खा,–गा–घा–ड. –चा–छा–जा–झा–अ–ट–ठ
5.	विशुद्ध	कण्ठ	श्वेत	जीवात्मा	सोलह(16)	अ–आ–इ–ई–उ–ऊ–ऋ– ऋ–लृ–लृ–ए–ऐ–ओ–औ ं –अं–अः
6.	आज्ञा	भूमध्य	श्वेत	ज्योति	दो (2)	ह–क्ष
7.	सहस्त्रार	मस्तक	श्वेत	श्रीगुरू (सदाशिव)	हजार 20 ग 50 त्र 1000 दल	

उपरोक्त सारणी से चक्रों का अध्ययन आपने किया ये सभी चक्र सुषुम्ना नामक नाड़ी के मध्य में होते है। मूलाधार से लेकर सहस्त्रार तक ये सातों चक्र **उल्टे कमल** की तरह (अधोमुख) स्थित होते है। जब मूलाधार चक्र जहां अपान वायु का निवास है उस अपान वायु को नियंत्रण में लेकर उसके प्रवाह को ऊपर की तरफ करने पर अध ोमुख (नीचे की तरफ पंखुड़ियां कीये) कमल खिलने लगते है तथा आपानवायु ऊपर की ओर बढ़ने लगती है। यह वायु

जब स्वाधिष्ठान, और मणिपूर को भेद कर अनाहत चक्र पर जाती है तो वहां **नाद** उत्पन्न होता है। इस नाद को नियंत्रित करना **नादानुसंधान** कहलाता है।

नादानुसंधान : स्वामीचरणदास जी ने नादानुसंधान के दस प्रकार बतलाये है। जब अपान वायु मूलाधार, स्वाधिष्ठान, और मणिपुर का भेदन कर अनाहत चक्र को सीधा (भेदन) करती है तो यहां पर अपान वायु का **कम्पन (नाद)** की विभिन्न दस ध्वनियाँ साधक को सुनाई देती है।

(1) प्रथम नाद – इस नाद में छोटी चिड़िया की चीं या चिन जैसी ध्वनि।
(2) द्वितीय नाद – झींगुर का चिन–चिन ध्वानि।
(3) तृतीय नाद – छोटी घण्टी की ध्वानि।
(4) चतुर्थ नाद – शंख की ध्वानि।
(5) पंचम नाद – बीन बजने की ध्वनि।
(6) छटवा नाद – तबले की ताल की ध्वनि।

(7) सतवाँ नाद – मुरली (बांसुरी) की मधुर ध्वनि।
(8) आठवाँ नाद – पखावज की ध्वनि।
(9) नवमाँ नाद – छोटी शहनाई की गूंज की ध्वानि।
(10) दसवाँ नाद – इस अवस्था में सिंहगर्जना के समान ध्वानि या नाद होना।

सिंह गर्जना का गम्भीर नाद (अनहदनाद) होत होते साधक अपना जीवभाव विलोपित कर ब्रह्मभाव को प्राप्त कर लेता है। इसका आशय भी संसार से पूर्णतः विरक्त सा रहने लगता है। सांसारिक कर्मो के प्रभाव उस पर नहीं पड़ते वह जीवन्मुक्त जैसी अवस्था में आ जाता है। यही नादानुसंधान का फल कहलाता है। जिससे जगत के रहस्य समझ में आने लगते है। इन्द्रियों को वश में किया जा सकता है।अपने पराये की भावना समाप्त हो जाती है। केवल आनन्द शेष रहता है।

नादानुसंधान की प्रक्रिया :– चरणदास जी ने नानानुसंधान की विधि का वर्णन करते हुऐ बतलाया है कि सर्वप्रथम नादानुसंधान हेतु **मूलाधार चक्र** में अपानवायु को तीन बार घुमाया जाता है। इस हेतु सर्वप्रथम गणेशक्रिया (वस्ति क्रिया) द्वारा मलद्वार (गुदाद्वार) का शोधन किया जाता है। इसके उपरांत अपानवायु को बाँधने हेतु **मूलबंध** लगाया जाता है। तथा मूलबंध लगाकर मूलाधार में थोड़ा रूककर अर्थात उसे भेदकर दूसरे चक्र स्वाधिष्ठान चक्र पर आते है। यहां अपानवायु को घुमाते है। तीन चक्र (लपेटे) लगाकर उसे मणिपूर पर ले जाते है यहाँ पर प्राण वायु में अपान को लाकर मिला देते है। अपान के प्राण पर मिलते ही अनहदनाद फूटने लगता है। इसे धीरे–धीरे साध ाकर सिंहनाद तक की अवस्था लाते है। इसके बाद प्राण और अपान को संयुक्त कर ऊपर विशुद्ध चक्र (कंठकूप) पर ले जाना चाहिये वहां पर जालंधर बंध लगाकर इस वायु को नियंत्रित करने हेतु उस पर संयम करते है।

10.3.3 अष्टांगयोग में नाड़ियाँ

स्वामी चरणदास जी ने प्राणायाम के पूर्व नाड़ियों का वर्णन भी कर दिया है। नाड़ी का अर्थ चरणदास जी के अनुसार नस या नर्व्स नहीं है बल्कि संवेदना–प्रवाहों के रूप में उन्होनें नाड़ी शब्द का अर्थ लिया है। नाड़ियों की मानव शरीर में संख्या बहत्तर हजार आठ सौ चौंसठ (72,864) है। तथा इन सभी नाड़ियों का उद्गम स्थल नाभि स्थान से है। यही से ये सभी नाड़ियाँ शरीर में फैली रहती हैं। इन सभी नाड़ियों में दस (10) नाड़ियों को प्रमुखता दी गई है। इनमें भी तीन नाड़ियाँ **इड़ा, पिंगला,** और **सुषुम्ना** प्रमुख है। इनमें भी सर्वाधिक प्रमुख नाड़ी जिसमें **सातों चक्र** विद्यमान होते है सुषुम्ना है।

इड़ा में यमुना का प्रवाह जहाँ ब्रह्म जी का निवास है। सुषुम्ना में विष्णु जी निवास जिसमें सरस्वती का प्रवाह है। तथा पिंगला जहां शिव का स्थान है तथा जिसमें गंगा का प्रवाह है जो शरीर के दाहिने अंग में प्रवाहमान है। ये तीनों नाड़ियां मिलकर आज्ञाचक्र पर त्रिवेणी के रूप में मिलती है।

इन सभी प्रमुख दस नाड़ियों के नाम एवं उनके कार्यास्थान को तालिका क्रमांक –19 द्वारा दर्शाया गया है–

क्र.	**नाम**	**कार्यास्थान**
1.	इड़ा	नाभि से बायीं नासिका
2.	पिंगला	नाभि से दायीं नासिका
3.	सुषुम्ना	नाभि से मध्य
4.	शंखिनी	नाभि से गुदा
5.	कृकंल	नाभि से लिंग
6.	पूषा	नाभि से दायां कान
7.	जसनी (यशस्विनी)	नाभि से बायां कान
8.	गान्धारी	नाभि से बाई आँख
9.	हस्तिनी	नाभि से दाई आँख
10.	लम्बिका	नाभि से जीभ

इड़ा में यमुना का प्रवाह जहाँ ब्रह्म जी का निवास है। सुषुम्ना में विष्णु जी निवास जिसमें सरस्वती का प्रवाह है। तथा पिंगला जहां शिव का स्थान है तथा जिसमें गंगा का प्रवाह है जो शरीर के दाहिने अंग में प्रवाहमान है। ये तीनों नाड़ियाँ मिलकर आज्ञाचक्र पर त्रिवेणी के रूप में मिलती है।

10.3.4 अष्टांग योग में प्राणायाम

अष्टांग योग में शुकदेव जी योगाचार्य चरणदास जी से कहते है कि प्राणायाम करने से **मन शान्त** होता है। अपने स्थान पर स्थिर होता है। सामान्यतः हमारा या तो बायां स्वर चलता है या दाहिना और कभी–कभी हम देखते है कि हमारे दोनों स्वर चलते है। स्वरों में इस भिन्नता के कारण को योग्य गुरू द्वारा जाना जा सकता है। प्राणायाम तीन प्रकार से होता है–

(1) पूरक – श्वास का इड़ा से खींचना पूरक।
(2) कुंभक – श्वास का रोकना।
(3) रेचक – श्वास का छोड़ना।

इन तीनों प्रकार से एक चक्र पूरा करने को एक प्राणायाम कहते है।

प्राणायाम की प्रक्रिया (प्रथम विधि) – चरणदास जी ने प्राणायाम की प्रक्रिया निम्न क्रमानुसार निर्देशित की है–

(1) इड़ा नाड़ी अर्थात बांयी नासिका से श्वास (पवन) को खींचकर पूरक करने के बाद श्वास को अन्दर रोके रखना चाहिये। इसके उपरांत दाहिने स्वर (पिंगला नाड़ी) से श्वास को धीरे–धीरे छोड़ देने को एक प्राणायाम कहते है इस क्रिया से शरीर के अनेक मल (विकार) दूर हो जाते है।

(2) दाहिने नासिका छिद्र को बंद कर बांयी नासिका (इड़ा) से श्वास खीचें कुम्भक द्वारा श्वास रोकें और जालंध
ार बंध लगायें। मन को स्थिर रख कर 16 मात्रा **पूरक** 64 मात्रा **कुम्भक** और 32 मात्रा **रेचक** करे अर्थात
1:4:2 का पालन करते हुऐ श्वास लेना–रोकना–छोड़ना करें।

(3) प्ररम्भ के तीन माह तक उपरोक्त प्रक्रिया आधीमात्रा से करें। अर्थात 8 मात्रा पूरक 32 कुंभक 16 रेचक करें। इसके बाद समय (मात्रायें) बढ़ाना चाहिये और दो पूरक आठ कुंभक और 4 रेचक अर्थात अनुपात 2:8:4 करें। इस प्रकार समय बढ़ाते हुऐ 64 मात्रा तक प्राणायाम करना चाहिये। प्राणों को प्राणायाम द्वारा वश में कर कुंभक का अभ्यास 64 मात्रा से भी अधिक का प्रयास करना चाहियें।

(4) **मात्रा** का तात्पर्य अनुस्वार सहित ओम का 1 बार जाप एक मात्रा कहलाता है। इसे ही बीज मंत्र भी कहते है। प्राणायाम के दौरान **भोजन** आधा पेट करना चाहिये।

(5) एक रात एवं एक दिन मिलाकर 60 घटी होती है। $2^{1/2}$ की 1 घटी तथा तीन घन्टे का 1 याम होता है। 24 घन्टे में 8 घटी होती है। इसका चौथा भाग प्राणायाम हेतु रखे अर्थात 3 धन्टें के भी चार भाग करे
अर्थात 45 मिनट तथा 24 घन्टें में चार बार अर्थात् प्रातः दोपहर, शाम, और अर्धरात्रि में 45 मिनट तक प्रत्येक
बार प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिये।

द्वितीय विधिः– प्रथम विधि से संभव न हो तो इस विधि का प्रयोग किया जा सकता है।

(1) 12 बार ऊँ का उच्चारण मन ही मन में करते हुए वायु को अंदर खींचते पूरक है। 20 बार ऊँ के उच्चारण तक श्वास को रोके रखते है **(कुंभक)**। तथा 12 बार ऊँ के उच्चारण तक **रेचक** करते है। तथा 24 घन्टे में 4 बार इसका अभ्यास करना चाहिये।

(2) उपरोक्त अभ्यास को क्रमशः दुगना एवं तिगुना तक किया जा सकता है।

(3) पिंगला द्वारा पूरक तथा इड़ा द्वारा रेचक करें। दूसरी बार इड़ा द्वारा पूरक तथा पिंगला द्वारा रेचक करें। कभी–कभी उसी से पूरक तथा उसी से रेचक भी करें। तथा पूरक से तीन गुना या अधिक तक कुंभक करें।

तृतीय विधि :– प्राण वायु का प्रवाह नासिका से निकलने के बाद 12 अंगुल की दूरी तक महसूस किया जाता है। इसे धीरे–धीरे घटाते हुये इतना सूक्ष्म करना चाहिये कि इसका स्पर्श भी न जान पड़ें।

(1) अपानवायु को ऊपर खींचकर प्राण के स्थान पर लाने का प्रयास करे। इस दौरान मुंह बंद रखे श्वास बाहर
न जाने दें।

(2) पूरक के तीन कर्म (दायें बाये व मध्य) तथा कुंभक के तीन कर्म अन्तः बाह्य एवं मध्य तथा रेचक के दो कर्म
दायें या बायें।

(3) जब पूरक व रेचक के सभी कार्य क्षीण हो जाते है। तब **केवल कुंभक** हो जाता है। यह केवल कुंभक तब
पूर्ण होता है जब प्राणवायु केवल शरीर में ही आबद्ध होकर गतिमान होती है।

(4) प्रत्येक मनुष्य 1 दिन में 21 लाख 60 श्वास लेता है। जब इन श्वासों का व्यवहार केवल देह (शरीर के भीतर) ही सीमित हो जाता है तथा प्राण अपान में समा जाता है। तब ऐसा होने के बाद सतत् अभ्यास से 100 वें दिन के बाद केवल कुंभक सिद्ध हो जाता है। इसके सिद्ध होने के बाद ही समझना चाहिये की प्राणायाम की प्रक्रिया

पूर्ण हुई।

(5) अपान वायु को प्राणवायु में मिलाने के लिये मूलबंध व खेचरी मुद्रा का अभ्यास बहुत महत्वपूर्ण होता है।

प्राणायाम के प्रकार

चरणदास जी ने आठ प्रकार के कुंभकों (प्राणायामों) का वर्णन उनके लक्षण, गुण व स्वाभाव सहित बतलाये है ये प्राणायाम के आठ भेद निम्नलिखित है–

(1) सूर्यभेदन – जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है इसमें सूर्य अर्थात् पिंगला या दायीं नासिका से अधिक से अधिक श्वास लेकर पूरक करें। इतनी अधिक वायु अन्दर भरें कि नख तक कहीं भी स्थान खाली न रहे। फिर दायीं नसिका बंद कर तुरंत मूल और जालन्धरबंध लगा दें और फिर उड्डियानबंध लगावें। यथाशक्ति कुम्भक करने के बाद प्रथम उड्डियान फिर जालन्धर और फिर मूलबंध हटा दें और बायीं नसिका से लेने के समान मात्रा से रेचक करें। अभ्यास बढ़ने पर लेने से दुगने समय में रेचक किया जाता है। इस प्रकार जितनी आवृत्ति सूर्यभेदन की हो, सभी में दायें से ही पूरक फिर कुम्भक और बायीं ओर से रेचक की जाती है।

चरणदास के अनुसार इस कुम्भक से वायु एवं कृमि सम्बंधी सभी शिकायतें दूर हो जाती हैं। साथ ही शरीरान्तर्गत प्राण में हलचल पैदा होकर सुषुम्ना नाड़ी के मुख से प्राण की सूक्ष्म संवेदना के प्रविष्ट होने की सम्भावना बनती है।

(2) उज्यायी– सुखासन में बैठकर बिना हाथ का प्रयोग किए दोनों नासापुटों से थोड़ी आवाज के साथ श्वास लें। अधिक से अधिक वायु– जब पेट से कण्ठ तक–भर जाए तब बिना हाथ का प्रयोग किए ही तीनों बन्धों के साथ यथाशक्ति कुम्भक करें। अन्त में बंध हटाकर दायें हाथ से दायीं नासिका बन्द कर बायें से थोड़ी आवाज के साथ ही रेचक करना चाहिए। आवाज उत्पन्न करने के लिए पूरक–रेचक के समय कण्ठ की श्वासनलियों को सप्रयास संकुचित करनी पड़ती है, जिससे वायु का घर्षण होन से अपने आप कण्ठ से एक विशिष्ट प्रकार की ध्वनि उत्पन्न होती है।

उज्यायी–कुम्भक से कफ–सम्बंधी सभी शिकायतों में लाभ होता है। विशेष कर छाती से कण्ठ तक के कफ–जन्य रोगों में अधिक लाभ होता है। वायु विकार में भी यह लाभदायक है। इसमें एक विशेष बात यह है कि चलते–फिरते भी इस कुम्भक का अभ्यास किया जा सकता है।

(3) सीत्कार– सुखासन में बैठकर, दाँत पर दाँत सटाकर (मुंह खुले हुए) उसके पीछे जीभ को लगाकर, धीरे–धीरे मुँह से ही पूरक करें। बाद में त्रिबंधों के साथ कुम्भक करें, फिर बंध हटाकर नासिका से रेचक करें। इसमें पूरक करते समय 'सीत् सीत्' की आवाज निकलती है, इसी कारण इसका नाम सीत्कार–कुम्भक पड़ा है।

चरणदास के अनुसार इस कुम्भक के अभ्यास से शारीरिक तेज में वृद्धि सतत् होती रहती है, सौन्दर्यवृद्धि होती है, भूख–प्यास–नींद आदि नहीं सताते तथा शरीर सतत् स्फूर्तिवान् बना रहता है।

(4) शीतली– सुखासन में बैठने के बाद अपनी जीभ को दोनों ओर से मोड़कर 'परनाले' की तरह बनाकर फिर उसे मोड़ते ही जीभ के द्वारा मुख से ही पूरा करना चाहिए। पर्याप्त वायु पूरित करने के बाद त्रिबन्धों के साथ शरीर ढीला रखते हुए कुम्भक करना चाहिए। बद में दोनों नासापुटों से रेचक करना चाहिए। लगातार एक मास तक इस प्रकार अभ्यास करने से इसका फल दिखाई देने लगता है।

इससे गर्मी, उदरशूल, वायुगोला, ज्वर आदि की शिकायते दूर होती हैं, शरीर में नवीनता आती है, भूख प्यास आदि की कमी होती है, काले बाल सफेद होने लगती है तथा मन सतत् प्रसन्न रहता है।

(5) भस्त्रिका– 'भस्त्रा' का अर्थ लुहार की भाथी होती है। इस कुम्भक की प्रक्रिया लुहार की भाथी जैसी होती हैं, इसलिए इसे भस्त्रिका कुम्भक कहते हैं।

पद्यासन लगाकर, दोनों हाथों से दोनों घुटनों को दबाकर रखना चाहिए। इससे पूरा शरीर (कमर से ऊपर) अपने आप सीधा बना रहता है। इसके बाद मुख बन्द कर दोनों नासापुटों से पूरक–रेचक झटके के साथ जल्दी–जल्दी करें। श्वास प्रश्वास छोड़ते समय हर झटके से नाभि पर पर्याप्त दबाव पड़ता है। इस प्रकार बार–बार तब तक करते रहना चाहिए जब तक कि थक न जाएँ। (इसकी श्वास–प्रश्वास की मात्रा एक सेकेण्ड में दो अर्थात् एक मिनट में

120 होनी चाहिए)। इसके बाद दायें हाथ से बायें नासापुट को बंद कर दायें से अधिक से अधिक वायु पूरक के रूप में अन्दर भरें। फिर त्रिबन्धों के साथ यथाशक्ति कुम्भक करने के बाद दायें बंध को हटाकर बायें नासापुट से धीरे–ध ीरे रेचक करें। यह एक भस्त्रिका कुम्भक कहा जाता है। पुनः दुबारा करने के लिए पहले अधिक से अधिक पूरक–रेचक के झटके, फिर दायें नासा से पूरक, फिर यथाशक्ति कुम्भक और फिर बायीं नासा से रेचक करें। इस प्रकार कम से कम तीन भस्त्रिका–कुम्भक का अभ्यास प्रति बैठक में अवश्य करना चाहिए।

इस कुम्भक के नियमित अभ्यास से कफ–पित्त और वायु सम्बंधी सभी दोष दूर हो जाते हैं, जठराग्नि बढ़ती है, जिससे पाचनक्रिया सुव्यवस्थित होती है। एवं शरीर की तीनों ग्रन्थियाँ खुल जाती हैं।

(6) भ्रामरी– इस कुम्भक के अभ्यास में कुछ–कुछ भ्रमर गुंजन जैसी आवाज होती है, अतः इसे भ्रामरी कुम्भक कहा जाता है। इसमें मुख बंद कर दोनों नाकों से जोर लगाकर श्वास अन्दर खींचते हुए पूरक किया जाता है रेचक से भंवर की आवाज जैसी आवाज उत्पन्न होती है। पूरक के बाद तीनों बंधों के साथ कुम्भक और फिर बन्ध हटाकर भँवरी जैसी आवाज के साथ रेचक की जाती है।

योगग्रन्थों में यद्यपि उक्त प्रकार का ही वर्णन मिलता है, किन्तु अनुभव के आधार पर यह कहना उचित प्रतीत होता है कि जोर से पूरक करते समय भँवरी जैसी आवाज तथा रेचक करते समय भँवर जैसी आवाज उत्पन्न होती है। इस सौम्य ध्वनि के कारण मन इस ध्वनि के साथ बँध–सा जाता है, जिससे मन की चंचलता समाप्त हो एकाग्रता बढ़ने लगती है।

(7) मूर्च्छा– इस कुम्भक के अभ्यास से वायु मूर्च्छित होती है। परिणामतः मन भी मूर्च्छित होता है, इसी कारण इसे मूर्च्छा कुम्भक कहा जाता है। इसके अभ्यास में कुछ कृत्रिम प्रक्रिया होती है। प्रथम दोनों नासापुटों से जोर से साँस खींचते हुए पूरक किया जाता है। फिर त्रिबन्ध के साथ कुम्भक तथा बाद में जालन्धरबन्ध लगाये हुए ही रेचक किया जाता है। इससे पानी बरसने जैसी आवाज कण्ठ से उत्पन्न होती है तथा वायु मूर्च्छित होती है जिससे मन मूर्च्छित होकर अन्ततः पूर्ण शान्त हो जाता है।

(8) केवल– उक्त सातों कुम्भक का नियमित व पर्याप्त अभ्यास करने के बाद फलरूप में योगी को जो प्राप्त होता है, वह है– **केवलकुम्भक**। इस कुम्भक की विशेषता यह है कि इसकी कोई परिभाषा नहीं हो सकती। यह कुम्भक अपने आप लग जाता है। और अधिक देर तक लगा रहता है। इसमें कब पूरक हुआ, कब रेचक हुआ यह पता ही नहीं लगता। अपने–आप कभी भी कुम्भक लग जाता है, परिणामतः एक अपूर्व आनन्द की स्थिति में योगी बैठा रहता है। उसका श्वास–प्रश्वास इतना अधिक लम्बा और मन्द हो जाता है कि यह भी पता नहीं रहता कि वह योगी कभी श्वास–प्रश्वास लेता–छोड़ता भी है। इसी कारण चरणदास ने इसको कुम्भकों का राजा कहा है। इसमें सफलता मिल जाने पर योगी को कुछ भी प्राप्तव्य नहीं रह जाता।

हठप्रदीपिका में अन्तिम प्रकार **'प्लाविनी'** बताया गया है। और उसके बाद अलग से **केवल** कुम्भक का वर्णन किया गया है। यह इस बात का द्योतक है कि आठों कुम्भक के अभ्यास के बाद जो परिणाम रूप में प्राप्त होता है, वह **केवल** कुम्भक है। वास्तव में यही प्राणायाम का अन्तिम फल है, जो पंतजलि को भी अभिप्रेत है। चरणदास जैसे व्यावहारिक, अनुभवी और सिद्धयोगी ने भी आठवें स्थान पर केवल कुम्भक को रखकर यही सिद्ध किया है कि यह कुम्भक का प्रकार नहीं अपितु उसका परिणाम है।

अन्य हठयोगियों के समान ही चरणदास ने भी कुम्भक का अभ्यास प्रारम्भ करने से पूर्व नाड़ीशुद्धि के लिए प्रथम अनुलोम–विलोम प्राणायाम की चर्चा अप्रत्यक्ष रूप से की है, जिसमें वे बाई नासिका से लेकर, रोक कर, फिर दाई नासिका से छोड़ना तथा पुनः दाई से लेकर, रोक कर, बाई से छोड़ना बतलाते है। साथ ही रेचक के समय उड्डियान करने का निर्देश करते है।

————0————

बोध प्रश्न :

टिप्पणी क : अपने उत्तर नीचे दिये गये स्थान में लिखें।

ख : इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

प्रश्न 1 स्वामी चरणदास जी द्वारा वर्णित प्राणों की संख्या लिखिये ?

प्रश्न 2 स्वामी चरणदास जी के अनुसार द्वारा प्राणायामों के भेद बतलाइयें ?

10.4 इकाई 33 अष्टांग योग में मुद्रा एवं बंध

10.4.1 अष्टांग योग में मुद्रा

स्वामी चरणदास जी ने पाँच प्रकार की मुद्राओं का वर्णन किया है। ये है (1) खेचरी (2) भूचरी (3) चाँचरी (4) अगोचरी तथा (5) उन्मनी। इड़ा नाड़ी (चन्द्रनाड़ी) या **ठं** तथा पिंगला नाड़ी (सूर्यनाड़ी) या **हं** के मिलन द्वारा साधक एक स्थिति विशेष में पहुंचता जिसे **मुद्रा** कहते है। इड़ा पिंगला के मिलने पर जो वायु (प्राण) इन नाड़ियों के द्वारा गतिमान था वह सुषुम्ना नाड़ी में प्रवेश कर जाता है। सुषुम्ना में प्राण का प्रवाह सूक्ष्म संस्पर्श रूप वायु से जब सुषुम्ना में प्रविष्ट होता है और धीरे–धीरे ऊपर की ओर चींटी के समान सरकने लगता है तब उस अलौकिक अल्हादायक संवेदनात्मक अनुभव को बड़ी ही सर्तकता पूर्वक पूर्ण एकाग्रता के साथ अनुभव करना या देखना ही **मुद्रा** की स्थिति है। इस प्रकार मुंद आनंद रति लाति इति मुद्रा इस व्युत्पति के अनुसार आनंद की प्राप्ति जिससे हो, उसे मुद्रा कहते हैं। सामान्यतः व्यवहार में मुद्रा शब्द का तात्पर्य आकृति या आकार विशेष के अर्थ में लिया जाता है। साधारण रूप से मुद्रा जहां बाह्य आकृति का घोतक है वही हठयोग में यह आन्तरिक भाव की आकृति के रूप में प्रयुक्त किया जाता है।

चरणदास जी द्वारा वर्णित मुद्राओं को उनके नाम, स्थान और कार्य के अनुसार निम्नलिखित तलिका क्र. 20 में वर्णित किया गया है।

क्र.	नाम	स्थान	कार्य
1	खेचरी मुद्रा	मुख	कुम्भक द्वारा अमृत का पान
2	भूचरी मुद्रा	नासिका	प्राण अपान की एकता
3	चाँचरी मुद्रा	नेत्र	ज्योति दर्शन
4	अगोचरी मुद्रा	कर्ण	नाद की एकता
5	उन्मनी मुद्रा	मस्तिष्क	परमात्मा से मिलन या ऐक्य

तालिका क्र. – 20

(1) खेचरी मुद्राः– खेचरी मुद्रा के अभ्यास हेतु सर्वप्रथम गुनगुने जल से कुल्ला कर मुख को साफ करें। फिर जीभ को एक हाथ से पकड़कर दूसरे हाथ से चौबस्त (हर्रे, बहेड़ा, आँवला, फिटकरी) के चूर्ण से जीभ पर मलकर उसे बार–बार खींचना चाहिए। अनन्तर तेज अस्त्र से जीभ की शिरा को बाल के बराबर काटें। इस प्रकार प्रतिदिन करते रहने से जीभ की लम्बाई बढ़ती है। यह हो जाने पर एक हाथ के दो अंगुली से जीभ के ऊपर के दोनों कागों को उठाकर जीभ को उसमें प्रविष्ट कराकर धीरे–धीरे सरकाने का अभ्यास करें। ये सभी अभ्यास जानकार गुरू के निर्देशन में ही करें। छः माह तक इस प्रकार करने से जीभ उस ऊपर के छिद्र में प्रविष्ट होकर वहीं टिके रहने की अभ्यस्त हो जाती है। यदि यह अभ्यास बन जाए तो इससे चार काम बनते है। प्रथम– जीभ के वहा रहने से प्राणायाम अपने आप हो जाता है। दूसरा–प्राणायाम होने से चित अपने आप अन्तराकाश में विचरण करने लगता है (एकाग्र हो जाता है) अतः उड्डियान भी हो जाता है। तीसरा– ज्योतिदर्शन की सम्भावना भी बनने लगती है। चौथा– ब्रह्मरन्ध्र स्त्रावित सार भी जिव्हाग्र पर आने के कारण अमृत का पान होने लगता है।

(2) भूचरी मुद्राः– कुम्भक के अम्यास के द्वारा अपानवायु उठाकर हृदयस्थान में लाकर प्राण के साथ मिलाने का अभ्यास करने से प्राणजय होता है, चित्त स्थिर होता है तथा सुषुम्नामार्ग से प्राणसंस्पर्श से उपर उठने की सम्भावना बनती है। ये सब अभ्यास सिद्धासन में तीनों बन्धों के साथ कुम्भक का अभ्यास करने से ही सम्भव हो पाता है।

(3) चाँचरी मुद्राः– सर्वप्रथम दृष्टि को नाक से चार अंगुल आगे स्थिर करने का अभ्यास करना चाहिये। इसके बाद नाक पर दृष्टि को स्थिर करे, फिर भ्रूमध्य में दृष्टि स्थिर करने का अभ्यास करें। इससे मन एवं प्राण स्थिर हो कर ज्योति का दर्शन होता है।

(4) अगोचरी मुद्राः– शरीरान्तर्गत नाद में इन्द्रियों के साथ मन को पूर्ण एकाग्रता के साथ लगाकर श्रवणेन्द्रिय से सुनने का अभ्यास करना चाहिए। इससे ज्ञान एवं स्मृति की एकता होती है तथा चित्त एवं इन्द्रियाँ स्थिर होती है।

(4) उन्मनी मुद्राः– दशम द्वार (सहस्त्रार) में पूर्ण एकाग्रता के साथ मन को स्थिर रखने का अभ्यास इसमें होता है, जिससे आत्मा परमात्मा की एकता होकर योग का लक्ष्य प्राप्त हो जाता है।

10.4.2 अष्टांग योग में बन्ध

स्वामी चरणदास जी ने बन्ध प्रकरण का विवेचन करते हुए सर्वप्रथम महाबंध की प्रक्रिया बतलाई । इनके अनुसार बंध निम्नलिखित है–

1. मूलबन्ध।
2. जलन्धर बन्ध।
3. उड्डियानबन्ध।

किन्तु स्वामी चरणदास जी की अपनी विशेषता उन्होने सर्वप्रथम महाबंध का वर्णन किया है इसके उपरांत उपरोक्त त्रिबन्धों का विवेचन। गोमुखासन में भ्रूमध्यद्वष्टि में इस बन्ध को निम्नलिखित प्रकार से लगाया जाता है।

किन्तु स्वामी चरणदास जी की अपनी विशेषता उन्होंने सर्वप्रथम महाबध का वर्णन किया है इसके उपरांत उपरोक्त त्रिबन्धों की विवेचना। गोमुखासन में भूमध्यदृष्टि में इस बन्ध को निम्नलिखित प्रकार से लगाया जाता है। **महाबन्धः**– सर्वप्रथम बाँया पाँव उठाकर उसकी एड़ी से सीवनी को दृढ़ता से दबाकर गुदामार्ग को बन्द (मूलबन्ध) करें। फिर दाँया पाँव बायें जाँघ पर रखकर गोमुखासन करें और तब ठोड़ी को छाती पर दृढ़ता से लगाकर रक्खें। इसे महाबन्ध कहा जाता है। इसे प्रति तीन घण्टे पर करें। अभ्यासकाल में स्त्री और अग्नि का सेवन न करें इसके नियमित अभ्यास से जठराग्नि अधिक बढ़ती है, जिससे पाचनशक्ति उत्तम बनी रहती है। जरा–मृत्यु आदि निकट नहीं आ पाते और साधक योगी बन जाता है।

(1) मूलबन्ध– गुदाद्धार को सर्वथा बन्द कर देने को मूलबन्ध कहा जाता है। प्रथम बायें पैर की एड़ी से सीवनी को दबाकर, फिर दायें पैर बायें जाँघ पर रखकर सिद्धासन में बैठें। इसके बाद नीचे की वायु को उपर की ओर (गुदा को संकुचित करते हुए) खींचने का अभ्यास करें। प्रारम्भ में यदि पद्यासन न कर सकें तो कपड़े की एक छोटी सी गेंद बनाकर, गुदाद्धार पर रखकर, उसे कस कर बन्द कर दें। इससे अपानवायु वश में होती है। अभ्यास बढ़ने पर गेंद की आवश्यकता नहीं होती। सिद्धासन में एड़ी के द्वारा ही यह काम लिया जाता है। इस मूलबन्ध का अभ्यास जानकार व्यक्ति के निर्देशन में ही करना चाहिए।

(2) जालन्धरबन्ध– जालन्धर का अर्थ होता है कण्ठ। अतः कहीं–कहीं इसे कण्ठबन्ध भी कहा जात है। इसमें गर्दन को झुकाकर ठोड़ी को छाती पर कसकर दबाकर लगाते है। उपर की ओर जानेवाली वायु इससे रूक जाती है। इस प्रकार उपर की वायु नीचे की ओर तथा नीचे की वायु उपर की और (मूलबन्ध के द्वारा लाने से) आने से **प्राण–अपान** की एकता होती है। दोनों वायु यदि इस प्रक्रिया से मिल जाय तो सुषुम्ना में प्रवेश की सम्भावना बढ़ जाती है।

(3) उड्डियान – मूलबंध और जालन्धरबंध का एक साथ अभ्यास बन जाने पर उसी समय में अपनी लम्बी जिव्हा को उलटकर कपालकुहर में प्रविष्ट कर वहां स्थिर रखें, तो उड्डियानबंध भी लग जाता है। इससे कान नाक–आँख अदि प्राण के आवागमन के सातों रास्ते बन्द हो जाते हैं। इस प्रकार सुषुम्ना में प्रविष्ट प्राण अन्तराकाश में ही उड़ान भरने लगता है। इसी प्राण के उड़ान भरने के कारण इसका नाम उड्डियानबंध पड़ा है। इस बंध की महत्ता सबसे अधिक प्रतिपादित की गयी है, क्योंकि इस एक ही बंध से सात द्वार बंद हो जाते हैं।

बोध प्रश्न :

टिप्पणी क : अपने उत्तर नीचे दिये गये स्थान में लिखें।

ख : इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

प्रश्न 3 स्वामी चरणदास जी द्वारा वर्णित मुद्राओं को लिखिये ?

प्रश्न 4 स्वामी चरणदास के अनुसार महाबंध की प्रक्रिया एवं महत्व बतलाइयें ?

10.5 इकाई 34 अष्टांग योग में अष्ट सिद्धियाँ

10.5.1 सिद्धियों का स्वरूप

स्वामी चरणदास जी ने बंधों के बाद योग साधना के फलस्वरूप जो प्राप्त होता है। उसे सिद्धि कहा है। सिद्धि का शब्दिक अर्थ भी सफलता है। सामान्यतया योग के क्षेत्र में या अन्य सम्प्रदायों में सिद्धि का अर्थ एक ऐसी चमत्कारिक शक्ति से होता है जो रहस्यात्मक होती है साधारण जन इस सिद्धि से ऐसी आलौकिक शक्ति या चमत्कारिक प्रदर्शन की आशा भी करते है। किन्तु यह प्रदर्शन योगसाधना में बाधक ही होता है। इससे कोई लाभ नही होता बल्कि साधना में कठिनाई ही उत्पन्न होती है। योग साधना की सतत् प्रक्रियाओं से सहज ही कुछ विशेष शक्तियां या क्षमताएँ साधक में उत्पन्न हो जाती है यह साधना के स्वाभाविक परिणामों कारण हैं न कि चमत्कार जैसा लोग समझाते या आश करते है। कुछ तामसिक प्रकृति के साधक इन परिणामों का प्रदर्शन कर सामान्य जनों को भ्रम में डाल उन्हें ठगते या अपनी श्रेष्ठता लादते है। अतः इनसे चमत्कृत नहीं होना चाहियें। योग साधक की साधना के परिणाम स्वरूप साधक के मानसिक धरातल पर काफी अच्छे, उत्कृष्ट एवं अदभुत अनुभव उत्पन्न होते हैं। जिनके विभिन्न स्वरूप होते है। इन्हें चरणदास जी ने आठ प्रकार से विभेदित किया है।

10.5.2 सिद्धियों के प्रकार

चरणदास जी ने सिद्धियों को उनके स्वरूपों के आधार में पर आठ प्रकार बतलायें है। ये आठ प्रकार **अष्ट सिद्धियों** के नाम से जाने जाते है। ये है– (1) अणिमा (2) महिमा (3) लघिमा (4) गरिमा (5) प्राप्ति (6) पराकम्य (7) ईशिता (8) वशीकरण।

(1) आणिमा – योगाभ्यास से यह सिद्धि प्राप्त होने पर योगसाधक को अपने मन में अनुभव होता है। कि वह अत्यन्त छोटा अणु के समान बन गया है। ऐसे ही अनुभव बार–बार मन में हों, तो उसे अणिमा सिद्धि प्राप्त योग साधक कहा जाता है।

(2) महिमा– इस सिद्धि में साधक को अनुभव होता है कि उसका व्यक्तित्व इतना विस्तृत हो गया है कि वह हर जगह व्याप्त हो गया है।

(3) लघिमा– इसमें ऐसा लगता है कि वह फूल के समान अत्यन्त हल्का बन गया है।

(4) गरिमा– इस सिद्ध के प्राप्त होने पर योगसाधक को अनुभव होता है कि उसका वजन बहुत अधिक बढ़ गया है।

(5) प्राप्ति– इसमें मन में अनुभव होने लगता है कि मैं जो चाहूँ वह प्राप्त कर सकता हूँ। इससे प्राप्त करने की चाह ही समाप्त हो जाती है।

(6) पराकाम्य– इस सिद्धि में यह अनुभव होता है कि वह अत्यन्त शक्तिशाली बन गया है। अतः अजेय हो गया है।

(7) ईशिता– यह सिद्धि प्राप्त होने पर मन में ऐसा अनुभव होता है कि वह जिसे चाहे अपने आदेश के अनुसार चला सकता है।

(8) वशीकरण– योग के अभ्यास से प्राप्त होने पर इस अन्तिम सिद्धि के प्राप्त होने पर योगासाधक के मन में अनुभव होने लगता है। कि यह पूरा संसार ही मेरे अधीन है।

चरणदास के अनुसार योग के नियमित अभ्यास से ये आठों सिद्धियाँ अपने आप मिलती ही है। किन्तु जो योगसाधक योग के वास्तविक लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये प्रयत्नशील रहते हैं, वे कभी भी इन सिद्धियों से प्राप्त अद्भुत मानसिक अनुभवों में नहीं उलझते। किन्तु जो प्रांरभिक साधक होते हैं वे इन्हीं सिद्धियों के क्षणिक मानसिक

अनुभव में मग्न रहकर अपनी साधना से प्राप्त प्रगति को गंवा देते है। परिणामतः वे योग के लक्ष्य को प्राप्त कर पाने की कल्पना भी नहीं कर सकते।

बोध प्रश्न :

टिप्पणी क : अपने उत्तर नीचे दिये गये स्थान में लिखें।

ख : इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

प्रश्न 5 अष्ट सिद्धियों के क्या आशय है ?

प्रश्न 6 अष्ट सिद्धियों के प्रकार बतलाइयें ?

10.6 इकाई 35 अष्टांग योग में शुद्धि क्रियायें

10.6.1 शुद्धि क्रियाओं का स्वरूप

स्वामीचरण दास जी नें अलग से एक ग्रंथ जिसे अष्टांग योग में सम्मिलित रूप से लिया गया है जिसका नाम षट्कर्म हठयोग वर्णन है में विस्तार से छः शोधन कर्मो का विधान निर्देशित किया है। जिनके अभ्यास से सम्पूर्ण शरीर शुद्ध हो जाता है। किसी भी प्रकार की गन्दगी शरीर में स्थान नहीं बना पाती। इस कारण शरीर निरोगी बना रहता है। निरोगी शरीर से बुद्धि में प्रखरता या उज्जवलता आती है। शरीर सदैव आलस्य रहित और स्फूर्तिवान् बना रहता है। योगाभ्यास के पूर्व शुद्धि क्रियाओं का विधान बतलाया गया है। जिससे योगाभ्यास का हानिरहित पूर्ण लाभ प्राप्त हो सकें। ये शुद्धि क्रियाये षट्कर्म भी कहलाती है। यें निम्नलिखित है–

(1) नेती।
(2) धौती।
(3) बस्ती।
(4) गजकर्म (कुंजर)।
(5) न्यौली।
(6) त्राटक।

स्वामी चरणदास जी नें षट्कर्मो के अलावा 4 उप क्रियाओं की भी विवेचना की है ये उप क्रियायें निम्नलिखित है–

(1) कपालभाति।
(2) धौंकनी।
(3) बाधी।
(4) शंखपक्षालन।

इस प्रकार चरणदासजी ने 10 प्रकार की शुद्धि क्रियाओं का स्वरूप बतलाया है।

10.6.2 शुद्धि क्रियाओं के प्रकार

(1) नेति क्रिया– महीन सूत की डोरी बनायें, जिसकी लम्बाई डेढ़ वित्ता अर्थात् बारह इन्च हो। इसको गरम पानी में भिगोकर, एक सिरे पर थोड़ा–सा मोम लगाकर प्रातः काल नित्यक्रिया के बाद एक खुले स्थान में बैठ कर या खड़े होकर डोरी का मोम वाला सिरा नाक के एक छेद में धीरे–धीरे घुसाकर, फिर मुख के अन्दर दो अंगुली को डालकर उस डोरी के सिरे को पकड़कर नीचे ऊपर दो–बार खींचना चाहिए और फिर मुंह से निकाल लेना चाहिए। इसी प्रकार दूसरे नाक के छेद से भी करना चाहिए। इसी प्रकार प्रतिदिन दोनों नासिकाओं से यह नेति क्रिया करनी चाहिये।

आजकल सूत की डोरी के स्थान पर अधिकांश लोग रबर की मुलायम **कैथेडर** प्रयोग में लाते हैं। यह काफी मुलायम और चिकना होने से करने में आसानी होती है। अतः अपेक्षाकृत उत्तम है। इसे नाक में डालने से पहले गरम पानी में उबाल लिया जाता है, जिससे किसी प्रकार के जीवाणु की आशंका न रहे।

नेती क्रिया के अभ्यास से नासिका मार्ग की सफाई तो होती ही है। साथ ही इसके नियमित अभ्यास से कान, नाक, दाँत आदि के रोग नहीं हो पाते। और आँखों की दृष्टि तेज होती है।

(2) धौति क्रिया– महीन कपड़े की चार अंगुल चौड़ा और सोलह हाथ लम्बी पट्टी तैयार कर, उसे गरम पानी में उबाल कर फिर धीरे–धीरे निगलना चाहिए। निगलते हुऐ जब पन्द्रह हाथ कपड़ा कण्ठमार्ग से पेट में चला जाय,

और मात्र एक हाथ बाहर रहे, तब पेट को थोड़ा चलाकर, पुनः धीरे–धीरे उसे पेट से निकाल लेना चाहिए। इस प्रकार प्रतिदिन अभ्यास करने से अठारह प्रकार के चर्म रोगों में से कोई भी चर्म रोग कभी नहीं होता। पित्त और कफ सम्बंधी सभी रोग दूर हो जाते हैं तथा सम्पूर्ण शरीर शुद्ध हो जाता है।

(3) वस्तीक्रिया– चरणदासजी के अनुसार बस्ती के लिए पहले गणेश क्रिया का अभ्यास करना आवश्यक है। गणेशक्रिया में अपनी मध्यमा अंगुली में तेल चुपड़कर उसे गुदा–मार्ग में डालकर बार–बार घुमाते हैं। इससे गुदा–मार्ग की गन्दगी दूर हो जाती है और गुदा–संकोच–प्रसार का भी अभ्यास हो जाता है। जब यह अभ्यास हो जाय, तब किसी तालाब में जाकर कमर तक पानी में खड़े होकर, घुटने को थोड़ा आगे की ओर मोड़कर दोनों हाथों को घुटनों पर दृढ़ता से रखकर, फिर गुदामार्ग से पानी ऊपर की ओर खींचे। पेट में जब पानी भर जाय तब पेट को थोड़ा इधर–उधर घुमाकर, पुनः गुदामार्ग से पूरा पानी निकाल दें। इसी को बस्ति क्रिया कहते है। यह किसी जानकार व्यक्ति के निर्देशन में ही करनी चाहिए। इसके अभ्यास से शरीर शुद्धि तो होती ही है। विशेष लाभ यह है कि लिंग–गुदा आदि के गर्मी सम्बंधी रोग सर्वथा समाप्त हो जाते हैं।

(4) गजकर्म (कुंजर) क्रिया– पानी पीते–पीते पूरा पेट भर जाने पर युक्तिपूर्वक उस पानी को पुनः सुख से वमन कर निकाल देना चाहिए। इससे भी शरीर शुद्ध होता है और कोई रोग नहीं होता।

(5) न्यौलीक्रिया– पदमासन लगाकर दोनों हाथों से दोनों घुटनों को दबाकर रखते हुए शरीर सीधा रखें। इसके बाद पूरा श्वास बाहर निकालकर खाली पेट ही मांसपेशियों को ढीला रखते हुए अन्दर की ओर खींचे। इसके बाद स्नायुओं को ढीला रखते हुए पेट में दायीं–बायीं ओर घुमायें। इससे पेट में किसी प्रकार की गन्दगी नहीं रह पाती। और अपानवायु वश में ही जाती है। गर्मी–सम्बंधी सभी रोग, वायु गोला, सभी प्रकार के दर्द आदि दूर होते हैं और फिर कभी नहीं होते। पेट–सम्बंधी सभी रोग भी इससे दूर होते है। सीखते समय जानकर व्यक्ति के निर्देशन में ही इसे सीखना चाहिए। इससे सीखना सरल हो जाता है।

(6) त्राटकक्रिया– दोनों आँखों को किसी एक सूक्ष्म लक्ष्य पर पर्याप्त समय तक बिना पलक झपकाये स्थिर रखने का अभ्यास करें। अधिक देर तक ऐसा ऐसा करने पर आखों से आँसू निकलने लगते हैं। जब ऐसा हो तब झपका कर अभ्यास छोड़ दें। इस प्रकार बार–बार अभ्यास करना चाहिए। कहीं–कहीं दृष्टि को भ्रूमध्य स्थान पर भी स्थिर किया जाता है। इस त्राटक क्रिया से दृष्टि स्थिर होती है। आँख के सभी रोग छूट जाते हैं। यह क्रिया भी जानकार साधक से ही सीखनी चाहिए।

स्वामी चरणदासजी ने उक्त छः क्रियाओं के अतिरिक्त अन्य चार क्रियाओं का भी उल्लेख किया है। ये हैं– कापालभाति, धौंकनी, बाघी और शंख प्रक्षालन इस प्रकार कुल दस शुद्धिक्रियायें चरणदास ने निर्देशित की हैं।

(1) कपालभाति– पद्यासन में दोनों हाथों से घुटनों को दबाकर, शरीर सीधा रखते हुए झटके से बार–बार श्वास छोड़ें। श्वास लेना अपने आप होता है। श्वास छोड़ने की गति एक मिनट में एक सौ बीस होनी चाहिए। अभ्यास बढ़ने पर एक बार में पाँच–छः सौ झटके छोड़ने का अभ्यास बन जाता है। इसके नियमित अभ्यास से श्वासनलिका शुद्ध होती है, पेट के रोग दूर होते हैं, पाचनशक्ति बढ़ जाती है और शरीर सम्बंधी सभी रोग दूर हो जाने से कपाल (ललाट) में चमक आ जाती है। इसी कारण इसका नाम कपालभाति है।

(2) धौंकनी– कपालभाति के समान ही यह भी एक प्राचीन हठयौगिक क्रिया है। इनमें लेना–छोड़ना दोनों झटके से बार–बार किया जाता है। प्राचीनकाल में प्रायः इसका प्रचलन अधिक रहा हो, किन्तु आजकल इसका अधिक प्रचलन नहीं है। इसके स्थान पर कपालभाति से ही काम चल जाता है।

(3) बाधी– बाधी क्रिया में खाना खाने के दो घंटे बाद जब आधी पाचन क्रिया हो चुकी होती है, इन दो अँगुली गले में डालकर वमन किया जाता है जिससे कि वह अधपचा अन्नादि बाहर निकल जाता है। यही **बाधी क्रिया** है। इससे पेट की सभी प्रकार की गन्दगी या कफ अदि उस अधपचे अन्न के साध निकल जाता है। फलतः पेट सम्बंधी शिकायतें दूर तो होती ही हैं साथ ही कफजन्य रोगों में काफी लाभ मिलता हे। बाघ अदि जानवर अस्वस्थ होने पर इसी प्रकार की क्रिया से स्वास्थ्य लाभ करते है, इसलिए इसका नाम बाघी क्रिया पड़ गया है।

(4) शंखप्रक्षालन– प्रक्षालन का अर्थ धोना या साफ करना है। जैसे– शंख बजाने के बाद जैसे उसे पानी से ध ोकर रखते हैं, उसी प्रकार शंख के समान बनावट वाली गुदामार्ग के द्वारा पेट को धोकर साफ किए जाने के कारण इस शुद्धिक्रिया का नाम शंख प्रक्षालन हुआ है। इसके अभ्यास के लिए पूरे एक दिन की आवश्यकता होती है। और दो–तीन महीने में एक बार करने की आवश्यकता होती है। जिस दिन यह अभ्यास करना हो उस दिन प्रातः काल नित्यक्रिया से निवृत्त हो गुनगुना पानी दो–तीन या चार गिलास पीकर, उसके बाद वक्रासन, सर्पासन, कटिचक्रासन, उड्डियान एवं नौलि का अभ्यास करें। इससे अपने आप शौच का वेग आता है। कदाचित् वेग न आवे तो विपरीतकरणी का एक बार अभ्यास कर लें तो वेग अवश्य ही आयेगा। फिर तुरन्त शौच को जाय। वहाँ से आने पर पुनः उसी प्रकार पानी पीकर उक्त आसनादिकों का अभ्यास कर शौच को जाएं। इस प्रकार बार–बार पानी पीना, आसनादि करना तथा शौच जाना सात–आठ बार हो जाने पर अन्त में जैसा पानी पीते हैं, वैसा ही पानी जब स्वच्छ रूप से शौच में निकलता है, तब पेट पूरा का पूरा धुलकर साफ हो गया ऐसा माना जाता है। इसके बाद कुछ विश्राम कर अधिक घी युक्त मूंग दाल चावल की खिचड़ी खाकर पूरा दिन लेटकर आराम किया जाता है। दूसरे दिन से सभी काम पूर्ववत् करते हैं। इस क्रिया के करने से शरीर में एक नई स्फूर्ति और जीवन का संचार होता है। मन प्रसन्न रहता है। तथा शरीर में नयापन व हल्कापन का अनुभव महीनों तक होता रहता है।

नोटः– स्वामीचरण दास के द्वारा वर्णित गुरूवचन एवं शिष्यवचन मूलतः अध्ययन सुविधा हेतु यहाँ दिया जा रहा है।

चरणदास कृत मूल ग्रंथ (षटकर्महठयोग)

शिष्यवचन

अष्टांग योग वर्णन कियो, मोको भई पहिचान।
छहौंकर्म हठयोग के, वरणौ कृपानिधान।। 154

गुरूवचन

पहिले ये सब साधिये, काया होवे शुद्धि। रोग न लागै देह को, उज्ज्वल होवै बुद्धि।। 155
अरू साधै षटकर्म बताऊं। तिनको तोको नाम सुनाऊं।।
नेती धोती बसती करिये। कुंजर करम रोग सब हरिये।।
न्योली किये भजै तन बाधा। देखि देखि जिन गुरू सो साधा।।
त्राटक कर्म दृष्टि ठहरावै। पलक पलक सों लगन न पावै।। 156

(1) नेतीकर्म

मिही जु सूत मँगाय कै, मोटी बाटै डोर। ऊपर मोम रमाय कै, साधै उठकर भोर।।
साधै उठकर भोर, डेढ़ बालिश्त की कीजैं। ताको सीधी करै, हाथ अपने में लीजै।
नासारंध्र में मेल कर, खींचै अंगुली दोय। फेरि बिलोवन कीजिये, नेती कहिये सोय।।

कान नाक अरू दांत को, रोग न व्यापै कोय।
उज्ज्वल होवे नैनही, नित नेती करि सोय।। 157

(2) धौतीकर्म

धोती कर्म यासों कहै, पट्टी सोलह हाथ। कोढ़ अठारह नाभवैं, करै जु नित परभात।।

चौडी अंगुल चारिको, मिही वस्त्र की होय। जलमें भेइ निचोय करि, निगल कंठ सों सोय।।
निगल कंठ सों सोय, सिरा बाहर रहि जावै। फेरि निकासै ताहि, पित्त कफ दोऊ लावै।।
काया होवै शुद्धही, भजै पित्त कफ रोग। शुकदेव कहै धोती करम, साधै योगी लोग।। 158

(3) वस्तीकर्म

तीजे वस्ती कर्महीं, कहौं सुनौ चितलाय। क्रिया करै गन्नेसही, कुंजी तहां लगाय।।
कुंजी तहां लगाय, मूल को धोवन कीजै। पंसारन संकोच सुरति दै यह करि लीजै।।
नीर गुदासों खैंच करि थाँभै उदर मँझार। कछू डोल अरू बैठकर, फिरि दे ताहि उतार।।

यही जु बस्ती कर्म है, गुरू बिन पावै नाहि।
लिंगगुदा के रोग जो, गर्मी के नशिजाहिं।। 159

(4) गजकर्म

गज कर्म याही जानिये, पिये पेट भरि नीर। फेरि युक्ति सों काढ़िये, रोग न होय शरीर।। 160

(5) न्योलीकर्म

न्योली पदमासन सों करै। दोनों कर घुटनों पर धरै।
पेटरू पीठ बराबर होय। दहने बायें नले बिलोय।।
मैल पेटमें रहन न पावै। अपान वायु तासों वश आवै।।
तापतिली अरू गोला शूल। हान न पावै नेक न मूल।।
जो गुरू कहिकै ताहि दिखावै। न्योली कर्म सुगम करि पावै।।
और उदर के रोग कहावै। सोभी वै रहने नहिं पावै।। 161

(6) त्राटककर्म

त्राटक कर्म टकटकी लागै। पलक–पलक सों मिलै न ताकै।।
नैन उघारेही नित रहै। होय दृष्टि थिर शुकदेव कहै।।
आंख उलटि त्रिकुटी में आनी। यह भी त्राटक कर्म्म पिछानो।।
जेते ध्यान नैन के होई। चरणदास पूरण हो सोई।। 162

कपालभांति अरू धौंकनी, बाघी शंख पखाल।
चारि कर्म ये और हैं, इनहि छहौं के नाल।। 163

इति षट्कर्म वर्णन सम्पूर्णम्

अथ मुद्रा वणन्
शिष्यवचन

एक बार फिरभी कहौ, मुद्रा पांच दयाल।
मोसे रंक अधीनपर, होकर बहुत कृपाल।। 164

गुरूवचन

(1) खेचरी मुद्रा

आगे मुद्रा तोहि कहीं समुझाइया। फिरभी कहुँ अब खोलि सुनौ चितलाइया।।
पहिले मुद्राखेचरी को साधन भनूं। जैसे आगे करी सभी ऋषि मुनिजनूं।।
ताते जल के कुरले करि जुबगाइये। ता पाछे चौबस्त को चूरण लाइये।।
जिहवा हाथ में पकरि मर्दन छीलनकरै। दोहनताननकरै बहुरि दशनन धरै।।
फिरि करि छीलन ताहि छेद नहिं कीजिये। तोतू ज्यों कटिजाय यत्न सोइ कीजिये।
ब्रह्मरंध्र को धोयकै मैल निवारिये। बायें अंगुठे ऊपर कागको धारिये।
सहज सहज सरकायकै आगे लाइये। यह सब साधन कठिन गुरू से पाइये।।
दो अँगुली कूंचीसूंकरि मेलना। जिहवा उल्टी राख जु नितप्रति खेलना।।
यह उपाय षट मास करै तजिमानही। रसना यों बंधिजाय चाढ़े अस्थानही।।

चार काज यासूं सरै, फलदायक बहुभांति।
योग माहि बड़ भूपहै, अधिकीजाकीकांति।। 166

एक जु प्राणायाम जीभसूं कीजिये। दूजे बन्ध उडयान यही सूं दीजिये।।
तीजे करि करि ध्यान निरखि जहूं ज्योतही। चौथे अमृत पिवै खुलै तहं सोतही।।
खैंचे त्रिकुटी पाट सहज अरू फेरिये। द्रवै सुध[1] रसनीर जहां मन घेरिये।
अमृतही के स्वादको कौन बखानई। जो कोई आंचवै हंस सोइ पुनि जानई।।
दिन दिन पलटै देह रक्त दूधाभवै। बीसबरस अरू चार माहि ऐसा हवै।
इच्छाधारी होय बरस छत्तीस में। सब लाकन में जाय अपनी शक्ति ते।।

जेते विष व्यापै नहि, रोग न दहै शरीर। जो कोई पीवै यूक्तिसूं, कामधैनू को क्षीर।।
भूख प्यास अरू नींद के, रहै न तीनौ लेव। नाद बिन्दु गुटका बंधै, कहै यही शुकदेव।।
तीन महीने चार का, बालक गोदी माय। न वह पीवै नीरही, अन्न नहीं वह खाय।।
वह तौ जीवै दूध सूं, वाकूं वही जुकाम। लगो रहै माताकुचन, निसनै एक न याम।।
अमृत पीवै योगिया, ऐसे चरणहि दास। पहरहु यह छांडै नहि, मामधेनु1 का पास।
ऐसे धारै तौ बनै, सुधा रसाला संत। दिविकाया हो जाय जब, धनिकहै कमलाकांत।।
आठपहर लागार है, पीवै कै कै ध्यान। मै कहा जैसाही बनै, परसै पद निरवान।।
भेद गुरूसे य लहै, और छिपावै वाहि। जो जो फलयाके अधिक, होय परापति तांहि।।
योगेश्वर अरू देवता, मुनी ऋषीश्वा जान। रखवारे वाके घने, कनन न देवैं ध्यान।
टेक गहै सो जापियै, और करै ह्यां ध्यान। यति सती अरू गुरूमुखी, जाकी ऐसीआन।।
बड़ी जु मुद्रा खेचरी, मुख में याका वास। जो कहि मैं शुकदेवजी, जानलेहु चरणदास।। 168

(2) भूचरी मुद्रा

दूजी मुद्रा भूचरी, नासा जाको बास। प्राण अपान जुदी जुदी, एक करै चरणदास।।
जितकी तितरखप्राण को, व घरलाय अपान। ताहि मिलावै युक्ति सूं, करि करि संयम ध्यान।।
जब वह जीतै पवन कूं, मन चंचल ठराराय। गगन चढन की आश हो, कहै शुकदेव सुनाय।।
गुदाद्वार बंध दीजिये, ऐड़ी पांव लगाय। आसन सिद्धजु कीजिये, मन पवनावश लाय।
अपान वायु जब वशभवै, ऊरध खैंच चलाय। सनई सनई जाचढ़ै, प्राण वायु हवैजाय।। 169

(3) चाँचरी मुद्रा

तीजी मुद्रा चाँचरी, जाको नैनन वास। नासा आगे दृष्टिकूं, राख मन धर आस।।

अंगुल चार नासिका आगे। चित अस्थिर करि देखन लागे।।
खुले पांच तत करै जू कोई। मन अरू पवन जहां थिर होई।।
फिर हवांसूं नासा परि आवै। अचल टकटकी तहां लगावै।।
जहं बहुतक अचरज दरसावै। विभव स्वर्ग के आगे आवै।।
जितसूं पलट तिरकुटी माहीं। ध्यान करै कहुँ अन्त न जाहीं।।
दीरघ तारासा परकासै। उदय होय अरू दुबिधा हरै।।
यही चाँचरी मुद्रा जानै। चरणदास याकू पहिंचानै।। 170

(4) अगोचरी मुद्रा

कहुँ अगोचरि चौथी मुद्रा। तामें सुख पावै योगींद्रा।।
यामुद्राका सँखन बासा। शुकदेव कहैं सुन चरणहि दासा।।

ज्ञान सुरति दोउ एक हवै, पलट अगोचर जाय।
शब्द अनाहत मैंरतै, मन इन्द्री थिरपाय।। 171

(5) उनमनीमुद्रा

पँचवी मुद्रा उनमनी, दशवें द्वारे वास। सिद्ध समाधि मिलै जहां, दग्धहोय सब आस।।
आनंदहि आनंद जहां, तहां न काल कलेश। तीनों गुन नहि पाइये, ह्यांनहि मायालेश।।
जीवातम परमात्मा, होय जाय वा ठौर। ध्याता ध्यानन ध्येय जहँ, तहांन किरिया और।। 172

इति मुद्रा वर्णन सम्पूर्णम्

अथ बंध वर्णन

(1) महाबन्ध

महाबन्ध तोहि पहल बताऊं। पाछे मूलबन्ध समझाऊं।।
बायां पाँव सिवन गहि दीजै। मूल द्वार एंड़ी बँध कीजै।।
दहिनी जंघ जंघपर लावै। गउमुख आसन नाम कहावै।।
राखै चिबुक हृदय पर लाय। पवनराह पूरब को जाय।।
ध्यान त्रिकुटी संयम करै। प्राण वायु हिरदे में धरै।।
महाबन्ध ऐसे करि साधे। गुरू प्रताप याहि औरधै।।
बिना पुरूष तिरिया कूं जानौ। बन्ध बिना मुद्रा पहिचानौ।।
निरफल जायपुरूष बिन नारी। महाबन्ध बिनु मुद्राधारी।।
माहि कण्ठ के ध्यान लगावै। सुरत निरत हवाई ठहरावै।।173

महाबंध अस्थित करै, सो योगी हवै जाय।
पवन पंथ मुंदित करै, ध्यान कण्ठ में लाय।। 174

शशियरकूं सूरज पर लावै। रेचक पूरक पवन फिरावै।।
महाबंध करै अभ्यासा। अमृत अचवै बुझै पियासा।।
जरा मृत्यु देही नहिं आवै। महा बंध तीनौ गुन पावै।।

जठर अग्नि परचै बहुभारीं निशिदिनी माहि करै अठवारी।।
पहर पहर भर पवन भरीजै। प्रथम अल्प अभ्यास करीजै।।
तिय सेवन तापन नहि करै। काम अग्नि काया नहि जरै।। 175

ऐसी विधि साधै पवन, योग पंथ धरि पाय।
पहर पीछला बनत जन, आयुरदा बढ़िजाय।। 176

(2) मूलबन्ध

मूलबंध अब कहत हूं, अपान वायु पश होय। ऊपर कूं खैंचन करै, मिलै प्राण में सोय।।
कमल कमल सीधे भवै, नाभि 1 तले हो राह। आगे मारग सुगम हो, पहुँचै योगीनाह।। 177

मूलबंध गुण ऐंसा होई। वायुअधोगति जाय न कोई।।
रेता ऊरध यासूं सधै। दिन दिन आयु सवाई बधै[2]।।
यासूं कारज सब बनिआवै। रोगरक्त को सभी नशावै।।
योगी पहिले मा आराधै। अपान वायु कूंनीके साधै।।
अब मैं मूलबंध बतलाऊं। ज्योंका त्यों साधन दिखलाऊं।।
गुदाबास याको तुम जानो। गुदा द्वार बंधन दै ठानो।।
बायें पांव कि एंड़ी सेती। मूल द्वार रोकै करिहेती।।
ऊरधही[3] कूं खैंचन कीजै। शुकदेव कहै नीके सुनलीजै।।
अरू कबहूं मन ऐसीधरै। आसन पदम करन कूं करै।।
कपड़े की इकगेंद बनावै। गुदा मध्य कसबंध लगावै।।
योंभी वायु सधै वा भांती। जोपै लगारहै दिनराती।।
पवन तले की ऊपरजावै। प्राण अपान सहज मिलजावै।।
नाव बिंदु राज मिलजा दोई। एकवर्ण साधै जो कोई।।
योग माहि यह भी परधान। बूढ़ी देह पलटहो ज्वान।।
जठरअगन 4 बाढ़े अधिकाय। जा चाहै तो बहुतै खाय।।
सुन चरणदास कहै शुकदेव। जो गुरू पूरा दवै भेव।। 178

(3) जलंधरबंध

मूलबंध तोसूं कहा, गुण कह तब समुझाय।
बंध जलंधर कहतहूं, सुन सरवन करि चाय।। 179

तीजा बंध जालंधर जानी। कंठ वास ताका पहिचानी।।
ग्रीवा लटक चिबुक हिय लावै। कंठ पवन रोके परचावै।।
हिरदै प्राण पूर करि रहिये। बंध जलंधर यासूं कहिये।।
ऊरध पवन नीचे को जाय। अधर पवन ऊरधकूं लाय।।
उदर मध्य लै ताहि बिलोय। ब्रह्मरंध्र जा पहुंचै सोय।।
इह विधि ब्रह्मपंथकूं धावै। सहजै सहजै मध्य समावै।।
जरा मरण जहँ भय नहि व्यापै। लहै अमरपद होरह आपै।।
चरणदास शुकदेव बतावै। जोपै बंध उड्यान लगावै।। 180

(4) उड्यानबंध

बंध उड्यान आगे कहा, जिहवा उलट लगाय।
कान आंख मुख नाकके, स्वर सब बंधकराय।।
इह सुबंध महिमा अधिक, लागै बजर किवांर।
सातद्वार की बाटहो, निकसै नाहिं बयार।।
पांची मुद्रा बंध सब, दिखलाया यह देश।
शुकदेव कहै रणजीत सुन, और कहूं उपदेश।। 181

अथ अष्टसिद्धि वर्णन

चौरासीही जानि जु आसन योग के। सिद्ध पदम तिनमाहिं बड़े ही थोकके।।
बहुनारिन के माहिं जु नौनारीभनी। तिन मैं सुषमन जानबड़ी गुरूसूंसुनी।।
तीनि बंध के माहि मूलकूं जानिये। मुद्राही में बड़ी खेचरी मानिये।।
वायुन में परधान प्राणकूं देखिये। सबकुंभक हूं माहि केवलबड़ि लेखिये।।
बानी चारौ मध्य पराही गाइये। चार अवस्थामाहि तुर्या बड़िपाइये।।
परम शून्यको ध्यान परे सूं हे परै। याकीसम कोई नहि ध्यान तिनको धरै।।
अजपाही के जाप बराबर और ना। शीलदयासे मीत न कोई देहमा।।
पूजन में बड़ि जान जुआतमकी करै। ज्ञानसमान न दान सकल बिपता हरै।।
गुरूसा रक्षक और नहीं कोइ लोक में। योग युक्तिसा स्वाद नहीं कोइ भोग में।।
कह शुकदेव सुनौ रणजीतही। बड़ी जोगकी गांस खाल तुमकूं जुदी।। 182

अमरी करतै बजरी रोंकै बजरी करतै वाई।
रोंकै छींक साधना करिकै नासालेहु जंभाई।।
जल संयमसूं नभकूं देखै संयम नादसूं ज्योती।
संयम पवन होय थिराकाया सो वश राखै मोती।।
जिया बिछावै मृत्यक ओढ़ै बूढ़ी होय न काया।
संयम नींद बिदनहि जावै यह शुकदेव बताया।।
दहिने स्वर में भोजन कीजै बाये स्वर में पानी।
दहिने स्वर में अमरी रेचै देह न होय पुरानी।।
दहिने स्वर में जलसूं न्हावै बाये स्वर में लड.गी।
शिव आसनसूं सोवन कीजै नारि न कीजै सड.गी।।
पाबकसूं तापन नहि कीजै जो तापै तौ नैना।
भोजन गरम न खट्टा खावै फटै झिरै नहिं मैना।। 183

गरमही के रोग में, चन्द चला रवि बन्द।
शीत रोग सूरज चला, शशि पर राखै बन्द।।
तीन राज कै पांच दिन, कै दिन राखै सात।
रोग देखि जैसी करै, होय निरोगा गात।।
सूरज रात चलाइये, द्योस चलावै चन्द।
पवन फिरै उषा बधै, श्वास चलै जो मन्द।।
कान आंख अरू दांत के, सबही रोग भजाहि।

श्याम बालनहि श्वेतहों, करै जुनी की दाहि।।
रूई पुरानी बहुत ही, दिनकूं दहिने राखि।
बाये राखै रैनिकूं, खोली साधन भाखि।।
शीत उष्ण व्यापै नहीं, विष नहि व्यापक होय।
बीस बरस साधन किये, रहै विकार न कोय।।
बासी ग्रष्ट न खाइये, सूक्ष्म करै अहार।
जल बहुत पीवै नहीं, सपरस करै न नार।।
तन मन साधै वचन ही, पाप न लगान देह।
शुकदेवकहैचरणदासमुनि, अधकी साधन येह।।

सब जीवन सुख दीजिये, सब सों मीठा बोल।
आतम पूजा कीजिये, पूजा यही अतोल।।
दया पुष्प चंदन नवन, ध्रूप दीप दे मन्न।
भाँति भाँति नैवद्य सूं, करै देव परसन्न।।
जो कोइ आवै राजसी, देहु बड़ाई ताहि।
जाकूं देखो तामसी, करो नम्रता वाहि।।
जो कोइ होवै सात्विकी, मिलै ताहि तजिमान।
गुढ़ी खोल चर्चाकरो, लीज ततमत छान।।
ओरन कूं परसन करै आपहु रहौ परसन्न।
बासलहो हरि धाममें, ह्यां वा हो धन धन्न।।
राजस तामस सात्विकी, क्षेत्तर तीनहिं भाँति।
क्षेत्रक आतम देवहै, सबको सहिये क्रांति।।
सब में देखै आप कूं, सब कूं अपने मांहिं।
पावै जीवनमुक्ति को, यामें संशय नाहिं।।
सब में देखै आतमा, आपन मैं करि ध्यान।
यही ज्ञान ब्रह्मज्ञान है, यही जू है विज्ञान।।
अहंकार मिटि ब्रह्महो, परमातम निरबान।
शुकदेवाहो कहतहूं, चरणदास हिय आन।।
जो तै पूंछा सो कहा, भेद कहा सब खोल।
अरू तेरे हियमें कछू, सकुच खोल कर बोल।।

शिष्यवचन

अपना लखि किरपाकरी, समझायो बहुभांति।
योग औरतें गुरूजी, हिय में आई शांति।।
तुम्हरी कह अस्तुति करूं, मोपै कही न जाय।
इतनी शक्ति न जीभकी, महिमां कहै बनाय।।
किरपाकरी अनाथ पर, तुमहो दीनानाथ।
हाथ जोड़ि मांगीं यही, मम शिर तुम्हरा हाथ।।
मोसे रंक गरीबकी, तुम गहि पकरी बांह।
भव बूड़त राखा मुझे, चरण कमलको छांह।।
आपहि तुम किरपाकरी, मैं कित लहता तोहिं।

तुमको पाऊं ढूंढिकरि, इतनी शक्ति न मोहिं।।
ब्यास पुत्र शुकदेव तुम, जक्त माहिं विख्यात।
तुम दर्शन दुर्लभ महा, पुरूषनको न दिखात।।
बड़े भाग मेरे जगे, पुरूबले परताप।
किरपा श्रीगोपाल की, आय मिले तुम आप।।
चरणदास अपनो कियो, दियो परम सन्तोष।
बैठि करूंगी ध्यानही, अब कुछ रह्यो न शोक।।
चलत फिरत ह्यां आइया, तुम भरि दीन्ह्यो मोहिं।
नैन प्राण तन मन सभी, देखत अरपे तोहिं।।
चाहमिटी सब सुख भये, रहा न दुखका मूल।
चाहूं तौ चाहूं यही, तुम चरणनकी धूल।।

गुरूवचन

योग तपस्या कीजियो, सकल कामना त्याग।
ताको फलमत चाहियो, तजौ दोष अरू राग।।
अष्ट सिद्धि जो पै मिलै, नेक न कीजै नेह।
धरि हिरदय परमात्मा, त्यागे रहियो देह।।
जेती जगकी वस्तु है, तामें चित्त न लाय।
सावधान रहियो सदा, दियो तोहिं समुझाय।।
बार बार तोसे कहूँ, ह्यां मत दीजो चित्त।
सिद्ध स्वर्गफलकामना, तजि कीजो हरिमित्त।।
जो कीजै हरि हेतही, एहो चरणहि दास।
भक्तियोग अरू शुभकरम, नीकी ठौर निवास।।

शिष्यवचन

ऐसेही अब करूंगी, तुम चरणन परताप।
अष्ट सिद्धि समझौ चहौं, वर्णन कीजै आप।।
समझौं तो त्यागूं उन्हैं, करवाओ पहिंचान।
कहा नाम लक्षण कहा, कौन रहै अस्थान।।

गुरूवचन

कहिं शुकदेव वर्णन करूं, अष्ट सिद्धि के नाउ।
लक्षण गुण सबही सहित, नीकें तोहिं समझाउ।।

अथ अष्टसिद्धि के नाम

प्रथमै अणिमा सिद्धि कहावै। चाहै तौ छोटा ह्वै जावै।
अणु समान छिपिं जावै सोई। ऐसी कला जु पावै कोई।।
दूजी महिमा लक्षण एता। चाहै बड़ा होय वह जेता।।
तीजी लघिमा वह कहवावै। पुष्पतुल्य हलका ह्वै जावै।।
चौथी गरिमा कहूँ विचारी। चाहै जितना होवै भारी।।
पँचवी प्रापति सिद्धि कहावैं। जित चाहै तितही ह्वे आवै।।
छठवीं पराकाम्य गुण धरै। शक्ति पाय चाहै सो करै।।

सतवीं सिद्धि ईशिता रानी। सबको अज्ञा माहिं चलानी।।

बशीकरण सिधि आठवीं, कहैं श्री शुकदेव।
चाहै जिसकी वश करै, अपनाही करि लेव।।
चरणदास सिद्धैं कही, समझलेहि मनमाहिं।
जो हैं जनुआं राम के, इनमें उरझैं नाहिं।।

योग किये आठो सिधि पावै। कै भोगै कै चित्त न लगावै।।
योग किये मन जीता जावै। पलटै जीव ब्रह्यगति पावै।।
योगेश्वर चाहैं सो करैं। भरी रिताबै रीती भरै।।
योगेश्वर ईश्वर ह्वै जाई। दिन दिन बाढै कला सवाई।।
तजिये भोंग योगही करिये। तिरगुण परैं ध्यानही धरिये।।
चौथे पद में करै निवासा। काहू विधि का रहै न साँसा।।
योग करै सोई परबीना। शुकदेव कहैं प्रकट कहि दीना।।

पोथी माही देखि करि, करै जू कोई योग।
तन छीजै सिधि ना भवै, देहि आवै रोग।।
देखि देखि गुरू सों करै, लै अज्ञा रहु संग।
सिद्धि होय साधन सबै, कछू न आवै भंग।।
योग तपस्या में बड़ा, पहुँचावै हरि पास।
जन्म मरण विपता मिटै, रहै न कोई आस।।

शिष्यवचन

मै समझी जानी सभी, सूझभाई हिय माहिं।
किरपाकरि जो जो कहा, ताको बिसरूं नाहिं।।
व्यासदेव श्री जनक जै, जै जै श्री शुकदेव।
जै जै यह सुकतारहै, समुझायो करि हेव।।
हियहुलसो आनंदभयो, रोम रोम भयो चैन।
भये पबित्तर कान ये, सुनि सुनि तुम्हरे बैन।।

गुरू ब्रह्या गुरू विष्णु गुरू देवनके देवा।
सर्व सिद्धि फल देन गुरू तुम मुक्ति करेवा।।
गुरू केवट तुम होय करौ भवसागर पारी।
जीव ब्रह्य करिदेत हरो तुम व्याधा सारी।।
श्रीशुकदेव दयाल गुरू चरणदास के शीश पर।
किरपाकरि अपनो कियो सबही विधिसों हाथधर।।

इति श्रीगुरूशिष्यसंवादअष्टांगयोगसम्पूर्णम्

———0———

बोध प्रश्न :

टिप्पणी क : अपने उत्तर नीचे दिये गये स्थान में लिखें।

ख : इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

प्रश्न 7 शुद्धि क्रियाओं का महत्व बतलाइयें ?

प्रश्न 8 शुद्धि क्रियाओं की संख्या लिखियें ?

10.7 सारांश

द्वितीय प्रश्न पत्र के लिए खण्ड 10 में आपने स्वामी चरणदास कृत अष्टांग योग ग्रंथ में वर्णित उच्चयौगिक क्रियाओं एवं साधनाओं जिनमें प्राण, चक्रभेदन, नाड़ियां, प्राणायाम, मुद्रा, बंध अष्टसिद्धियाँ एवं शुद्धिक्रियाओं का अध्ययन इकाई 32, 33, 34, एवं 35 में किया। इन उच्चयौगिक क्रियाओं के अध्ययन के अर्न्तगत आपने दस वायुओं (प्राणों) का अध्ययन किया ये दस प्राण इस प्रकार है – **प्राण, अपान, समान, ब्यान, उदान, नाग, देवदत्त, धनजंय, कूर्म, एवं कृंकल।** इसके उपरांत **षट्चक्रों** का भेदन एवं उनके भेदन की प्रक्रिया का अध्ययन आपने किया ये चक्र है **अधारचक्र, स्वाधिष्ठान चक्र, मणिपूरचक्र, विशुद्धि चक्र, आशाचक्र, सहस्त्रारचक्र,** इन चक्रों के भेदन की प्रक्रिया में ही आपने अनाहत चक्र के भेदन में **नदानुसंधान** का अध्ययन किया जिसमें दस प्रकार के नादों के सम्बंध में जानकारी आपको प्राप्त हुई। इसी क्रम में आपने नाड़ियों के सम्बंध में भी ज्ञान प्राप्त किया कुल 72,864 नाड़ियों में से 10 नाड़ियों **इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना, शंखिनी, कृंकल, पूषा, जसनी, गांन्धारी, हस्तिनी, लम्बिका** एवं उनके कार्यास्थान के बारे में आपने जानकारी प्राप्त की । इसके उपरांत आपने प्राणायाम का अध्ययन किया प्राणायाम तीन प्रकार का होता है। **पूरक, रेचक, तथा कुंभक।** इन तीन प्रकारों के 8 भेदों का भी आपने अध्ययन किया, ये भेद है– **सूर्यभेदन, उज्जायी, सीत्कारी, शीतली, भस्त्रिका, भ्रामरी, मूर्च्छा एवं केवली।** प्राणायाम की विधियों की तीन प्रक्रियाओं का भी आपने अध्ययन किया। प्राणायाम के उपरांत आपने मुद्राओं का अध्ययन किया आपने देखा कि मुद्राओं का योग साधना में कितना महत्वपूर्ण स्थान है। मुद्रायें हमारे अन्तः एवं बाह्य स्वरूप की घोतक होती है। मुद्राओ के उपरांत आपने बंधों का अध्ययन किया। बिना बंध के योग साधना में न तो आसन, न प्राणायाम एवं न ही मुद्रायें सिद्ध की जा सकती है। क्योंकि बंध के द्वारा हम स्थान विशेष में प्राणशक्ति को रोकते है एवं सम्बंधित अंग द्वारा प्राणों के प्रवाह को नियंत्रित करते है।

बंधों की साधना के उपरांत आपने अध्ययन किया कि साधना के मार्ग कुछ विशेष क्षमताएँ जो समान्य मानवीय शक्तियों से भिन्न होती है उत्पन्न होती है जो योग की उच्च साधना हेतु **संकेतक** एवं **सहायक** होती है। इन्हें सिद्धियाँ कहते है। इनका साधानात्मक प्रयोग एवं समायोजन साधक को उच्च स्तरों पर ले जाता है। इसके उपरांत आपने अष्टांग योग के ग्रंथ क्रमांक पांच में वर्णित षट्कर्म हठयोगवर्णन में वर्णित **शुद्धि क्रियाओं** के अर्न्तगत **नेति, धौती, बास्ती गजकर्म, न्यौली एवं त्राटक** की साधना के सम्बंध में जानकारी प्राप्त की बिना षट्कर्मो की शुद्धि द्वारा शरीर साधना के कई उच्चस्तरों तक पहुंचने के योग्य नही हो पाता। अतः शुद्धि क्रियाओं का योग साधना में विशेष महत्व हैं। इस प्रकार आपने चरणदास जी द्वारा वर्णित विभिन्न उच्च यौगिक क्रियाओं का अध्ययन किया इसके अध्ययन से आप इस योग्य हो गये है कि योग साधना के विभिन्न प्रकारों का सम्यक समन्वयन कर सके एवं साधना के मार्ग में उत्पन्न होने वाली बाधाओं को दूर कर सकें। इस प्रकार **खण्ड 10** अष्टांग योग एवं उच्च यौगिक क्रियायें आपको योग साधना के सूक्ष्म पक्षों व्यावहारिक से अवगत करवाता है।

10.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

प्रश्न 1 स्वामी चरणदास जी द्वारा वर्णित प्राणों की संख्या लिखियें ?

उत्तर– स्वामी चरणदास जी ने अष्टांग योग में मानवीय शरीर में मुख्य रूप से 84 स्थान प्राणों (वायुओं) को बतलाऐ है। इनमें 10 प्रमुख वायु एवं उनके स्थान निम्नलिखित है–

1. प्राण – स्थान हृदय प्रदेश।
2. अपान – स्थान मलविसर्जन।
3. समान – स्थान नाभि।
4. व्यान – सम्पूर्ण शरीर।
5. उदान – कष्ट।
6. नाग – अस्थिचर्म।
7. देवदत्त – अस्थिचर्म।
8. धनंजय – अस्थिचर्म।
9. कूर्म – अस्थिचर्म।
10. कृकंल – अस्थिचर्म।

इन दसों वायुओं का शरीर में अलग–अलग स्थान पर अलग–अलग कार्य होता है।

प्रश्न 2 स्वामी चरणदास जी द्वारा निर्देशित प्राणायामों के भेद बतलाइयें ?

उत्तर – स्वामी चरणदास जी ने प्राणायाम निरूपण के अन्तर्गत प्राणायाम के 8 भेद बतलाये है। इन आठों भेदों के द्वारा शरीर में प्राणों को भिन्न–भिन्न प्रकार से आयाम दिया जा सकता है। प्राणों के विस्तार (आयाम) देने की प्रक्रिया प्राणायाम कहलाती है। दसमुख्य प्राणों को विस्तार देने हेतु प्राणायाम के 8 भेद निम्नलिखित है–

(1)	सूर्यभेदन	(2)	उज्जायी
(3)	सीत्कारी	(4)	शीतली
(5)	भस्त्रिका	(6)	भ्रामरी
(7)	मूर्च्छा	(8)	केवली।

प्रश्न 3 स्वामी चरणदास जी द्वारा वर्णित मुद्राओं को लिखिये ?

उत्तर– स्वामी चरणदास जी ने 5 प्रकार की मुद्राओं का वर्णन किया है। इन मुद्राओं के नाम स्थान एवं कार्य निम्नलिखित तालिका क्र. 21 के अनुसार इस प्रकार है।

क्र.	नाम	स्थान	कार्य
1	खेचरी मुद्रा	मुख	कुम्भक द्वारा अमृत का पान
2	भूचरी मुद्रा	नासिका	प्राण अपान की एकता
3	चाँचरी मुद्रा	नेत्र	ज्योति दर्शन
4	अगोचरी मुद्रा	कर्ण	नाद की एकता
5	उन्मनी मुद्रा	मस्तिष्क	परमात्मा से मिलन या ऐक्य।

तालिका क्र. 21

प्रश्न 4 महाबंध की प्रक्रिया बतलाते हुऐ उसके महत्व को समझाइये ?

उत्तर– चरणदास जी के अनुसार महाबंध की प्रक्रिया निम्नलिखत है। सर्वप्रथम बाँया पाँव उठाकर उसकी एड़ी से सीवनी को दृढ़ता से दबाकर गुदामार्ग को बन्द (मूलबन्ध) करें। फिर दाँया पाँव बायें जाँघ पर रखकर गोमुखासन करें और तब ठोड़ी को छाती पर दृढ़ता से लगाकर रक्खें। इसे महाबन्ध कहा जाता है। इसे प्रति तीन घण्टे पर करें। अभ्यासकाल में स्त्री और अग्नि का सेवन न करें इसके नियमित अभ्यास से जठराग्नि अधिक बढ़ती है, जिससे पाचनशक्ति उत्तम बनी रहती है। जरा–मृत्यु आदि निकट नहीं आ पाते और साधक योगी बन जाता है। **महाबंध** से त्रिबंधों मूलबंध उड्डयानबंध एवं जालन्धरबंध के सभी लाभ साधक को प्राप्त हो जाते है। इसी लिये इसे महाबंध कहा जाता है। योग साधना में आसनों एवं मुद्राओं की साधना में इसकी महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

प्रश्न 5 अष्ट सिद्धियों से क्या आशय है समझाइये ?

उत्तर– सिद्धि का शब्दिक अर्थ **सफलता** है। अतः योग विज्ञान में अष्ट सिद्धियों से तात्पर्य आठ प्रकार की प्राप्त होने वाली सिद्धियों के सम्बंध में है। योग साधना की सतत् प्रक्रियाओं से सहज ही कुछ विशेष शक्तियां या क्षमताएँ स्वतः ही उत्पन्न हो जाती है यह साधना के स्वाभाविक परिणाम है न कि चमत्कार जैसा लोग समझाते या आशा करते है। कुछ तामसिक साधक इन परिणामों का प्रदर्शन कर सामान्य जनों को भ्रम में डाल कर उन्हें ठगते या अपनी श्रेष्ठता बतलाते है। अतः इनसे चमत्कृत नहीं होना चाहियें। योग साधक की साधना के परिणाम स्वरूप साधक के मानसिक धरातल पर काफी अच्छे, उत्कृष्ट एवं अदभुत अनुभव उत्पन्न होते हैं। जिनके विभिन्न स्वरूप होते है। इन्हें चरणदास जी ने आठ प्रकार से विभेदित किया है। जिन्हें अष्ट सिद्धियां कहा जाता है।

प्रश्न 6 अष्ट सिद्धियों के प्रकार बतलाइये ?

उत्तर– स्वामी चरणदास जी ने सिद्धियों को उनके स्वरूपों के आधार पर आठ प्रकार बतलाये है। ये आठ प्रकार निम्नलिखित है–

(1) अणिमा– इससे शरीर जैसा चाहो वैसा छोटा कर सकने की क्षमता आ जाना।
(2) महिमा– इसमें शरीर का आकार इच्छानुसार बड़ा बनाया जा सकता है।
(3) लघिमा– इसमें शरीर पुष्प के समान हल्का हो जाता है।
(4) गरिमा– इसमें शरीर इच्छानुसार भारी किया जा सकता है।
(5) प्राप्ति– इसमें मनुष्य इच्छानुसार हर जगह आ जा सकता है।
(6) पराकाम्य– इसमें मनुष्य इतनी शक्ति प्राप्त कर लेता है कि जो चाहे कर सकता है।
(7) इशिता– इसमें मनुष्य दूसरे व्यक्ति को अपनी इच्छानुसार चला सकता है।
(8) वशीकरण– इसमें मनुष्य जिसको चाहे उसको अपने वश में कर सकता है।

उपरोक्त प्रकार से आठ सिद्धियों का वर्णन चरणदासजी ने किया है। जिन्हें अष्टसिद्धियाँ कहा जाता है।

प्रश्न 7 शुद्धि क्रियाओं का महत्व बतलाइये ?

उत्तर– शुद्धि क्रियाओं का विधान मूल रूप से शरीर के शोधन अर्थात् शुद्धि करण से है। शरीर का बाह्य शोधन इसके द्वारा किया जाता है। इससे मानोकायिक स्थैर्य शरीर को प्राप्त होता है। शरीर में उत्पन्न सभी दोष एवं गन्दगी दूर हो जाती है। इसके कारण बाह्य रोग किसी प्रकार का आक्रमण नहीं करते। बुद्धि उज्जवल हो जाती है। और शरीर में सदा स्फूर्ति बनी रहती है। इस कारण योगाभ्यास में सर्वप्रथम इन शुद्धि क्रियाओं के अभ्यास को स्थान दिया जाता है। इन्हें योगाभ्यास प्रारंम्भ करने के पूर्व सम्यक प्रकार से सिद्ध कर लेना चाहिये। इससे योगसाधना का शतप्रतिशत लाभ होता है।

प्रश्न 8 शुद्धि क्रियाओं की संख्या लिखिये ?

उत्तर– शुद्धि क्रियाओं को **षट्कर्म** भी कहा जाता है इस कारण शब्दसः शुद्धि क्रियाओं की संख्या छः है। ये छः शुद्धि क्रियाये निम्नानुसार है–

(1) नेती – इसके द्वारा जल या सूत्र को माध्यम बनाकर नसिका मार्ग की सफाई की जाती है। जल के स्थान पर दुग्ध, घृत, तेल स्वमूत्र एवं गौमूत्र आदि द्रवों से तथा सूत्र नेती में सूत्र के स्थान पर कैथेटर का प्रयोग भी किया जाता है।

(2) धौती– इसके द्वारा जल से पेट की सफाई की जाती है। गजकरणी द्वारा सीधे जल से तथा दण्ड की सहायाता से भी जल को बाहर निकाला जाता है।

(3) बस्ती– इसके द्वारा गणेश क्रिया से गुदा द्वार की सफाई की जाती है।

(4) गजकर्म– इसे कुंजर क्रिया भी कहते है। इसमें भी जल पीकर उसका वेग पूर्वक वमन किया जाता है।

(5) न्यौली– इस क्रिया में पेट की आंतों को खींचकर एक जगह इक्ठठा कर दायें बायें चालन किया जाता है इसके तीन प्रकार है दक्षिण, वाम एवं मध्य नौली।

(6) त्राटक– इस क्रिया के द्वारा नेत्र ज्योति एवं मस्तिष्क के स्नायुओं को बल प्रदान किया जाता है।

10.9 उपयोगी सन्दर्भ ग्रंथ

(1) भक्ति सागर – प्रकाशक श्री वेंकटेश्वर प्रेस मुम्बई

(2) अष्टांग योग – **चरणदास अनुवादक** श्री ओ. पी. तिवारी प्रकाशक कैवल्यधाम–एस. एम. वाई. एम. समिति कैवल्यधाम लोनावाला पूना

(3) योग परिचय – **डॉ. पीताम्बर झा** प्रका. गुप्ता प्रकाशन डी–35 साउथ एकसटैंशन भाग ट नई दिल्ली – 49

(4) योग का परिचयात्मक स्वरूप – **डॉ. ओमनारायण तिवारी** प्रकाशक पं. सुन्दरलाल शर्मा (मुक्त) विश्वविद्यालय छत्तीसगढ़, बिलासपुर (छ.ग.)

(5) ैमबतमजे वि भ्जीं टपकलं – **क्तण टपरंलमदकतं चतंजंच** ैज्ञल थ्वनदकंजपवद चैपसंकमसचीपं च्मददेलसअंदपं न्यैण ।ण

———— 0 ————